"क्रान्तिकारी नेता जी सुभाषचन्द्र बोस की स्वतंत्रता संग्राम में ऐतिहासिक एवं राजनैतिक भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

इतिहास विषय

में

पी.एच.डी. उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2008

निर्देशक :
डॉ. अजय कुमार सक्सेना
एम.ए., पी-एच.डी.
रीडर एवं विभागाध्यक्ष
(इतिहास विभाग)
गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई (जालौन) उ.प्र.

शोधछात्रा :
रंजीता सेंगर
एम.ए. (इतिहास)

Neta Ji Shubhas Chandra Bose

<u>प्रमाण - पत्र</u>

प्रमाणित किया जाता है कि रंजीता सेंगर द्वारा आधुनिक इतिहास विषय के अन्तर्गत ***"क्रान्तिकारी नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की स्वतंत्रता संग्राम में ऐतिहासिक एवं राजनैतिक भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन"*** शीर्षक पर इतिहास विषयक विद्या वाचस्पति उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोधप्रबन्ध मेरे निर्देशन में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के अध्यादेश की समस्त नियमों एवं शर्तों को पूर्ण करते हुये सम्पन्न किया गया है। यह इनका स्वयं का मौलिक प्रयास है।

प्रस्तुतशोध प्रबन्ध उच्चस्तरीय तथ्यों पर आधारित है तथा शोध के क्षेत्र में इस शोध प्रबन्ध का मौलिक योगदान होगा।

मैं शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति हेतु प्रबलतम संस्तुति करता हूँ।

शोध निर्देशक

डॉ0 अजय कुमार सक्सेना
एम0ए0,पी-एच0डी0
रीडर विभागाध्यक्ष(इतिहास विभाग)
गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई, जिला—जालौन, (उ0प्र0)

घोषणा - पत्र

मैं रंजीता सेंगर निवासिनी पुरहाउस पटेलनगर, उरई यह घोषणा करती हूँ कि मैने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय से विद्या वाचस्पति उपाधि हेतु आधुनिक इतिहास के अन्तर्गत विषय ***"क्रान्तिकारी नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की स्वतंत्रता संग्राम में ऐतिहासिक एवं राजनैतिक भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन"*** पर शोध प्रबन्ध डॉ0 अजय कुमार सक्सेना, रीडर एवं विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई के कुशल निर्देशन में पूर्ण किया है। यह शोध प्रबन्ध मेरे स्वयं का मौलिक प्रयास एवं अनुभव है।

मैं शपथपूर्वक घोषणा करती हूँ कि यह शोध–प्रबन्ध किसी अन्य शोधप्रबन्ध की अनुकृति नहीं है, केवल साक्ष्यों के प्रस्तुतिकरण के लिए अन्य ग्रन्थों का उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसका उल्लेख मैने शोध प्रबन्ध में किया है। मेरी जानकारी में उक्त विषय पर किसी भी अन्य विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों में शोध कार्य नहीं हुआ है।

शोधार्थिनी

दिनाँक:

रंजीता सेंगर
पुर हाउस,पटेलनगर, उरई
जिला–जालौन

आभार - प्रदर्शन

उन विचारों के सिलसिले बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है, जिनसे तत्कालीन समाज प्रभावित हुआ था और जिनकी आज भी जरूरत है और आगे भी रहेगी। विचारक, दार्शनिक, राजनीतिक, राजनेता, साहित्यकार, वैज्ञानिक, कलाकारों का योगदान, विचारों की इस कड़ी में महत्वपूर्ण है।

आभार प्रदर्शन का श्री गणेश विद्या अधिठात्री माँ सरस्वती से करती हूँ। जिनकी असीम कृपा से यह शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है और मैं उनके चरणों को शत–शतबार नमन करती हूँ। इसके पश्चात मैं बुन्देलखण्ड की मातृभूमि का आभार व्यक्त करना चाहूँगी जहाँ पर मुझे अपनी योग्यता व प्रतिभा बढ़ाने का अवसर मिला।

इस शोध कार्य को पूर्ण करने में मुझे अनेक प्रकार से सहयोग प्राप्त करना पड़ा क्योंकि कोई भी प्राणी सर्व–समर्थ नहीं होता सिवाय सर्वशक्तिमान ईश्वर के। इसी कारण मुझे भी उन सभी लोगों का आभार व्यक्त करना है जिनका सहयोग मुझे भिन्न–भिन्न स्वरूपों में प्राप्त होता रहा। सर्वप्रथम मैं अपने पिता स्व0 श्री रवीन्द्र सिंह सेंगर का शत–शत् नमन करते हुए उनका आभार प्रदर्शन कर इस शोध प्रबन्ध को उनके श्री चरणों में समर्पित करती हूँ जिनकी प्रेरणा व वात्सल्य की छाया में पलकर मैं इस योग्य हो सकी कि आज मैं इस शोध कार्य को पूर्ण कर सकने की क्षमता प्राप्त कर सकी हूँ।

इसके साथ ही मैं अपनी माँ श्रीमती ऊषा सेंगर का हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ जिनके मार्गदर्शन और लगन ने मुझे सदा आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा प्रदान की जिससे मैं अपने जीवन लक्ष्य पर सदा अग्रसर होती रही। साथ ही मेरे अन्य सभी परिवारी–जन भी मेरे लिए पूज्यनीय हैं जिन्होंने भाँति–भाँति संसाधन जुटा कर मुझे इस कार्य को पूर्ण करने का मार्ग प्रशस्त किया। अतः मैं सभी का आभार प्रदर्शन करती हूँ।

परम् पूज्यनीय श्रद्धेय गुरूवर डॉ0 आई0एस0 सक्सेना, अवकाश प्राप्त रीडर, इतिहास विभाग, डी0वी0सी0 उरई का मैं उपकार जीवनपर्यन्त नहीं भूल सकती जिन्होंने अपने अमूल्य समय, अत्यधिक व्यस्तता के बीच भी मुझे अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर अनेक सुझाव दिये और मेरा मार्गदर्शन किया। साथ ही साथ अपने सुपुत्र डॉ0 अजय कुमार सक्सेना, रीडर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई को मेरे शोध निर्देशक (गुरू) के रूप में सौंपकर मुझे कृतार्थ कर दिया।

संसार में मार्गदर्शक गुरू होता है और गुरू ही ज्ञान प्रदाता है तथा उसका अनुभव ही मस्तिष्क में चेतना प्रदान करता है और यही कार्य मेरे श्रद्धेय गुरूवर एवं निर्देशक डॉ0 अजय कुमार सक्सेना जी ने किया जिनके अतुलनीय सहयोग और योगदान तथा मार्गदर्शन के फलस्वरूप ही मैं अपने शोध रूपी स्वप्न को साकार कर सकी हूँ।

शोध प्रबन्ध हेतु आवश्यक सामग्री जुटाने में आने वाली कठिनाइयों से उत्पन्न नैराश्य जन्य भावना को समाप्त करने के लिये श्रद्धेय

गुरूवर के प्रेम पूर्ण व्यवहार तथा प्रेरणात्मक उद्बोधन औषधि का कार्य करते रहे। समय–समय पर आशा तथा प्रेरणा का संचार करते रहने के कारण ही मैं अपने प्रयास को पूर्णतया प्राप्त कर सकी हूँ। मैं परम आदरणीय गुरूदेव की धर्मपत्नी का भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में यथासंभव सहयोग प्रदान किया।

गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय के पुस्तकालय द्वारा काफी सहयोग मिला जिसने शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में अनेक महत्वपूर्ण एवं सन्निक समस्याओं का समाधान किया। डॉ0 हौसला प्रसाद त्रिपाठी विभागाध्यक्ष बी0एड0 गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय उरई ने मुझे काफी सहयोग दिया।

श्रीमती डॉ0 शारदा अग्रवाल विभागाध्यक्ष इतिहास दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई, डॉ0 मंजू जौहरी रीडर इतिहास विभाग दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय ने अमूल्य सुझाव दिये, जिसके लिये शोध कार्य पूर्ण करने में मैं सहृदय आभार व्यक्त करती हूँ।

डॉ0 सुबोध सक्सेना रीडर इतिहास विभाग डी0वी0एस0 कॉलेज (गोविन्दनगर, कानपुर) का मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। उनकी प्रेरणा एवं उत्साह से मुझे यह शोध प्रबन्ध पूर्ण करने में सहायता मिली।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को स्वच्छ, सुन्दर एवं आकर्षक रूप देने के लिये मैं कुलदीप त्रिपाठी का भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने नियत अवधि में इसे वास्तविक स्वरूप प्रदान किया। अन्य सभी व्यक्तियों एवं संस्थाओं का सहयोग प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से शोध कार्य हेतु मुझे प्राप्त

हुआ। उनके प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। अन्त में मैं हर्ष मिश्रित भावनाओं के साथ प्रातः स्मरणीय वंदनीय मेरे पिता स्व0 श्री रवीन्द्र सिंह सेंगर की स्मृति में उनको सादर समर्पित करती हूँ।

शोधार्थिनी

रंजीता सेंगर
पुर हाउस,पटेलनगर, उरई
जिला–जालौन

अनुक्रमणिका
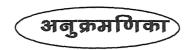
अध्याय - प्रथम

सुभाष चन्द्र बोस का संक्षिप्त परिचय

(अ) संक्षिप्त जीवन–परिचय

(ब) ऐतिहासिक योगदान

(स) भारतीय राजनीति में प्रवेश

(द) राजनैतिक प्रशिक्षण

(य) सुभाषचन्द्र बोस पर मायावाद का प्रभाव

(र) वन्देमातरम् की उपयोगिता

जिस धरा ने दिया जन्म वीर सपूतों को

ऐसी धरा को शत्–शत् प्रणाम है।

ऐसे ही एक वीर सपूत का

नेताजी प्यारा नाम है।

जोड़ा जिसने आम जन को, हिन्दू और मुसलमान को,

बनायी एक फौज बिन साधन के,

ऐसे नेताजी को हमारा सलाम है।

जन–हित के लिये जेल यात्रा,

नेताजी के लिये बनी वरदान

किया असहयोग आन्दोलन

काँप गयी अंग्रेज सरकार

भेष बदलकर एक पठान का

जा पहुंचे, जर्मनी और जापान

हिटलर ने प्रेम से गले लगाया

सहयोग का पूर्ण विश्वास दिलाया

जीत लिये वर्मा और रंगून देश

लेकिन हाय रे काल की काली छाया

छीन लिया हमसे हमारा सुभाष प्यारा

सुभाष चन्द्र बोस का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तावना

संसार में अनेक व्यक्ति जन्म लेते हैं, पलते हैं, बड़े होते हैं, अपना जीवनयापन करते हैं, और समय पाकर काल कलवित हो जाते हैं। समय का कालान्त उन्हें बहुत थोड़े दिनों तक याद रखता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो जन्म लेते हैं और अपने कार्यों से समाज में ऐसे कीर्तिमान स्थापित कर जाते हैं कि उनको जन्म देने वाली माँ ही नहीं, धरती भी पवित्र और धर्ममय हो जाती है। उसका नाम इतिहास में अमरत्व को प्राप्त कर लेता है, उनकी मृत्यु पर कोई विश्वास नहीं करता, इतिहास उनकी पवित्र स्मृतियों को युग–युग तक बनाये रखता है। ऐसे ही भारत माता के महान पुत्र थे, सुभाष चन्द्र बोस, जिनका भारतीय इतना आदर करते हैं, जितना शायद ही किसी अन्य नेता का किया गया हो परन्तु न तो उनके विषय में अभी तक प्रामाणिक रूप में कुछ लिखा गया है न उनकी शास्त्रीय एवं सामाजिक सेवाओं का सही मूल्यांकन किया गया है। वह वास्तव में अजर–अमर और प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे। जिनका समस्त जीवन भारतीयों के लिये समर्पित रहा।

1. संक्षिप्त जीवन परिचय

कौन–सा दिन नहीं होता, कौन–सी तारीख नहीं होती, जिसमें बालकों के जन्म नहीं होते, पर इन जन्म लेने वाले बालकों में कोई न
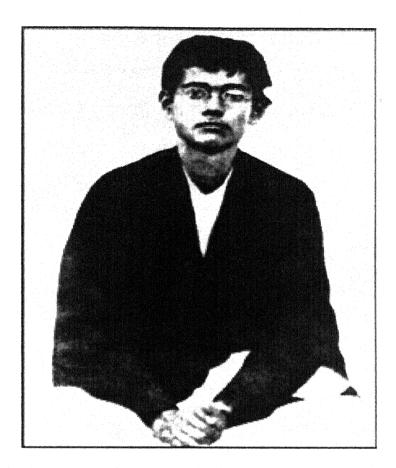
Image:Young Bose

कोई ऐसा भी होता है जिसके कारण उनको जन्म देने वाली तिथि इतिहास में विस्मरणीय हो जाती है, स्वयं इतिहास बन जाती है। यही सम्मान 23 जनवरी 1897 शनिवार को प्राप्त है, जिस दिन महान देशभक्त सुभाष चन्द्र बोस ने जन्म लिया था।''[1]

उनका जन्म स्थान कटक है।[2] कटक उस समय बंगाल में ही शामिल था और सुभाष चन्द्रबोस के पिता जानकी नाथ बोस 19वीं शताब्दी के आठवें दशक में उड़ीसा चले गये थे। वे कटक में ही एक वकील के रूप में बस गये थे। उनके पिता महिनगर के बोस परिवार के थे। उनकी माँ का नाम प्रभावती था और वे हाटखोला के दास परिवार की थीं। कटक उस समय छोटा–सा शहर था, इसकी आवादी लगभग 20000 थी। कटक में वाल्यावस्था गुजारने लायक स्वस्थ वातावरण था तथा शहरी तथा देहाती दोनों ही प्रकार की संस्कृतियों का समागम मिलता था।

''बोस बंगाली कायस्थ होते हैं।[3] बोस का जन्म कुलीन और स्वच्छ परिवार में हुआ था। उनकी सोच स्पष्ट और आदर्शमयी थी। जीवन विभिन्न प्रकार की व्यापकताओं से भरा हुआ था। बोस का परिवार अच्छा खाता–पीता मध्यमवर्गीय था। बोस के जन्म के दौरान पिता जानकी नाथ बोस की अच्छी वकालत चलने लगी। सुभाष चन्द्र बोस उनकी अच्छी वकालत में

---

1. सम्पादक शरत चन्द्र बोसः सुभाष चन्द्र बोस आत्म कथा प्रकाशित सम्पूर्ण बाङ.मय पृ0 5
2. सम्पादक शरत चन्द्र बोसः सुभाष चन्द्र बोस आत्म कथा प्रकाशित सम्पूर्ण बाङ.मय पृ0 5
3. पूर्वोक्ति प्र.7 देखिये बंगला मासिक कायस्थ पत्रिका के ज्येष्ठ 1335 बंगल सम्वत् में पुरन्दर खान पर नगेन्द्र नाथ बोस का लेख।

पैदा हुये थे

उनकी शिक्षा का प्रारम्भ एक मिशनरी स्कूल से हुआ। इनमें अधिकांश यूरोपियन या एंग्लो–इण्डियन बच्चे पढ़ते थे। इस अंग्रेजी ढंग के स्कूल में सुभाष चन्द्र बोस ने जैसा कि उन्होंने अपनी आत्म–कथा में स्वीकार किया है। कुछ ऐसी बातें सीखी जो किसी भारतीय स्कूल में नहीं सीख सकते थे। यहां पहाड़े के अलावा पारस्परिक व्यवहार, सफाई और समय की पावन्दी पर अधिक ध्यान दिया जाता था। इन स्कूलों में अंग्रेजियत सिखाई जाती थी। उस अंग्रेजी संस्कृति ने उनके जीवन को सुदृढ़, गम्भीर एवं अनुशासित बनाया।[1]

उन दिनों स्वदेशी आन्दोलन की लहरें बंगाल से उड़ीसा पहुंच रही थी। बेनी प्रसाद जी धार्मिक विचारों में रंगे हुये थे। वे आदर्श चरित्र एवं नैतिकता के व्यक्ति थे। उनकी संगति का बालक सुभाष पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि जब भी सुनते कि कोई संत महात्मा पधारे हैं, तो दौड़े–दौड़े जाते और उनके चरणों में सिर रखकर अपने कल्याण की बात पूछते। इन्हीं दिनों विभिन्न राष्ट्रीय सन्तों, समाजसेवियों एवं दार्शनिकों का उन पर प्रभाव पड़ा।[2]

---

1 पूर्वोक्ति प्र.7 देखिये बंगला मासिक कायस्थ पत्रिका के ज्येष्ठ 1335 बंगल सम्वत् में पुरन्दर खान पर नगेन्द्र नाथ बोस का लेख।

2. उस समय कक्षायें उल्टी चलती थीं हाईस्कूल की प्रथम कक्षा जाता था।

यहाँ जब उन्हें भारतीय वातावरण मिला तब उनकी प्रतिभा एवं योग्यता चमक उठी और उनमें आत्मविश्वास जाग्रत हुआ। सुभाषचन्द्र बोस की खेलों में बहुत रुचि नहीं थी परन्तु वे व्यायाम की कक्षा में नियमित रूप से शामिल होते थे। वे खेलों में इसलिए रुचि नहीं रखते थे क्योंकि यह बात उनके माता–पिता को पसन्द नहीं थी। और वे उस समय माता पिता को परमात्मा मानते थे। वे अपने एक शिक्षक से बहुत प्रभावित थे। ''वह शिक्षक वेणीमाधव दास थे जो उनकी हर जिज्ञासा को शान्त करने के लिए प्रस्तुत रहते थे।''[1] उन्होंने अपने जीवन को आत्मविश्वासी एवं सुदृढ़ बनाया। माता पिता की सेवा करना वे अपना धर्म समझते थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में उनके व्यक्तिव की स्पष्ट छाप होना स्वीकार किया है।[2]

उन्होंने स्वीकार किया है कि मेरे प्रधान अध्यापक बेनी प्रसाद ने मेरी सौन्दर्यानुभूति और नैतिक भावना को जाग्रत किया लेकिन वे मुझको कोई आदर्श नही दे सके। उन्हें विवेकानन्द वाड़मय एक रिश्तेदार के यहां पढ़ने को मिली। उन्होंने स्वीकार किया वह आदर्श जिसको वे अपना सम्पूर्ण अस्तित्व समर्पित कर सके, वह उन्हें विवेकानन्द से मिला।[3] विवेकानन्द का साहित्य उनके जीवन का प्रथम सोपान था। वे सच्चाई एवं धर्म में विश्वास करते थे। सन् 1912 में 15 वर्ष की अवस्था में उन्होंने मेट्रिक परीक्षा पूरे

---

1. अग्रवाल गिरिराज शरण कान्ति वीरसुभाष डायमण्ड पब्लिकेशन पृ0 8, 9
2. सेब शरतचन्द्र बोस सुभाष चन्द्र बोस आत्म कक्षा पृ0 27
3. आत्मकथा नेता जी सम्पूर्ण वाड.मय पृ0 31

स्कूल में दूसरा स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की थी, लेकिन इससे उन्हें शान्ति नहीं मिली। उन्हें महसूस होता था कि यह काम वे अपने लिये नहीं कर रहे हैं। उन्होंने सोचा, एक सच्चे महात्मा के चरणों में बैठकर योगाभ्यास सीखना चाहिये। घर में रहकर ऐसे महात्मा का मिलना कठिन है। यही सोचकर वे किसी आध्यात्मिक गुरू की प्रेरणा की खोज में निकल पड़े। अपने एक मित्र के साथ उन्होंने ऋषिकेश, हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन, वाराणसी आदि स्थानों की तीर्थयात्रा भी की। पर उन्हें सच्चा गुरू न मिला। उन्होंने देखा भगवा वेशधारी साधु गांजा, भांग पी रहे थे। नशे में चूर रहकर जीवन की अमूल्य घड़ियों को खो रहे थे। यह देख उन्हें साधु–जीवन से घृणा हो गई। वे छह माह के बाद घर लौट आये। भूख–प्यास सहते–सहते उनका शरीर दुर्बल हो गया था। घर पहुंचते ही वे बीमार पड़ गये। कई माह तक बिस्तर पर पड़े रहे। धीरे–धीरे स्वस्थ हुये। उन्होंने फिर से पढ़ाई में मन लगाना शुरू कर दिया। वे अभी कमजोर थे, घरवालों ने उन्हें परीक्षा में बैठने को मना किया लेकिन सुभाष नहीं माने। वे इण्टरमीडिएट की परीक्षा में बैठे। किसी को यह आशा भी न थी कि वे पास भी होंगे लेकिन सुभाष ने सबको हैरत में डालते हुये इण्टरमीडिएट परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके बाद प्रेसीडेंसी कालेज में भर्ती हो गये। उन्होंने देखा कि स्कूल में हिन्दी तथा बांग्ला आदि भारतीय भाषाओं की जगह अंग्रेजी की पढ़ाई होती है। छात्रों को रामायण व भारतीय ग्रन्थों की जगह बाईबिल पढ़ने को बाध्य

किया जाता है। सुभाष ने अपने संस्मरण में यह लिखा–

"उन स्कूलों में हमें जो पाठ्य–पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं उनका मुख्य उद्देश्य यही होता था कि विद्यार्थी मानसिक रूप से अंग्रेज हो जायें। हम बच्चों को ग्रेट ब्रिटेन का इतिहास और भूगोल पढ़ाया जाता था, जिसमें भारतवर्ष के बारे में नाममात्र की सामग्री होती थी। हमें कोई भी भारतीय भाषा नहीं पढ़ाई जाती थी जिससे हमें अपनी मातृभाषा का ज्ञान न हो पाये।

विवेकानन्द के भाषणों से उन्हें यह सारभूत प्रेरणा मिली कि "अपनी मुक्ति और मानवता की सेवा के लिए जीवन का परम लक्ष्य यह है कि पूर्ण आदर्श न तो मध्य युग का आत्मनिष्ठ उपन्यास हो सकता है न *बेन्थम और मिल* का आधुनिक उपयोगितावाद। मानवता की सेवा से ही देश प्रेम की भावना जाग्रत होती है।[1]

अतः कहा जा सकता है कि विवेकानन्द ही उनके प्रथम आदर्श व प्रेरणा बने। सुभाषचन्द्र के कानों में स्वामी विवेकानन्द के कहे शब्द बारम्बार घण्टों की तरह गूंजने लगे। "सत्य की खोज करो"। बचपन से ही वे अति चिन्तनशील थे। कुछ ही दिन पूर्व उन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर प्रेसीडेंसी कालेज में प्रवेश प्राप्त किया था। उनका समय गम्भीर चिन्तन अथवा देश की वर्तमान समस्याओं के समाधान के चिन्तन में ही

---

1. सिस्टर निवेदता (विवेकानन्द की शिष्या) की पुस्तक 'दिमास्टर एज आई शाहित

बीतता था। वे बारबार सोचते थे कि अपनी वर्तमान दशा के लिए हम स्वयं ही उत्तरदायी है और जो कुछ हम करना चाहते हैं उसकी शक्ति भी स्वयं हम में है। इस प्रकार धीरे–धीरे आध्यात्मिकता ने उनके मन मस्तिष्क पर अधिकार कर लिया।[1]

हृदय का आन्दोलन क्रमशः सीमातीत होता गया। मन की उथल–पुथल और भावों के उतार–चढ़ाव के बीच उनके विचार भटकने लगे। उन्हें यह निश्चय करना कठिन लग रहा था कि अन्ततः कौन–सा मार्ग ऐसा है जिस पर चलकर सत्य की खोज की जाय। इसी सत्य की खोज के लिये वे निकल पड़े। विवेकानन्द से ही उन्हें यह विचार मिला था कि आत्म पूर्णता के लिये विद्रोह आवश्यक है।

सुभाष चन्द्र बोस के जीवन की गतिविधियों पर विवेकानन्द के दर्शन का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा। उन्होंने जीवन को गत्यात्मक बनाने के लिये रात–दिन संघर्ष किये। बोस का जीवन वास्तव में विभिन्न प्रकार के अनुभवों एवं वास्तविकताओं से भरा पड़ा था। उन्होंने युद्ध को ही अपना धर्म माना। परन्तु उनके मतानुसार युद्ध न्यायप्रिय एवं धर्मप्रिय होना चाहिये।

सुभाषचन्द्र बोस के व्यक्तित्व पर विवेकानन्द स्वामी रामकृष्ण परमहंस के चिन्तन एवं दर्शन के साथ ही जार्ज बर्नार्ड शॉ के नाटकों का भी प्रभाव पड़ा। वे कहते थे "मुझे विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस में जिस दर्शन की उपलब्धि हुई, वह मेरी आवश्यकता के निकट था तथा यह दर्शन

---

1. अग्रवाल, गिरिराज शरण, पूर्वोद्धत, पृ0 12

मुझे वह आधार प्रदान कर सका जिस पर मैं अपने वैदिक एवं व्यवहारिक जीवन का पुनर्निर्माण कर सकता था। उसने मुझे कतिपय ऐसे आदर्श दिये जिनके सहारे मैं अपने जीवन की किसी समस्या या संवाद की घड़ी में अपने आचरण और क्रियाकलाप का मार्ग निश्चित कर सकता था।''[1]

स्वामी विवेकानन्द के बाद बोस के जीवन पर तत्कालीन नेता संत अरविन्द घोष के विचारों का गहन प्रभाव पड़ा था। अरविन्द घोष उस समय बंगाल के सबसे लोकप्रिय नेता थे।[2]

अरविन्द घोष के लेख और पत्रों ने उन्हें बहुत प्रभावित किया वे बंगाल के गिने चुने लोगों को पत्र लिखा करते थे। यह पत्र सुभाष की टोली में उनके मित्रों के बीच पढ़े जाते थे। इनमें से एक पत्र में अरविन्द ने लिखा था ''हमें भागवत ऊर्जा का डायनुमा होना चाहिये। जिससे हममे से जो भी उठ खड़ा हो उसके आस –पास के हजारों लोग उद्दीप्त होकर आनन्द विभोर हो जाये।''[3]

अरविन्द के दर्शन ने ही सुभाष चन्द्र बोस के जीवन को चुनौतीपूर्ण बनाया तथा वाह्य आडम्बर से दूर रखा। सुभाष पर जैसा कि उन्होंने स्वीकार किया है, अरविन्द के गहन दर्शन का भी प्रभाव पड़ा।

---

1. श्रवण कुमार, ''नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, सूक्तियाँ एवं सन्देश'' पृ0 10–11, प्रकाशन, हिमालय पुस्तक भण्डार, दिल्ली।
2. सुभाष चन्द्र बोस– एन इण्डियन पिलाग्रिम और ऑटो बायोग्राफी ऑफ सुभाषचन्द्र बोस (1897–1920) कलकत्ता थेकर स्थिक कम्पनी, 1918, पृ0 79–83
3. आत्मकथा नेताजी सम्पूर्ण बाड.मय, पृ0 31

शंकराचार्य का मायावाद उन्हें कष्टकर लगा रामकृष्ण और विवेकानन्द का मायावाद भी उन्हें इससे मुक्त न कर सका। मुक्ति के इस कार्य में उन्हें अरविन्द से विशेष सहायता मिली। परन्तु सुभाष अरविन्द घोष के भक्त थे लेकिन उनकी तरह साधु बनकर भटकना उन्हें पसन्द नहीं था और न ही आश्रम में रहना उन्हें पसन्द था। वे गांधी जी के भी अनुयायी थे, पर उनके विचारों से पूरी तरह सहमत नहीं थे। सुभाष उनकी कर्मठता को पसन्द करते थे।

रात्रि का गहन अंधकार परन्तु मन में प्रकाश की ओर जाने की लगन सत्य के अनुसंधान की प्रेरणा। पहाड़ों की कन्दराओं, जंगलो और ऋषि –मुनियो के आश्रमों की ओर उनके कदम बढ़ते ही रहे, किन्तु कहीं पर भी उन्हें सत्य की झलक देखने को नहीं मिल सकी। हिमालय के एकान्त स्थानों पर भी उन्हें शान्ति नहीं मिल सकी। उन्हें मथुरा, वृन्दावन और वाराणसी में भी शान्ति न मिल सकी।[1]

उन्होंने कई तीर्थस्थलों, आश्रमों एवं मठों में भ्रमण किया परन्तु तीर्थ स्थलों का महत्व उनकी नजरों में महत्वपूर्ण नहीं था। वाराणसी में उन्हें रामकृष्ण मिशन के स्वामी ब्रह्मानन्द ने घर वापिस जाने की प्रेरणा दी। स्वामी जी की आज्ञा शिरोधार्य कर वे घर वापिस आये। वास्तव में सुभाषचन्द्र बोस एक अति संवेदनशील किशोर थे। अपनी किशोरावस्था जिस पर स्वामी विवेकानन्द एवं रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव उन्हें एक ओर यदि आध्यात्मिकता

---

1. अग्रवाल, गिरिराज शरण, पूर्वोवित, पृ0 13

की ओर खींचता था वहाँ दूसरी ओर पारिवारिक प्रभाव उन्हें दूसरी ओर खींचता था। इस संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व में सुभाषचन्द्र बोस का व्यक्तित्व उभरकर सामने आया।[1]

अस्थायी सन्यास से वापस आकर सुभाषचन्द्र बोस ने फिर से अपना अध्ययन जारी करने का प्रयास किया। उन्होने दर्शन से आनर्स की कक्षा में प्रवेश ले लिया, परन्तु इसी बीच एक ऐसी घटना हो गयी जिसके कारण उन्हें महाविद्यालय से निष्कासित होना पड़ा, वह घटना यह थी, कि एक अंग्रेज अध्यापक द्वारा बार–बार विधार्थियों के साथ मारपीट का जबाव छात्रों ने मारपीट द्वारा दिया। इस घटना के कारण सुभाषचन्द्र बोस को कालेज से निष्कासित होना पड़ा क्योकि वे छात्रों के नेता बन गये थें।[2]

वह छात्रों के हित की बात सोचते थे। वह छात्रों के भविष्य को प्रगतिशील बनाना चाहते थे।

दो वर्ष का यह महाविद्यालय से निष्कासित जीवन सुभाषचन्द्र बोस ने कटक मे हैजा पीड़ितों की समाज सेवा में लगाया, दो वर्ष बाद वह पुनः कलकत्ता आये। भाग्य आजमाने कि शायद विश्वविद्यालय उनका निष्कासन वापिस लेने के लिए तैयार हो जाये उनके सौभाग्य से स्काटिस चर्च कालेज के प्रिंसिपल उर्कुहार्ट उन्हे इस शर्त पर लेने के लिए सहमत

---

1. मदन गोपाल (काम) लाईफ टाइम्स आफ सुभाष चन्द्र बोस एज टोल्ड इन हिज आन वर्ड्स, विकास, न्यू देहली, 1978, पृ0 49–50

2. सुभाष चन्द्र बोस इन ए इंडियन पिलग्रीम आप0 सिट0 पृ0 109–10

हो गये कि यदि प्रेसीडेन्सी कालेज के प्राचार्य को इसमें कोई एतराज न हो। उनके भाई शरत चन्द्र बोस ने इसकी व्यवस्था की और सुभाष चन्द्र बोस का अध्ययन पुनः प्रारम्भ हुआ।[1]

इसी काल में सुभाष चन्द्र बोस ने इंडियन डिफेन्स फोर्स में भर्ती होकर सैन्य शिक्षा प्राप्त की थी। सुभाष चन्द्र बोस ने स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखा है कि तब मुझे सैनिक बनने मे प्रसन्नता का अनुभव हुआ था। मैं न केवल अपने को नये वातावरण के अनुकूल बना सका था, बल्कि मुझे उस वातावरण में निश्चित सुख भी मिलता था। उस ट्रेनिंग से मुझे वह सब कुछ मिला जिसकी मुझे आवश्यकता थी या जिसकी मुझमें सीखने की चाहत थी। मुझमें साहस और आत्मविश्वास की भावना सुदृढ़ हुई।[2]

सुभाष चन्द्र बोस की शिक्षा गहरी और गम्भीर थी। उनकी जीवन की सैन्य शिक्षा प्रेरणामयी और देश के लिये कल्याणकारी थी। 1919 में उन्होने दर्शन शास्त्र में बी0ए0 आनर्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की, परन्तु उन्हें मेरिट में दूसरा स्थान मिला। एम0ए0 में उन्होंने प्रायोगिक मनोविज्ञान में प्रवेश लिया, परन्तु शीघ्र ही पिता ने उन्हें आई0सी0एस0 परीक्षा पास करने लन्दन भेज दिया। वे 15 सितम्बर 1919 को लन्दन रवाना हुये। उनके जहाज को लन्दन पहुँचने में एक महीने से कुछ अधिक ही समय

---

1. मदन गोपाल, पूर्वोक्त, पृ0 35
2. आत्मकथा, उद्धत नेताजी सम्पूर्ण वाड.मय, पृ0 76

लगा तब तक कैम्ब्रिज में आई0सी0एस0 परीक्षा के लिए प्रवेश हो चुके थे, और सत्र प्रारम्भ हुये दो सप्ताह हो चुका था, परन्तु सौभाग्य से सुभाषचन्द्र को उसी सत्र में प्रवेश मिल गया केम्ब्रिज और आक्सफोर्ड में सुभाषचन्द्र बोस को अधिक स्वतंत्र वातावरण मिला।[1]

जिस अवधि में वे केम्ब्रिज में रहे, उसमें सामान्य ब्रिटिश और भारतीय विद्यार्थियों में काफी सोहार्द था, लेकिन सामान्य अंग्रेज ऊपरी तौर पर तो मिलनसार दिखता था, लेकिन भीतर ही भीतर उसमें श्रेष्ठता का अभियान हिलोरें लेता रहता था। उस समय लेबर दल भी भारत के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था।[2]

केम्ब्रिज के अपने अध्ययनकाल में सुभाषचन्द्र बोस ने यूरोप के इतिहास, राजनीति ,अर्थशास्त्र तथा इंग्लैण्ड के इतिहास का अध्ययन किया, इससे उनका दृष्टिकोंण अत्यन्त व्यापक हुआ। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया हैं कि इस अध्ययन के पूर्व महाद्वीपीय यूरोप की राजनीति के सम्बन्ध में मेरे विचार स्पष्ट नही थे......। "हम भारतीयों को यह सिखाया जाता है कि यूरोप और कुछ नही ग्रेट ब्रिटेन का ही वृहताकार संस्करण है। अतः हमारी आदत यूरोप को इंग्लैण्ड के चश्मे से देखने की हो गयी है। यह निःसन्देह एक भारी भूल है, लेकिन मैं यूरोपीय महाद्वीप में नहीं गया था। अतः इस तथ्य को तब तक महसूस नहीं किया गया जब तक मैने आधुनिक यूरोपीय

---

1. वही, पृ0 81

2. आत्मकथा, उद्धत नेताजी सम्पूर्ण वाड.मय, पृ0 83–84

इतिहास और उसके कुछ मूल स्त्रोतों जैसें विस्मार्क की आत्मकथा, मेटरनिक के संस्करण, काबूर के पत्रादि को पढ़ा तथा उनका अध्ययन किया जिसने मेरी राजनीतिक भावना को जागृत किया तथा जिससे मुझे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की धारणाओं को समझने मे बड़ी सहायता मिली।".[1] यूरोपीय इतिहास का अध्ययन करने से सुभाष बाबू की मानसिकता को काफी प्रौढ़ता एवं श्रेष्ठता मिली।

जुलाई 1920 में लन्दन में सिविल सर्विस परीक्षा हुयी, इसमें यद्यपि सुभाष चन्द्र बोस के प्रश्नपत्र अच्छे नहीं गये थे, परन्तु जब परीक्षा परिणाम निकला तो सुभाषचन्द्र बोस ने उत्तीर्ण परीक्षार्थियों में चौथा स्थान प्राप्त किया था। अब परीक्षा परिणाम निकलने के बाद एक चुनौती तो समाप्त हो गयी सुभाष चन्द्र बोस ने अपनी योग्यता और प्रतिभा तो सिद्ध कर ही दी थी, परन्तु अब उनके सामने एक नया अन्तर्द्वन्द उत्पन्न हो गया था, वह यह था कि क्या वे ब्रिटिश शासन की सेवा स्वीकार कर अपने उन सभी स्वप्नों का अन्त कर दे जो एक तरुण के रूप में अपने देश के लिए उन्होंने देखे थे।[2]

इस समय सुभाष चन्द्र ने अपने बड़े भाई शरतचन्द्र को जो पत्र लिखे थे। उनके पत्रों के निम्न अंश उनकी मनः स्थिति को स्पष्ट करते है! "मेरे व्यक्तित्व का जिस प्रकार निर्माण हुआ, उसे देखते हुये मुझे सचमुच

---

1. वही, पृ0 86

2. अग्रवाल, गिरिराज शरण, पूर्वोवित, पृ0 84

सन्देह है कि मैं सिविल सर्विस के लिए एक उपयुक्त व्यक्ति बन सकूंगा। और मै सोचता हूँ कि जो कुछ भी थोड़ी बहुत क्षमता मुझमें है उसका अधिक अच्छा उपयोग स्वयं मेरी दिशाओं में ही किया जा सकता है। सुभाष चन्द्र बोस का सिविल सर्विस में चयन होना बहुत बड़ी उपलब्धि थी जिससे उनके जीवन की क्षमताओं का स्पष्टीकरण हो सका।

26 जनवरी 1921 को एक अन्य पत्र में उन्होनें लिखा थाः" आप यह कह सकते है कि अवांछनीय प्रणाली से दूर भागने के बजाय इसमें प्रवेश करना और इससे आखरी दम तक टक्कर लेना लेकिन इस प्रकार की टक्कर किसी को भी अकेले लेनी होगी।[1]

सो भी ऊपर वालों को भर्त्सना, अस्वास्थ्य कर स्थानों में तब्दीली और पदोन्नति से हाथ धोने जैसी स्थितियों का सामना करते हुये कोई व्यक्ति जो कुछ कर सकता है, उसकी तुलना मे वह सर्विस से बाहर रहकर भी काफी काम कर सकता है लेकिन मुझे विश्वास है कि वह नौकरशाही के सदस्य न होते तो कहीं ज्यादा काम कर सकते थे। इसके अलावा यह सिद्धान्त का भी सवाल है। सिद्धान्त रूप मे मैं उस रूचि का अंग होने का विचार स्वीकार नही कर सकता जिसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है और जो आज केवल रूढिवाद, सत्तालोलुपता, ह्रदयहीनता और लाल फीताशाही का पर्याय बनकर रह गयी है।"[2]

---

1. सुभाष बोस के पत्र प्रकाशित, नेताजी सम्पूर्ण वाड.मय, खण्ड–1, पृ0 80–90

2. वही, पृ0 90

मैं इस समय चौराहे पर खड़ा हूँ और किसी भी तरह का समझौता करना मेंरे लिए सम्भव नहीं है! या तो इस सड़ी गली सर्विस को मुझे लात मार देनी है और खुद को पूरी तरह देश की सेवा के लिए समर्पित कर देना है या मुझे अपने सभी आवेगों और आकांक्षाओं को भूल जाना है और सर्विस में प्रवेश करना है.......... मुझे विश्वास है कि इस प्रकार के उनकी दृष्टि मे अविचारणीय और खतरनाक प्रस्ताव पर मेरे बहुत से सम्बन्धी शोरगुल मचायेंगे। मुझे उनकी राय, उनके व्यंग्य और खुशी की कोई परवाह नही है लेकिन मुझे आपके आशीर्वाद में आस्था है, इसलिए मै आपसे यह अपील कर रहा हूँ। आज से 5 वर्ष पूर्व मैने एक ऐसे प्रयास में आपका समर्थन प्राप्त करना चाहा था, जिसका मेरे लिए बहुत ही विनाशकारी परिणाम हो सकता था । प्रायः एक वर्ष तक मेरा भविष्य अन्धकारमय और शून्य रहा, लेकिन मैने सब परिणाम साहस के साथ झेले, अपने आपसे कोई शिकायत नही की और मुझे आज गर्व है कि मैं अपने को इस त्याग के लिए सक्षम पा सका।[1]

इस घटना की याद मेरे इस विश्वास को मजबूती देती है कि यदि भविष्य में मुझसे किसी प्रकार के त्याग की मांग की जायेगी तो मैं पहले जैसा ही शन्ति, त्याग और दृढ़तापूर्वक प्रत्युत्तर दे सकूंगा । इस नये प्रयास में भी क्या उसी नैतिक समर्थन की आशा आपसे न करूं जो आपने

---

1. वही पृ0 91

पूरे मन से और उदारतापूर्वक मुझे पाँच वर्ष पूर्व दिया था?[1] सुभाष चन्द्र बोस का जीवन त्यागमयी सोपानों पर केन्द्रित था। उन्होंने अपनी गरिमा और आकांक्षा को सदैव उदारता की पंक्तियों में रखा।

उपरोक्त पंक्तियों से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि आई0सी0एस0 के लिए चुने जाने पर सात माह तक सुभाष किस अन्तर्द्वन्द्व से होकर गुजरे, और एक ओर उनके पिता की महत्वाकांक्षा दूसरी ओर देश और समाज के प्रति उनका प्रेम निष्ठा और देश सेवा के लिए उनका दृढ़ संकल्प और अन्त में विजय देश की हुयी। उन पर स्पष्ट रूप से अरविन्द घोष और सी0आर0 दास का प्रभाव था। उनके निश्चय को अभिव्यक्त करने वाला यह पत्र उनकी निर्णय की स्थिति को स्पष्ट करता है–" हमें एक राष्ट्र का निर्माण करना है और राष्ट्र का निर्माण तभी सम्भव हो सकता है जब हम हेम्पडेन और क्रामबेल जैसे व्यक्तियों के समझौता विरोधी आदर्शवाद से प्रेरित हो ......मुझे यह विश्वास हो चला है कि अब समय आ गया है कि हम ब्रिटिश सरकार से हर तरह का सम्बन्ध समाप्त करें। प्रत्येक सरकारी कर्मचारी चाहे वह मामूली चपरासी हो या प्रान्तीय गवर्नर भारत में ब्रिटिश सरकार की स्थिति को ही मजबूत करना है। ब्रिटिश हुकूमत सारे भारत के लिए घातक है। ब्रिटिश मत एवं सिद्धान्त शोषण एवं खोखलेपन की नीतियों पर आधारित थे।

---

1. वही, पृ0 91

किसी भी सरकार को खत्म करने का सबसे अच्छा साधन यही है कि उससे सहयोग न किया जाये । मैं ऐसा इसलिए नहीं कहता हूँ कि यह टालस्टाय का सिद्धान्त है और न इसलिए कहता हूँ कि गाँधी जी भी इस बात को दुहराते है, बल्कि इसलिए कहता हूँ कि मैं स्वयं इस पर विश्वास करने लगा हूँ। .... मैने अपना इस्तीफा कुछ दिन पहले भेज दिया हैं। मुझे इसे स्वीकार कियें जाने के बारे में भी सूचना नहीं मिली है।[1]

उन पर इस्तीफा वापिस लेने के लिए दबाब भी डाले गये परन्तु दृढ़ निश्चयी सुभाष ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया, क्योकि यह निर्णय काफी सोच समझकर मातृभूमि की सेवा के लिए लिया गया था। उनके पिता जानकी नाथ बोस इस बात से बहुत नाराज थे कि सुभाष चन्द्र बोस ने तत्कालीन भारत की सर्वश्रेष्ठ नौकरी आई0सी0एस0 मे सफलता प्राप्त करके भी उसे छोड़ दिया। उन्होंने सुभाष को इस बात का आशय पत्र भी लिखा था।[2]

अपने भावी कार्यक्रम के बारे में सुभाष चन्द्र बोस ने चितरंजन दास से राय मागी थी। भारत की सर्वश्रेष्ठ नौकरी आई0सी0एस0 में शानदार सफलता प्राप्त करने के बावजूद भी उसे छोड़कर मातृभूमि की

---

1. आत्मकथा में प्रकाशित का सुभाषचन्द्र बोस का जो उन्होंने 23 अप्रैल,1920 को अपने बड़े भाई शरतचन्द्र बोस का लिखा था, प्रकाशित नेताजी सम्पूर्ण वाड.मय खण्ड–1, पृ0 95

2. वही पृष्ठ 93

सेवा के निर्णय कर निश्चय ही उनके देश प्रेम व गम्भीरता को झलकाता है। जिसमें उन्होंने लिखा था कि इस समय भारत में ईमानदार कार्यकर्ताओं की कमी है और जब वे वापिस आयेंगे तो उनके पास कार्य की कमी नहीं होगी।[1]

भारत को आवश्यकता है कर्तव्यनिष्ठ, मेहनती एवं परिश्रमी सैनिकों एवं कर्तवयपरायणों की जो देश को जागरुक एवं नीतिवान बना सके।

2. <u>ऐतिहासिक योगदान</u>

सुभाष ने खुद को एक अपूर्व शक्ति के साथ सेनापति के रूप में समर्पित कर दिया जिसे देखकर अंग्रेज शक्ति भी नतमस्तक होने लगी। सुभाष को स्वयंसेवक सेना का सेनापति नियुक्त किया गया और सैनिक शिक्षण नियमित रूप से प्रारम्भ कर दिया गया। युवकों का संगठन अपूर्व जोश से कार्य कर रहा था।[2]

देश में एक के बाद एक दूसरा असन्तोष पैदा हो रहा था और विदेशी शासन के विरूद्ध विद्रोह की भावना बलवती होती जा रही थी तभी सरकार की ओर से घोषणा की गयी कि *प्रिन्स आफ बेल्स* भारत की यात्रा पर आ रहे है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने *प्रिन्स आफ वेल्स* की भारत यात्रा का पूर्ण बहिष्कार करने का प्रस्ताव पास किया।

---

1. वही, पृ0 95

2. पट्टाभि सीतारमैया : काँग्रेस का इतिहास, साहित्य मण्डल, दिल्ली।

कलकत्ता के कांग्रेस स्वयंसेवक दल का नेतृत्व सुभाष के हाथों में था। सुभाष बाबू ने प्रिन्स ऑफ वेल्स की भारत यात्रा का डटकर विरोध किया। कलकत्ता में हड़ताल की अभूतपूर्व सफलता से सरकार घबरा उठी। सरकारी समाचार पत्रों से सरकार के मत का आभास होता था। सरकार ने एक मत से कांग्रेस स्वयं सेवा दल को अवैध घोषित कर दिया था।[1]

1 दिसम्बर 1921 को बंगाल की जनता में पूरे जोश के साथ असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। कांग्रेस के अनेक नेता बन्दी बना लिये गये थे। सरकार एक साथ पूरे आन्दोलन को कुचल देना चाहती थी। देशबन्धु सी0आर0दास0 के साथ सुभाष बाबू को भी गिरफ्तार कर लिया गया। न्यायालय में सुभाष को 6 माह की सजा सुनाई गयी। सजा सुनकर सुभाष के चेहरे पर मुस्कान आ गयी उन्होंने मजिस्ट्रेट से कहा केवल 6 महीने क्या मैने मुर्गियाँ चुराई है?[2]

सुभाष की यह प्रथम जेल–यात्रा थी। जेल जाते समय उन्होंने अपनी माँ से कहा– " ईश्वर से प्रार्थना है कि भारत की मातायें मेरे जैसे पुत्रों को जन्म दें और प्रत्येक घर तुम जैसी माता से पवित्र हो उठे, मेरे रक्त की प्रत्येक बूंद भारत के घर–घर में स्वतंत्रता का बीजारोपण करें।[3] जेल जाते वक्त उनके कहे गये ये शब्द मातृभूमि के प्रति उनकी श्रद्धा

---

1. पट्टाभि सीतारमैया : काँग्रेस का इतिहास, साहित्य मण्डल, दिल्ली।
2. सरल, कृष्ण क्रान्ति कथायें, पृष्ठ 826।
3. अग्रवाल, गिरिराज शरण, क्रान्तिराज, सुभाष, पृष्ठ 41।

व प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं।

सन् 1922 में देशबन्धु चितरंजनदास ने एक महत्वपूर्ण योजना बनाई। उनका विचार था कि कौंसिल में अपने कार्यकर्ता चुनकर भेजे जायें और इस माध्यम से शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली जाये। उसी वर्ष कांग्रेस का सैंतीसवां अधिवेशन गया में हुआ। अधिवेशन का सभापतित्व देशबन्धु चितरंजनदास ने किया उन्होंने अपनी योजना सभासदों के समक्ष रखीं, परन्तु गाँधी के अनुयायियों ने इसका विरोध किया और प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। सुभाष चन्द्र बोस और पंडित मोतीलाल नेहरू चितरंजनदास के साथ थे, विरोध बढ़ गया और कांग्रेस मे आपसी मतभेद पैदा हो गये। चितरंजनदास और मोतीलाल नेहरू ने स्वराज पार्टी की स्थापना की घोषणा कर दी। देशबन्धु दास ने औपचारिक रूप से कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। वे गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस की आलोचना करने के लिए भी स्वतंत्र थे। स्वराज पार्टी का आन्दोलन तेज हो गया। सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व मे दिन पर दिन आन्दोलन की गति तीव्र होती जा रही थी, सभी क्षेत्रो में कौंसिल प्रवेश की चर्चा होने लगी।[1]

इसी समय स्वराज्य पार्टी ने फारवर्ड नामक दैनिक पत्र प्रकाशित करना शुरू किया। इसके मुख्य कर्ताधर्ता, सम्पादक व्यवस्थापक सुभाष चन्द्र बोस ही थे। इस पत्र मे सुभाष चन्द्र बोस ने अपनी उत्साह भरी

---

1. सान्याल, भूपेन्द्रनाथ : पूर्वोद्धत, पृ0 28–29

टिप्पणियों और अभिलेखो से सोई हुई जनता का आव्हान किया और इस प्रकार आन्दोलन में नवप्राणों का संचार कर दिया।[1]

मार्च 1924 में कलकत्ता कारपोरेशन का चुनाव हुआ। स्वराज पार्टी की योजना बनी कि उसे चुनाव लड़कर महानगर पालिका में भी प्रवेश करना है। कांग्रेस ने इसका प्रबल विरोध किया। मनोवल और जनता का सहयोग चितरंजनदास और सुभाष के साथ था। इससे उत्साहित होकर उसने अपने उम्मीदवार खड़े कर दिये। स्वराज्य पार्टी की महान विजय हुई। नगर पालिका के 75 स्थानों मे 55 स्थान पर स्वराज्य पार्टी के प्रत्याशी विजयी घोषित किये गये। देशबन्धु दास नगर पालिका के मेयर बने।[2]

सुभाष चन्द्र बोस को नगर पालिका का कार्यकारी अधिकारी बनाया गया। उस समय सुभाष की अवस्था मात्र 27 वर्ष की थी।

सुभाषचन्द्र बोस और चितरंजनदास ने नगर महापालिका की कार्यप्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन किये। इस समय सुभाष को अपने एक महान नेता का निर्देशन मिल रहा था और वे चितरंजनदास के नेतृत्व में अपने विचारों को क्रियान्वित करने में लगे हुये थे। उनके नेतृत्व में कलकत्ता महानगर में पहली बार यह अनुभव किया गया कि कम से कम स्थानीय शासन के क्षेत्र में एक स्वराज्य संस्था बनी है। नगर की जनता को पहली

---

1. सीतारमैया, पूर्वोद्धत

2. वही

बार ऐसा अनुभव हुआ कि नगरपालिका के कर्मचारी जनता के सेवक हैं। नगर पालिका में सभी व्यक्तियों के लिए खादी के वस्त्र पहिनना अनिवार्य कर दिया गया था। महापालिका में पहली बार राष्ट्रीय नेता आमंत्रित किये गये थे। अब ब्रिटिश शासन के अधिकारियों का स्वागत बिल्कुल बन्द कर दिया गया। अब राष्ट्रीय नेताओं को नगर पालिका में बुलाया जाता था और उनका अभिनन्दन किया जाता था।[1] स्वराज्य पार्टी को इस विजय ने सुभाष चन्द्र बोस के मनमस्तिष्क पर बसी मातृभूमि की सेवा व विश्वास की जड़ों को और मजबूत कर दिया।

सुभाष चन्द्र बोस ने स्वयं अपने वेतन में 50 प्रतिशत कटौती कर दी थी। उन्हें 3,000 रुपये मासिक वेतन मिलना चाहिये था, उसके स्थान पर उन्होनें मात्र 1500 रुपये लेना स्वीकार किया।[2]

सुभाष चन्द्र बोस ने अब सुधार और जन सेवा के कार्य ने अपना सम्पूर्ण समय और ध्यान केन्द्रित करना शुरू किया।

स्वराज्य पार्टी की प्रसिद्धि देखकर और यह जानकर कि सुभाष द्वारा किये जाने वाले कार्य जनता को उनकी ओर आकर्षित कर रहे हैं, ब्रिटिश सरकार घबरा उठी। सरकार ने उन क्रान्तिकारी सुधारों को क्रान्तिकारी विचारधारा मान लिया । विदेशी सरकार कैसे सहन कर सकती थी, कि देश में राष्ट्रीय विचारों का प्रचार किसी भी रूप में हो, इसे रोकने के षडयन्त्र

---

1. अग्रवाल, गिरिराज शरण, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 42

2. सान्याल, भूपेन्द्रनाथ : पूर्वोद्धत, पृष्ठ 30–31

होने लगे।

इस प्रकार सुभाष चन्द्र बोस ने राजनीति में प्रवेश किया और उनका राजनीतिक प्रशिक्षण देशबन्धु चितंरजनदास के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। वे सी0आर0दास के व्यक्तिगत सचिव व सहयोगी थे। प्रारम्भ से ही उन्हें इस प्रकार का प्रशिक्षण मिला था कि उनका गांधी जी के विचारों से मतभेद बना रहा। फरवरी 1922 में वे जेल में भी चितरंजनदास के साथ रखे गए थे।[1]

यहां वे सेन्ट्रल जेल में रखे गए थे। देशबन्धु चितरंजनदास के सान्निध्य मे , सुभाष चन्द्र बोस पर चितरंजनदास के व्यक्तित्व, कृतित्व और विचारों का गहन प्रभाव पड़ा। सी0आर0दास की मृत्यु के समाचार से वे एक क्षण के लिए अर्द्ध चेतन हो गये थे। जिसके निर्देशन व स्वामित्व से उनका व्यक्तित्व विकसित हुआ और साथ–साथ राजनीतिक अवधारणाओं का वास्तविक मूल्यांकन हुआ था, वह अब नही था। सब तरूणों पर जिसका वरदहस्त था वह स्नेह, सहानुभूति बरसाने वाला ही चला गया। व्याकुलता की चरम परिणति थी, यह सुभाष बाबू के लिए । देशबन्धु दास की पत्नी श्रीमती बासन्ती देवी से उन्हें मातृत्व स्नेह मिला था। सुभाष ने उन्हें इस अवसर पर लिखा था–

''श्रीचरणेशु, माँ।

---

1. सुभाष चन्द्र बोस के साथ चितरंजनदास बहुत कम समय तक रहे थे। वे केवल 3 वर्ष उनके साथ रह सके और उनके मार्गदर्शन में अपना कार्य कर सके। जब सुभाष माण्डले जेल में थे तो 16 जून 1925 को देशबन्धु चितरंजनदास का देहावसान हो गया।

आज आपकी इस घोर विपत्ति के समय हम प्रवासी बंगाली आपके पास सन्देश भेज रहे है। जैसी विपत्ति आज आप पर पड़ी है उससे महान विपदा किसी महिला के जीवन में नहीं आ सकती परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि आपके इस दुर्दिन में हम आपके और आपके परिवार के समक्ष उपस्थित नही हो सके। विपदा के गम्भीर कुहासे में, शोकावरुद्ध द्वार को भेदकर यदि हमारी वाणी आप तक पहुॅच जाये, तो हम अपने आपको धन्य मानेगें। देशबन्धु दास की पत्नी को उनके दुर्दिन वक्त पर लिखे गये सुभाष के ये शब्द उनके भारतीय नारी के प्रति असीम श्रद्धा व आदर को व्यक्त करते हैं।

जो चले गये, वह हमारे भी आत्मीय थे। आज समस्त भारतवासी उनके शोक में रूदन कर रहे है। वे आभागी और अछूत जातियां आज उनके लिए रूदन कर रही है, जिनके लिए वह अपना संचित धर्म मुक्तहस्त से वितरित कर रहे थे। जिन प्राणियों के लिए वह अपना मन, प्राण स्वास्थय और आयु उत्सर्ग कर गये वे आज उनके शोक में व्याकुल है परन्तु बंगाल के जो युवक अपने प्राणों की बाजी लगााकर उनकी ध्वजा के नीचे एकत्रित हुये थे, जिन युवकों ने सुख दुख अन्धकार और आलोक में उनके आदेश का पालन किया था, स्वतन्त्रता संग्राम में प्रवृत्त होकर जिन्होंने कभी तो विजय गर्व अनुभव किया और कभी कारा की श्रंखला में बांधे गये, निराशा की निशा और सफलता के प्रभाव में जिन लोंगो ने कभी उनका साथ नहीं छोड़ा जिन लोगों ने उनमें पिता, सखा और गुरू के अपूर्व व्यक्तित्व के

दर्शन किये थे, आज क्या भाषा के माध्यम से उन तरूणों की दशा व्यक्त की जा सकती थी।

देशबन्धु चले गए, सिद्धान्त के उस वरद पुत्र ने विजय मुकुट पहनकर ही भारत के विशाल कर्मक्षेत्र में दिव्यलोक की यात्रा की । आज उन्होने महान देशप्रेम के द्वारा ही अमरत्व प्राप्त किया है। आज हमारे चारों ओर बाह्य संसार में अन्धकार है और हृदय में शून्यता है । जहां तक दृष्टि जाती है, वहां तक अन्धकार ही अन्धकार है। अन्धकार की प्राचीर में आलोक किरण के प्रवेश के लिए तिलभर भी स्थान नही है।

उस दिन की बात याद आती है जिस दिन बंगाल के आकाश पर निराशा की घटाएं छायी हुई थीं बंगाल का वीर केसरी कारागार में डाल दिया गया था। उस निराशा और अन्धकार को चीरकर एक अपूर्व मोहिनी मूर्ति महाशक्ति के रूप में बंगाल के कार्यक्षेत्र में उतरी थी। उस दिन बंगालियों ने अपने आपको देशनायिका ही नहीं देशमाता के आसन पर बैठाया था।

इसी कारण निवेदन है कि आप इन विपदा के दिनों में हमें सान्त्वना दें। जिस गहन अन्धकार में आज सम्पूर्ण देश डूबा हुआ है, जिस बिपन्नावस्था और हाहाकार में आज स्वर्णभूमि बंगाल श्मशान के समान हो गयी है, उसमें आलोक का संचार नयी शक्ति का उन्मेष नये उत्साह का उद्दीपन आपके अतिरिक्त और कौन कर सकता है? जिस आव्हान के साथ आपने एक दिन बंगालियों की नस–नस में देशभक्ति का संचार किया था, उसी

से अब आप बंगालियों को जाग्रत करें। बंगाल का सम्पूर्ण तरूण समाज आपके चरणों में भक्ति–अधूर्य देगा। आपका आशीर्वाद पाकर वह कर्मक्षेत्र में विजयी होगा और अर्जित विजयमाला से आपकों विभूषित करता रहेगा। वन्दे मातरम् । इति।

माण्डले सेन्ट्रल जेल — आपका सेवक

6–7–1925 — सुभाषचन्द्र बोस

3. भारतीय राजनीति में प्रवेश

सुभाष चन्द्र बोस ने स्वयं अपनी आत्मकथा में स्वीकार किया है दिसम्बर 1911 तक मैं राजनीतिक दृष्टि से इतना अविकसित था कि सम्राट जार्ज पंचम के राज्यारोहण के बारे में एक निबंध प्रतियोगिता मे शामिल हुआ। दिसम्बर मे सम्राट जार्ज पंचम कलकत्ता आये तो सुभाष चन्द्र ने बड़े उत्साह से उनकी सवारी देखी थी। पहली प्रेरणा उन्हें 1912 में एक विद्यार्थी से मिली जिसका नाम उन्होने अपनी आत्मकथा में एच0के0एस0 लिखा है, प्राप्त हुयी। इस विद्यार्थी से सुभाषचन्द्र का परिचय उनके प्रधानाध्यापक वेनीमाधव ने कराया था वह कटक आने से पूर्व कलकत्ता की एक टोली से सम्बद्ध था, जिसका लक्ष्य अध्यात्मिक उत्थान और रचनात्मक ढंग से राष्ट्रीय सेवा करना था। इस मित्र ने सुभाष चन्द्र का ध्यान देश

के प्रति एवं कर्तव्य के प्रति आकर्षित किया और देशभक्त टोली से उनका परिचय कराया। इस समय तक सुभाषचन्द्र बोस अपनी आध्यात्मिक अभिरूचि नही छोड़ सके थे। उनके स्कूली अध्यापकों में केवल एक ही ऐसे थे, जिनकी राजनीति में रूचि थी। अतः जब वे कलकत्ता अध्ययन हेतु आये तो उन्होंने उनसे राजनीतिक रुचि जाग्रत करने की आशा व्यक्त की। उन पर अपने महाविद्यालय जीवन का ही सबसे अधिक प्रभाव रहा। उनकी इच्छा काफी समय तक राजनीतिक समाज सेवा द्वारा राष्ट्र–निर्माण की थी। राजनीतिक दृष्टि से सुभाष की टोली किसी भी तरह से आतंकवादी कार्यो या गुप्त षडयन्त्र के विरुद्ध थी, इसलिए यह टोली बंगाल के विद्यार्थियों मे बहुत लोकप्रिय नही थी। क्योंकि उन दिनों आतंकवादी क्रांन्तिकारियों से आंदोलन के प्रति बंगाल के छात्रों में बड़ा आकर्षण था।

उन पर इस काल में अरविन्द घोष के विचारों और जीवन का भी प्रभाव पड़ा था, क्योंकि अरविन्द घोष उस समय बंगाल मे सबसे अधिक लोकप्रिय नेता थे।[1]

घोष के दर्शन के प्रभाव से सुभाष बोस के अलावा और भी नेताओं पर उनका प्रभाव पड़ा। राजनीति में सक्रिय होने की खातिर उन्होंने एक अच्छी नौकरी छोड़ दी थी। कांग्रेस के मंच पर वे (अरविन्द घोष) वामपंथी विचारों के मुख्य स्तम्भ बनकर खड़ें हुये थे और एक समय में ऐसी

---

1. वही, पृष्ठ 39

स्वतन्त्रता के पक्ष में निर्भीक होकर बोले थे। लोकमान्य तिलक के निकटवर्ती सहयोग से ही उन्हें देशगामी लोकप्रियता प्राप्त हुयी थी।[1]

सुभाष चन्द्र बोस की राजनीतिक चेतना जाग्रत करने में प्रेसीडेन्सी कालेज के अध्ययनकाल में घटी उन तमाम घटनाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिनमें उन्होंने देखा कि जातीय अभिमान के कारण किस प्रकार अंग्रेज लोगों द्वारा भारतीयों का अपमान किया जाता था। इन अपमानजनक घटनाओं से उनके मन में बैठी शंकराचार्य के मायावाद सिद्धान्त की जड़ें हिल जाती थी।[2]

प्रथम विश्वयुद्ध काल में सुभाष चन्द्र के विचारं अधिक स्पष्ट हुये। उनके मन में एक बात स्पष्ट हो गयी कि "यदि भारत को एक आधुनिक सभ्य राष्ट्र बनाना है तो उसे इसकी कीमत चुकानी होगी और वह किसी प्रकार की भौतिक और सैनिक समस्या से बच नही सकता जो लोग देशोद्धार के काम मे लगे हुये हैं उन्हें नागरिक और सैनिक दोनो ही प्रकार के प्रशासन का भार ग्रहण करने के लिए तैयार रहना होगा, राजनीतिक स्वाधीनता अविभाज्य है और उसका अर्थ है विदेशी नियन्त्रण और स्वामित्व से सम्पूर्ण मुक्ति । विश्वयुद्ध ने यह दिखा दिया कि यदि किसी राष्ट्र के पास सैनिक शक्ति नहीं है तो वह अपनी स्वाधीनता कायम रखने की आशा नही कर सकता।[3]

---

1. वही, पृष्ठ 51
2. वही, पृष्ठ 61
3. वही, पृष्ठ 62

सुभाषचन्द्र बोस को केम्ब्रिज में शिक्षा प्राप्त करने का समय मिला। केम्ब्रिज में सुभाषचन्द्र बोस को स्वतंत्र वातावरण मिला, जो भारत के परतंत्रता के वातावरण से भिन्न था। इस वातावरण ने उनके मन में देश को स्वतंत्र कराने की चाह उत्पन्न की। सुभाष चन्द्र बोस ने जब आई0 सी एस0 की परीक्षा उत्तीर्ण कर सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने की मनः स्थिति बनाई, उस समय उनके मन में स्पष्ट रूप से राष्ट्रीयता की भावना और राजनीतिक चेतना जन्म ले चुकी थी। नौकरी छोड़कर अध्यात्म के मार्ग पर आगे बढ़कर वे साधु नहीं बनना चाहते थे, बल्कि उनके मन में उस समय स्पष्ट रूप से भारतमाता की सेवा करने की अदम्य इच्छा थी, जिसने उन्हें आई0सी0एस0 उत्तीर्ण करके भी सरकारी नौकरी का त्याग करने के लिए प्रेरित किया।[1]

16 जुलाई 1921 के यूरोप प्रवास के बाद सुभाष चन्द्र बोस ने वापिस अपनी मातृभूमि की धरती पर कदम रखा। सारे देश में उत्साही नवयुवकों में उनका नाम हो गया था। सुभाष के मन में कुछ करने की ललक थी। इस सम्बन्ध में वे कुछ नेताओं से मिलना चाहते थे, उनका विचार जानने के लिए उन्होनें सबसे पहले महात्मा गांधी से मिलने का निश्चय किया और वे मणि भवन में जाकर महात्मा गांधी से मिले। गांधी जी ने स्वाभाविक मधुर मुस्कान के साथ इस नवयुवक का स्वागत किया।[2]

सुभाष के मन में गांधी जी से पूछने के लिए प्रश्न ही प्रश्न

---

1. सरल, श्री कृष्णः कालपी सुभाष, राष्ट्रीय प्रकाशन, उज्जैन, 1974, पृष्ठ 31

2. अग्रवाल गिरिराज शरण, क्रान्तिवीर सुभाष, पृष्ठ 38

थे। अपनी पहली मुलाकात में ही सुभाषचन्द्र बोस ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। महात्मागांधी ने उनको कलकत्ता जाकर देशबन्धु चितरंजन दास से मिलने की सलाह दी।[1]

सुभाष के मन में चितरंजनदास से मिलने की उत्कंठा पहिले से ही थी। उन्होने इंग्लैंड से ही उनको पत्र लिखा था, जिसका उत्तर भी उन्हें मिल चुका था, फिर वे चितरंजनदास से मिले, चितरंजनदास से सुभाष इससे पहिले भी मिल चुके थे, जब वे छात्र के रूप में कालेज से निकाल दिये गये थे, तो चितरंजनदास से परामर्श करने गये थे। अब जब सुभाषचन्द्र बोस चितरंजनदास से मिले, तो उन्होंने सी0 आर0 दास को एक भिन्न रूप में ही देखा अब वे एक घण्टे में हजारों रुपये कमा लेने वाले बैरिस्टर चितरंजनदास नही थे। सुभाषचन्द्र को एक सच्चा आध्यात्मिक गुरू तो नही मिल पाया था, परन्तु उन्हें एक सच्चा राजनीतिक गुरू अवश्य प्राप्त हो गया। नये रूपों मे दोनो एक दूसरे से प्रभावित हुये। सुभाष ने देशबन्धु में एक अपूर्व प्रतिभा देखी और इस तेजस्वी युवक में चितरंजन दास ने देशप्रेम और आत्म बलिदान की अद्‌भुत लालसा देखी![2]

देशबन्धु ने अपने द्वारा स्थापित एक विद्यालय में सुभाषचन्द्र को आचार्य

---

1. सुमन, रामनाथ सुभाष चन्द्र बोस, नवभारत प्रकाशन, लूकरगंज, इलाहाबाद, पृष्ठ 76
2. सान्याल, भूपेन्द्रनाथः चितरंजनदास, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ 21–22

का काम सौप दिया। सुभाष चन्द्र बोस, देशबन्धु को अपना आदर्श मानते थे। उनके जीवन के विकास में चितरंजनदास का बहुत बड़ा योगदान था।

4. राजनीतिक प्रशिक्षण

सन् 1919 की पंजाब वाली घटना ''जलियाँ वाला बाग हत्याकाण्ड'' को लेकर देश में भारी प्रतिक्रिया हुई। पूरे देश में उथल–पुथल मच गई। कांग्रेस से मोतीलाल नेहरू जैसे सम्पन्न वकील जुड़े। इस तरह बंगाल से चितरंजनदास जैसे सम्पन्न वकील भी जिनकी रोज की आमदनी हजारों रुपये की थी, आन्दोलन में कूद पड़े थे। देशबन्धु चितरंजनदास अपनी लाखों की आमदनी को लात मारकर राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े और बंगाल के बेताज बादशाह, स्वतंत्रता संग्राम के अग्रगामी योद्धा, महान राजनीतिक कलकत्ता हाईकोर्ट के सर्वश्रेष्ठ वैरिस्टर ने अपनी तिजोरी का मुंह खोल दिया।

बंगाल का यह 'हरिश्चन्द्र' एक ही रात में राजा से रंक हो गया। इन्होंने खुलकर अंग्रेजों की हिंसात्मक कार्यवाहियों का विरोध किया। किसी भी प्रतिरोध के आगे चितरंजनदास न झुके। इन्होंने देश के युवाओं के हृदय में विद्रोह और क्रान्ति की आग भड़का दी थी।''[1]

सुभाषचन्द्र बोस ने दो वर्ष तक चितंरजदास के नेतृत्व में

---

1. प्रस्तुति निधि गुप्ता– ''राष्ट्रनायक नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, पृष्ठ 23, प्रकाशक मारुति प्रकाशन दिल्ली रोड, मेरठ।

राजनीतिक प्रशिक्षण प्राप्त किया। 1921 में बेलवाडा में भारतीय कांग्रेस समिति का सम्मेलन हुआ और इस सम्मेंलन में असहयोग आन्दोलन को नये ढंग से चलाने की योजना स्वीकार की गयी। इसमें यह निर्णय लिया गया कि 1 करोड़ स्वयंसेवक बनाये जायें और तिलक स्वराज्य कोष के लिए 1 करोड़ रुपया एकत्रित किया जाये। कलकत्ता से लौटकर देशबन्धु ने पूरे मनोयोग के साथ स्वयंसेवक की भर्ती का कार्य प्रारम्भ कर दिया। सभी को गणवेष वितरित किये गये।[1]

5. सुभाष चन्द्र वोस पर मायावाद का प्रभाव

मायावाद अद्वैत वेदान्त का एक मूलभूत सिद्धान्त है। इसका महत्व इसी से जाना जा सकता है। इसके बिना अद्वैत दर्शन का प्रतिपादन करना असम्भव है। यही कारण है कि मायावाद के पूर्व भारतीय दर्शन में अद्वैत दर्शन की विचारधारा निष्पक्ष न हो सकी। शंकराचार्य ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी प्रतिभा से एक तर्क सम्मत सिद्धान्त के रूप में मायावाद को स्थापित किया। वेदों, उपनिषदों एवं भगवद्गीता में यत्र–तत्र 'माया' शब्द का प्रयोग मिलता है परन्तु वहाँ इसका प्रयोग इन्द्रजाल, सृजन शक्ति, भ्रम, रहस्यात्मक शक्ति के रूप में किया गया है। माया शब्द के इन विभिन्न प्रयोगों को एक सूत्र में पिरोकर उन्हें एक प्रमाणित सिद्धान्त के रूप में

---

1. पट्टाभि सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास, साहित्य मण्डल, दिल्ली।

स्थापित करने का श्रेय शंकराचार्य को है परन्तु जबसे मायावाद का प्रस्ताव किया गया तभी से अधिकाशं विद्वान दार्शनिकों ने मायावाद के खंडन को अपने चिन्तन का मुख्य विषय बनाया। शंकराचार्य के पश्चात् भास्कर, रामानुजभद्रवाचार्य तथा उसके अनुयायियों ने बड़े जोर–सोर से मायावाद का खंडन किया जिसका प्रतिवाद शंकराचार्य के अनुयायियों के बड़े तार्किक ढंग से किया।

''इसलिए प्रायः प्रत्येक भारतीय जगत की प्रत्येक वस्तु को अथवा उपलब्धि को माया कहा जाता। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि मायावाद जितना प्रचलित सिद्धान्त है उतना कोई अन्य दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है।

सुभाष चन्द्र वोस पर (महोपाध्याय अनन्तकृष्ण शास्त्री) का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने वेदान्त वैदिककृत शतदूषणी के प्रतिवाद में शदूषणी नामक ग्रन्थ लिखा और इस ग्रन्थ के खण्डन में विशिष्ट द्वैतवादी अभिनव दैविक उतमूखीरराघवाचार्य ने ''परमार्थ भूषणम्'' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस प्रकार आधुनिक युग में संस्कृत में भी मायावाद को लेकर एक नया साहित्य तैयार हो गया।

सुभाष चन्द्र के जीवन पर मायावाद के प्रभाव के कारण वह इन्द्रजाल, कपट, धोखा, भ्रम, स्वप्न, असत्य एवं पाखण्ड जैसी विचारधाराओं से दूर रहे वे तत्वज्ञानी थे वह जानते थे।

''उपाधि और शक्ति में भी अद्वैत वेदान्त के अनुसार कोई विरोध

नहीं है क्योंकि शक्ति औपचारिक है वास्तविक नहीं। इस दृष्टि से उपाधि की कल्पना ही माया है, के संप्रत्यय का मुख्य घटक सिद्ध होना है। उपाधियाँ माया या ईश्वर की शक्ति के संरचनात्मक सिद्धान्त है। तत्व और अतत्व से अनिर्वचनीय स्वप्नमय जगत और संसारी जीवों की अनेकता का प्रबंध उपाधियों के कारण उत्पन्न होता है। उपाधियाँ परिच्छेद है जिनके द्वारा इस ब्रह्म में जो नहीं है उसका प्रयोग आरोप ब्रह्म से करना है। इस प्रकार उपाधियों के द्वारा ब्रह्म 1. साकार ईश्वर 2. जगत और 3. जीव हो जाता है। सब भेद उपाधियों पर निर्भर है और उपाधियां अविद्या पर निर्भर है।

सुभाष चन्द्र बोस ने स्वामी दयानन्द के दर्शन का अनुसरण किया। प्रकृति का स्वरूप कुछ सांख्य दर्शन की प्रकृति के समान है किन्तु शैव दर्शन की प्रकृति के पूर्णतया समान है। उनके अनुसार सत्व, रज एवं तम के साम्यावस्था का नाम प्रकृति है।

स्वामी दयानन्द का दर्शन द्वैतवाद के नाम से जाना जाता है क्योंकि उनके मत से ईश्वर जीव और जगत का उपादान करुणारूपा पद्धति, ये तीनों पदार्थ अनादि है। इन्हीं तीनों पदार्थों को नित्य भी कहते हैं जो नित्य पदार्थ है, उनके गुण, कर्म एवं स्वभाव भी नित्य है।

"द्व सुपर्णा समुजा सखाया"

यह मन्त्र ऋग्वेद का है, जिसका अनुसरण शंकर ने एवं सुभाषचन्द्र बोस ने किया। शंकर के अनुसार जगत का कारण प्रकृति अनादि पदार्थ है। ईश्वर जगत का निमित कारण है और प्रकृति उपादान कारण। अपने

मत की पुष्टि के लिए यह कहते हैं कि उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं। अतः ब्रह्म जगत का उपादान कारण कदापि नहीं हो सकता क्योंकि – ब्रह्म अदृश्य और जगत दृश्य है, ब्रह्म अखण्ड और जगत खण्ड रूप है।

सुभाष चन्द्र वोस शंकराचार्य अमास की व्याख्या अध्यासो नामात स्मिश्तबुद्धि के रूप में करते हैं। अमति जहाँ जो वस्तु नहीं है वहाँ उसे कल्पित करना जैसी रस्सी, जो सत्पदार्थ वस्तु है, मैं अवस्तु सर्प जो असत् पदार्थ है, की कल्पना करना अभ्यास है अर्थात जैसे रस्सी में सर्प अभ्यस्त हो जाता है। वैसे ही जगत ब्रह्म में अभ्यस्त हो जाता है।

अद्वैत वेदान्त में माया को अनिर्वचनीय कहा गया है। साधु निश्चल दास का भी कहना है कि माया न तो ब्रह्म के समान सत् है और न खरगोश के सींग के समान असत् है। अतः भाषा अवद्यिा या अज्ञान सत् असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय है। स्वामी दयानन्द का आक्षेप है कि माया का यह रूप अवोध गम्य होने के कारण स्वीकार्य नहीं है। यह तो समस्या को सुलझाने का उपाय नहीं वरन् उससे बच निकलने का साधन है। यह मात्र वदतो व्याघातृ है। वह ऐसी वात है जैसे सोने में पीतल मिला हो। उसको सर्राफ के पास परीक्षा कराते कि यह सोना है या पीतल। सब यही कहोंगे कि हम न सोना न पीतल कह सकते हैं किन्तु इसमें दोनों धातु मिली हैं।

सुभाष चन्द्र वोस ने ज्ञान को सबसे अधिक विश्वसनीय माना है बिना ज्ञान के मानवीय जीवन अधूरा और अपूर्ण है। ज्ञान एवं माया एक

दूसरे के पूरक हैं। ज्ञान के द्वारा मानवीय जीवन का विकास हो जाता है। अद्वैतवेदान्त में माया या अविद्या को अनादि मापा गया है। गंगा प्रसाद उपाध्याय अनादि के अर्थ को लेकर माया पर आक्षेप करने का प्रयास करते हैं। अज्ञान के कारण ही कोई वस्तु दो दृष्टिगोचर होती है अर्थात वस्तु को देखने वाला अज्ञानी है और यदि यह अज्ञान अनादि है तो इसका यह अर्थ होता है कि व्यक्ति को कभी ज्ञान हुआ ही नहीं सदा भ्रान्ति ही भ्रान्ति रही। इस प्रकार उपाध्याय जी का विचार है कि अविद्या या माया को अनादि मानने पर सीधा अर्थ यही होगा कि ब्रह्म अनादि से ही अज्ञानी और भ्रमित है। अनादि का इससे भिन्न कोई अन्य अर्थ करना अनुचित है।

सुभाष चन्द्र वोस ने "मायावाद बनाम लीलावाद" का खण्डन किया।

जो लोग मायावाद का खण्डन करते हैं और उसके स्थान पर लीलावाद प्रस्तावित करते हैं जैसे रामानुजाचार्य के अनुयायी और श्री अरविन्द वे वास्तव जगत को वास्तविक नहीं मानते हैं। लीलावाद जगत का वास्तववाद नहीं है। वह मायावाद पर ही आधारित है। उनमें कोई तात्विक अन्तर नहीं है अनेक विद्वान सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोषों से ग्रस्त होते हुये भी यदि लीलावाद को विवर्तवाद के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया जाय। जैसा कि अद्वैत्ततैदान के मनीषियों ने किया तो उसका प्राधान्य न रहने के कारण लीलावाद के सभी दोष नगण्य से हो जाते हैं। व्यावहारिक भूमिका पर आरूढ़ होने पर जीव जगत एवं ईश्वर में भेद–कल्पना द्वारा जगत ईश्वर की लीला

मात्र है इस प्रकार की व्यवस्था के लिये वेदान्तदर्शन में पर्याप्त अवकाश है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि लीलावाद परमार्थिक दृष्टि से सत्य है।

सुभाष चन्द्र बोस पर मायावाद के साथ–साथ प्रकृतिवाद का भी प्रभाव पड़ा। वास्तव में यही लोग मायावाद के असली निराकर्ता हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयायी तथा भौतिकवादी और यथार्थवादी दार्शनिकरण इस दृष्टि से मायावाद का खण्डन करते हैं किन्तु इनमें भी मूल प्रकृति के बारे में बहुत मतभेद हैं। कोई प्रकृतिवादी है तो कोई अणुवादी है। कोई भौतिकवादी है तो कोई जड़–चेतन दोनों से भिन्न मूल तत्व को प्रस्तावित करता है, कोई परिणामवादी है तो कोई वैपुल्यवादी या अनेकान्तवादी है। अतः यदि इन सभी यथार्थवादियों के सामान्य सिद्धान्त की जाँच की जाय तो ज्ञात होगा कि जगत का मूलतत्व सम्यकरूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता।

6. वन्देमातरम् की उपयोगिता

वंकिमचन्द्र के "आनन्द मठ" ने अपने जीवनकाल में ही अपार ख्याति प्राप्त कर ली थी और उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्द मठ' ने तो उन्हें यश के शिखर पह पहुँचा दिया था।

वंकिमचन्द्र बंग्ला साहित्य के महान साहित्यकार, उपन्यासकार एवं विचारक थे और वह समूचे देश में प्रकाश स्तम्भ की तरह अपने लेखन की ज्योति विखेर कर समाज को प्रेरक दिशा दे रहे थे। 'आनन्द मठ' उनके

साहित्य में उस शिखर पर आज भी खड़ा है जिसे विरले ही छू पाते हैं। यह वह उपन्यास है जिसका गीत 'राष्ट्रगीत' बन गया और आजादी के संघर्ष में जिसने आन्दोलनकारियों को अद्‌भुत उत्साह से भर दिया।

सुभाष चन्द्र बोस के व्यक्तित्व पर राष्ट्रगीत 'वन्देमातरम्' का विशेष प्रभाव पड़ा। इसी गीत के द्वारा क्रान्तिकारी लोह लाड़लों के मस्तिष्क पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा और जिसने सुभाष के साथ–साथ उनके अन्य साथियों को चेताया कि आजादी उनका सर्वप्रथम अधिकार है। इस राष्ट्रगीत के माध्यम से हम लोग दूसरी किसी माँ को नहीं मानते। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" हम कहते हैं– जन्मभूमि ही माता है।

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्

शस्यश्यामलां मातरम्।

वन्दे मातरम्

शुभ्र ज्योत्सनां पुलकितयामिनीम्

फुल्ल–कुसुमित–द्रुम–दल शोभिनीम्

सुहासिनीं, सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां वरदां मातरम्।

वन्दे मातरम्।।

कोटि–कोटि कण्ठ कल–कल निनादकराले

कोटि–कोटि मुजैर्धृत–खर–करवाले।

अवला कैनो मा एतो बोले ?

बहुबलधारिणीं नमामि तारिणी

रिपुदलवारिणीं मातरम्

वन्दे मातरम्।।

तुमि विद्या तुमि धर्म

तुमि ह्वदि तुमि मर्म

त्वं हि प्राणाः शरीरे

वाहु ते तुमि माँ शक्ति

ह्वदये तुमि माँ भक्ति

तोमारई प्रतिमा गड़ि, मन्दिरे मन्दिरे।

वन्दे मातरम्

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण धारिणी

कमला कमलदलविहारिणी

वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वां

नमामि कमलां अकलां अतुलां

सुजलां सुफलां मातरम्

वन्दे मातरम्

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूमितां

धरणी भरणी मातरम्।

वन्दे मातरम्।।

अध्याय - द्वितीय

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस में सुभाषचन्द्र बोस की भूमिका

(अ) असहयोग आन्दोलन

(ब) सविनय अवज्ञा आन्दोलन।

(स) बोस द्वारा गाँधीवादी विचारों की आलोचना।

Nethaji wanted to work for the poor but his father, had other ideas. He sent Subhash to England to appear for the Indian Civil Service. In July 1920, barely eight months later Subhash Chandra Bose appeared in the Civil Service Examination and passed it with distinction. But he didn't want to be a member of the bureaucracy and resigned from the service and returned to India.

Back home, he participated in the freedom movement along with 'Deshbandhu' C.R. Das.

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सुभाष चन्द्र बोस की भूमिका

1. असहयोग आन्दोलन

जब 16 जुलाई 1921 को सुभाष चन्द्र बोस भारत लौटे तब देश गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की चाहों में पड़ा था। बंगाल के नेता सी0 आर0 दास ने सुभाष को इस आन्दोलन में रचनात्मक और सकारात्मक कार्य सौंप दिया। उन्हें नेशनल कालेज का प्राचार्य बना दिया गया था। इस नियुक्ति द्वारा सुभाष को नवयुवकों का सहयोग मिला। उन्होंने इस वर्ग में देशभक्ति के उदात बीजों को बोना शुरू किया। वर्ष 1921 के अन्तिम दिनों में सुभाष चन्द्र बोस ने कांग्रेस के माध्यम से देश की राजनीति में पदार्पण किया तथा राजनीति को सार्थक एवं गतिशील बनाने का संकल्प लिया।

सन् 1921 में वेलवाड़ा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कमेंटी ने असहयोग आन्दोलन के लिए 1 करोंड़ राष्ट्रीय स्वयंसेवक बनाने का निश्चय किया था इस निश्चय के अनुसार कलकत्ता में बंगाल हेतु स्वयं सेवकों की भर्ती का काम सुभाष चन्द्र बोस के राजनीतिक गुरू चितरंजनदास को सौंप दिया गया चितरंजनदास ने इस सेना का सेनापति सुभाष चन्द्र बोस को बनाया था। उनके नेतृत्व में नेशनल वालेन्टियर कोर गठित की गयी। इस नेशनल वालेन्टियर कोर ने अपनी शक्ति और ओज का पहला प्रदर्शन *प्रिन्स*

आफ वेल्स के कलकत्ता आगमन के समय स्वागत समारोह के बहिष्कार के समय किया। इस कार्यक्रम के मुख्य संचालक सुभाष चन्द्र बोस थे। उनके नेशनल वालन्टियर कोर को गैर– कानूनी घोषित कर दिया गया।[1]

उन्होंने स्वयं लिखा है कि "कलकत्ता आ बसने पर मैने देश की स्थिति का और खासकर बंगाल की स्थिति का जायजा लेना शुरूकर दिया था। उस समय सारे देश में असाधारण उत्साह था। तीन सूत्री वायकाट काफी सफल रहा था। यह तीन सूत्री कार्यक्रम था – (1) छुआछूत मिटाने, (2) शराब, नशीली चीजों आदि की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाने (3) खादी को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया जाये। उस समय कोई कांग्रेस – जन विधानमण्डलो में झांकता नहीं था । कुल मिलाकर बकीलों ने अच्छा काम कर दिखाया। छात्र वर्ग तो इस अग्नि परीक्षा से बहुत ही सफल होकर निकला था। इन हालातों से प्रोत्साहित होकर महात्मा गांधी ने जुलाई में विदेशी कपड़े के वायकाट और कताई बुनाई को फिर से जीवित करने का आन्दोलन छेड़ दिया। महात्मा गांधी का प्रत्येक मार्गदर्शन राष्ट्रहित में था जिससे जनता अपनी वास्तविक स्थिति को पहचाने एवं कर्मठ और शक्तिशाली बने।

लोकमान्य तिलक की वरसी पर 1 अगस्त 1921 को देशभर में विदेशी कपड़ों की बड़ी–बड़ी होलियां जलाई गयीं। कांग्रेस नेताओं की इन

---

1. पट्टाभि सीतारमैया : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ 107

होलियो के साथ देश का सारा आलस्य, दुर्बलता, गन्दगी को भस्म किये जाने की भावना निहित थी। मुस्लिम वर्ग का भी पूरा समर्थन इस आन्दोलन को मिल रहा था। असहयोग के अनोखे तरीके ने इसे और भी बल प्रदान किया। एक वर्ष में स्वराज्य के नारे ने बहुत से ऐसे लोगों को इस आन्दोलन में खींच लिया जो लम्बे अरसे तक कुर्बानियां करने को तैयार न होते"।[1]

बंगाल में उस समय दो बड़ी महत्वपूर्ण घटनायें हुईं, एक थी – असम–बंगाल रेलवे की हड़ताल और दूसरी मिदनापुर जिले में लगानबन्दी आन्दोलन। रेलवे हड़ताल से पूर्वी बंगाल और असम में रेल और स्टीमर यातायात पूरी तरह ठप्प हो गया था। समस्त अर्थव्यवस्था चरमरा गयी और इसको भारतीय जनता का पूरा सहयोग प्राप्त था। उस हड़ताल को सक्रिय बनाने के लिये इस हड़ताल का संचालन बंगाल की कांग्रेस कमेटी ने किया था और शुरू में वह इतनी सफल रही कि लोगों को इस बात का अहसास हो गया कि यदि वे सरकार के खिलाफ मिलकर एक हो जायें तो वे कितनी बड़ी ताकत बन सकते हैं।[2] इस हड़ताल में चितरंजनदास के साथ सुभाष चन्द्र बोस की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

जब सुभाष चन्द्र बोस लन्दन से वापिस आ रहे थे तो उसी

---

1. संपादक बोस शरतचन्द्र, "सुभाष चन्द्र बोस, भारत का संघर्ष, उद्धत नेताजी सम्पूर्ण वाङ.मय, खण्ड–2, पृष्ठ 15

2. वही, पृ0 17

जहाज में रवीन्द्रनाथ टैगोर उनके साथ थे। रवीन्द्र नाथ ने विचार–विमर्श में उन्हें बताया कि वे गांधी जी के असहयोग आन्दोलन से पूर्ण सहमत नही थे।[1] गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का विरोध क्रान्तिकारियों द्वारा भी किया जा रहा था। बहुत से क्रान्तिकारी प्रतिकार करने के सिद्धान्त को नहीं मानते थे। उनका कहना था कि ऐसा करने से लोगों का मनोबल और आत्म बल गिरेगा उनकी प्रतिरोध करने की शक्ति जाती रहेंगी। ऐसी सम्भावना थी कि भूतपूर्व क्रान्तिकारियों का पूरा वर्ग सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण कांग्रेस के विरोध में जा रहा था। वास्तव में उनमें से कुछ ने बंगाल में असहयोग आन्दोलन के विरोध में प्रचार भी कर दिया था। आश्चर्य की बात यह है कि इसके लिये धन की सहायता दी थी, सिटीजन्स प्रोटेक्शन लीग नामक अंग्रेज पार्टी समुदाय ने यह धन एक प्रतिष्ठित भारतीय वकील के मार्फत आता था, जिसने दाता का नाम बताने से इन्कार किया था। गांधी जी की गरिमा और छवि में विरोध था। क्रान्तिकारियों में त्याग और आत्म बलिदान करने की शक्ति थी। देशबन्धु चितरंजनदास और सुभाष चन्द्र बोस भूतपूर्व क्रान्तिकारियों के इस विरोध को दूर करने के लिए असहयोग आन्दोलन में उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे।

सितम्बर 1921 में देशबन्धु सी0 आर0 दास ने महात्मा गांधी के साथ क्रान्तिकारियों की एक बैठक का आयोजन किया और उसमें वे स्वयं

---

1. पूर्वोक्ति, पृ0 18

उपस्थित रहे। इस समय सुभाष चन्द्र भी चितरंजनदास के साथ थे। इस बैठक में महात्मा गांधी का क्रान्तिकारियों से खुलकर वार्तालाप हुआ। महात्मा गांधी और चितरंजनदास दोनों ने क्रान्तिकारियों से खुलकर बात की। महात्मा गांधी और चितरंजन दास दोनों ने क्रांतिकारियों को समझाया कि अहिंसक असहयोग आन्दोलन से जनता का मनोबल घटने के बजाय बढ़ेगा और उनमें प्रभावी प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न होगी। इस बैठक का फलदायी परिणाम यह निकला कि सबने वादा किया कि हम कांग्रेस को स्वराज्य के लिये संघर्ष करने का पूरा मौका देंगे और उसके काम में जरा भी रोड़ा नही अटकाएंगे। इतना ही नही बहुतों ने बफादारी, ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के साथ कांग्रेस संगठन मे शामिल होना भी स्वीकार कर लिया।[1]

महात्मा गांधी और भूतपूर्व क्रान्तिकारियों का यह मिलन सितम्बर 1921 में बन्द कमरें में उस अवसर पर हुआ था, जब गांधी जी और कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य देशबन्धु चितरंजनदास के मेहमान के रूप में उनके घर पर ठहरे हुऐ थे। सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा है कि पहला अवसर था जबकि में राष्ट्रीय नेताओ से मिला था।[2]

पं० जवाहरलाल नेहरू , लाला लाजपत राय और मौलाना मुहम्मद अली। उन्होनें लिखा है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू उस समय तक इतने

---

1. नेताजी सम्पूर्ण बाङ्मय भाग–2, पृ0 18

2. वही, पृष्ठ 19

महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध नही थे। उपरोक्त तीनो– मोतीलाल, लाला लाजपत राय व चितरंजनदास अपने–अपने सूबों के प्रभावशाली नेता थे। उनका महत्व इस कारण भी था, क्योंकि वे कांग्रेस के बेजोड़ बौद्धिक, नैतिक तथा पुरुषत्व के प्रतीक थे। वे महात्मा गांधी के अन्धभक्त नहीं थें। वे महात्मा गांधी को भयंकर भूलें करने से रोकते थे। इन दिग्गजों की मृत्यु के बाद कांग्रेस के नेतृत्व का बौद्धिक, नैतिक तथा दार्शनिक स्तर गिर गया। 1921 में उपयुक्त नेताओं के अतिरिक्त जनता में अली बन्धुओं का भी असाधारण स्थान था। वे महात्मा गांधी के दायें– बाएं बन गए थे। महात्मा गांधी ने उनके साथ सारे देश का दौरा किया था। उन दिनों गांधी जी के साथ अली बन्धुओं की भी जय बोली जाती थी।[1]

असहयोग आन्दोलन का दूसरा बड़ा कार्यक्रम था, अदालतों का वहिष्कार, न्यायालयों की अवमानना, असंवैधानिक कानूनों का उल्लंघन इस कार्यक्रम के अन्तर्गत हजारों वकीलों ने अपनी प्रेक्टिस नहीं की। सुभाष चन्द्र बोस के गुरू सी0 आर0 दास इनके एक मुख्य उदाहरण थे। उन्होंने न केवल स्वयं अपनी प्रेक्टिस छोड़ दी अपितु पूरे प्रान्त का दौरा किया और हर जगह उन्होंने अपील भी की कि लोग कम से कम तीन महीने के लिए वकालत करना छोड़ दें और गांव–गांव में कांग्रेस कमेटियां बनायें। जिससे भारत को जल्दी से जल्दी स्वतंत्रता मिल सके। विचारों को सूत्रबद्धता

---

1. वही, पृ0 20

में बांधने का प्रयास किया गया। उनके कहने पर अनेक व्यक्तियों ने वकालत छोड़ दी थी। कई प्राध्यापकों ने अध्यापन कार्य छोड़ दिया तथा राष्ट्र सेवा के लिये समर्पित हो गये।

पूर्वी बंगाल और आसाम के तूफानी दौरे के बाद देशबन्धु मार्च के अन्त में रौसाल पहुंचे जहां प्रान्तीय कान्फ्रेन्स होने वाली थी। पन्द्रह वर्ष पूर्व 1906 में भी यहां प्रान्तीय कान्फ्रेंस हुई थी। जिसे पुलिस ने बाद में भंग कर दिया। यह कान्फ्रेन्स भी महत्वपूर्ण थी। इसकी अध्यक्षता की थी विपिन चन्द्र पाल ने और इसमें असहयोग आन्दोलन चलाने का प्रस्ताव चितंरजनदास ने रखा था।[1]

स्वराज्य की व्याख्या करते हुये चितरंजनदास ने कहा था– "स्वराज्य के लिए हमें अपना सब कुछ बलिदान करना पड़े, अंहिसा ही हमारा एकमात्र हथियार है असहयोग का अर्थ घृणा नहीं, हम अंग्रेजों को भी उनका उचित अधिकार देना चाहते हैं, सभी संग्रह फले– फूले , कोई राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र के फलने फूलने के मार्ग में अड़चन न डाले। इस पर देशबन्धु ने इस बात पर जोर दिया कि पश्चिमी संस्कृति के आगे हम घुटने नही टेकेंगे। हमें प्राचीन आत्मबल को पुनः प्राप्त करना होगा।[2]

---

1. पट्टाभि सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ 121
2. सान्याल, पूर्वोद्धत, पृ0 21

इस कान्फ्रेस के समाप्त होते ही देशबन्धु पर एक और जिम्मेदारी आ पड़ी थी, वह यह थी कि उन्हें 1 अप्रैल 1921 को कांग्रेस के विजयवाड़ा अधिवेशन में जो एक करोड़ रुपया एकत्रित करने के लिए संकल्प किया गया था, उसके अनुसार कांग्रेस के 1 करोड़ सदस्य बनाए जाने थे। बंगाल को तिलक स्वराज्य कोष के लिए 15 लाख रुपये एकत्रित करने थे। देशबन्धु इस काम में जुट गए। प्रान्त भर में कांग्रेस समितियां बनायी गयीं। घर–घर में लोग कांग्रेस के सदस्य बनाए गए। सड़कों पर जुलूस निकालकर स्वराज्य कोष के लिए चन्दा इकट्ठा किया जाने लगा।[1]

सुभाष चन्द्र के आने के पूर्व 30 जून तक देशबन्धु ने 15 लाख रुपया एकत्रित कर लिया था जो बंगाल के स्वराज्य कोष में देना था।[2]

असहयोग का बिगुल बज चुका था और देश तेजी से आगे बढ़ता जा रहा था। कांग्रेस आन्दोलन प्रबल से प्रबलतम होता जा रहा था। 28 जुलाई 1921 से 3 अगस्त 1921 तक बम्बई में कांग्रेस समिति और महासमिति की बैठक हुयी। इस बैठक में देशबन्धु और गांधी जी के बीच पूरा मतैक्य और घनिष्ठ सहयोग रहा। इसमें दो महत्पूर्ण प्रस्ताव पारित हुये। एक प्रस्ताव में देशवासियों से यह अपील की गयी थी कि वे इंग्लैण्ड के राजकुमार का जो भारत आने वाले थे, स्वागत न करें। प्रस्ताव में यह स्पष्ट

---

1. वही, पृ0 22

2. पूर्वोक्त, पृ0 22

रूप से कहा गया था, कि कांग्रेस व्यक्तिगत रूप से राजकुमार के विरूद्ध नहीं है, लेकिन उनकी यात्रा का उद्देश्य राजनीतिक है अर्थात उनकी यात्रा का उद्देश्य नौकरशाही के हाथ मजबूत करना है और साथ ही उसने भारत को स्वराज्य के जन्म सिद्ध अधिकार से वंचित रखा है।

दूसरे प्रस्ताव में जनता से यह कहा गया कि वे 30 सितम्बर तक विदेशी वस्त्रों का पूरी तरह वहिष्कार कर दें। 8 सितम्बर 1921 को एक सभा में देशबन्धु ने जनता से कलकत्ता में विदेशी वस्त्रों की होली जलाने की अपील की। सुभाष चन्द्र बोस भी इस सभा में मौजूद थे। ढेरों वस्त्र एकत्रित हो गए, जिनमें स्वयं गांधी ने आग लगाई आन्दोलन बराबर तेजी पकड़ता जा रहा था।[1]

देशबन्धु चितरंजनदास को लिखे पत्रों से:

16.02.1921

आप (चितरंजन दास) आजकल बंगाल में राष्ट्र सेवा यज्ञ के प्रमुख परिणेता हैं। पत्रों और समाचार पत्रों के द्वारा उस महान अभियान की गूंज यहां तक भी पहुंची है जिसे आपने भारत में छोड़ा है। इस प्रकार मातृभूमि की पुकार यहां भी सुनाई दी है।

---

1. वही, पृष्ठ 23

अगर कोई भी एक व्यक्ति राह दिखाता है तब अन्य लोग उसके पीछे चलने को तैयार हैं। मातृभूमि की बेदी पर मैं कुछ अधिक समर्पित नहीं कर सकता क्योंकि मेरे पास केवल मेरी अपनी नैतिक चेतना और मेरा कमजोर शरीर ही है।

स्वराज के सन्देश को दूर– दूर तक फैलाने के लिए देशबन्धु ने महात्मा गांधी के 52वें जन्म दिवस पर 2 अक्टूबर पर बंगलोर कथा (बंगाल का सन्देश) नामक एक बांग्ला साप्ताहिक निकाला।[1]

अब वह दिन भी आ गया था जब राजकुमार जहाज से मुम्बई पंहुचे। यह दिन था 17 नवम्बर 1921। इस दिन सारे देश में हड़ताल मनाई गयी। देशबन्धु और सुभाष चन्द्र बोस के स्वयं प्रयास से उस दिन कलकत्ता में भी शानदार हड़ताल रही। हड़ताल इतनी सफल रही कि ब्रिटिश सरकार के समर्थक दो समाचार पत्रों – *'स्टेट्समेन' और 'इग्लिश मेन'* ने यह टिप्पणी लिखी थी कि सरकार ने सारा शहर कांग्रेस स्वयं सेवको को सौंप दिया है। सरकार ने इस बहाने से बदला लेने की ठानी, उनका कहना था कि कांग्रेस द्वारा लोगों को डरा धमकाकर हड़ताल रखने के लिए मजबूर किया गया था। यह बात असत्य थी, लेकिन पुलिस ने तमाम कांग्रेस और खिलाफत कमेटियों के दफ्तरों पर 19 नवम्बर की आधी रात से छापा मारना शुरू किया। आम सभाओं पर रोक लगा दी गयी और फौजदारी कानून के विशेष

---

1. सान्याल, भूपेन्द्रनाथ : चितरंजनदास, पृ0 22

संशोधन को अमल में लाया गया। इस कार्यक्रम में नौजवान सुभाष की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। वे कलकत्ता के नौजवानों के उस समय हृदय सम्राट बन गये थे। उन्होंने इस समस्त हड़ताल का संचालन किया।[1]

इंग्लैण्ड के राजकुमार के भारत आगमन पर देश में जो जबरदस्त हड़ताल हुयी, उसने ब्रिटिश सरकार को हिलाकर रख दिया। वास्तव में इस समय भारत के लोग आजादी के लिये उतावले हो रहे थे। इस समय कांग्रेस के नेतृत्व में भारत में चल रहा आन्दोलन भी एक सीढ़ी ऊपर चढ़ गया। आम हड़ताल के बाद ही मुम्बई में कांग्रेस कमेटी की बैठक सम्पन्न हुई। कार्यकारिणी ने हर प्रान्तीय कांग्रेस को कानून तोड़ने का आन्दोलन इस शर्त पर शुरू करने की अनुमति दे दी कि प्रान्तीय कमेटी को यह विश्वास होना चाहिए कि लोग अपने वचन और कार्यो में अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन करेंगे।[2]

बंगाल की प्रान्तीय कांग्रेस कमेंटी ने 27 नवम्बर को सविनय अवज्ञा (कानून तोड़ने का) आन्दोलन के सम्बन्ध में सारे अधिकार देशबन्धु को सौंप दिए। कलकत्ता में तीन महीने के लिए सभा, प्रदर्शन और जुलूस पर रोक लगा दी गयी। इस पर प्रान्तीय कांग्रेस कमेंटी ने यह फैंसला किया कि कांग्रेस के स्वयं सेवक 5–5 की टोलियों में सड़कों पर खादी बेचेंगे। वे खद्दर पहिने होंगे, लेकिन बिल्ले नही लगाएंगे। हर टोली के साथ एक

---

1. अय्यर, एस0 आर0 : वायोग्राफीकल इन्ट्रोडक्शन इन सिलेक्टेड स्पीपैज आफ सुभाष चन्द्र बोस, "पब्लिकेशन डिवीजन, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, न्यू देहली, 1974, पृष्ठ 12

2. सीता रमैया महर्षि : हिस्ट्री आफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, जिल्द – 1 पद्मा पब्लिकेशन बम्बई, 1946, पृष्ठ 319

स्वयं सेवक होगा, जो दूर से देखता रहेगा और टोली के गिरफ्तार होते ही कांग्रेस दफ्तर को सूचना दे देगा।[1]

5 दिसम्बर 1921 को सुभाष चन्द्र बोस को बन्दी बनाकर कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। यह उनकी प्रथम जेलयात्रा थी, जिससे उनको कई प्रकार के कटु एवं वास्तविक अनुभव प्राप्त हुये। इस सजा के बाद उनके जीवन में अब एक कठोर संघर्ष का युग प्रारम्भ हो गया था। असहयोग आन्दोलन के समय सुभाष चन्द्र बोस चितरंजनदास के साथ थे। वे उनके निजी सचिव और कट्टर अनुयायी थे। सुभाष चन्द्र बोस के प्रमुख संरक्षक और मार्गदशक चितरंजनदास थे।

24 दिसम्बर को "प्रिन्स आफ वेल्स" कलकत्ता पहुंचने वाले थे, सारे शहर में हड़ताल करने की घोषणा कर दी गयी। 2–4 दिसम्बर को स्वयंसेवकों की 10 टोलियों ने सड़कों पर खद्दर बेचा, लेकिन कोई गिरफ्तार नहीं हुआ।

कलकत्ता में 5000 स्वयं सेवक बन चुके थे। लेकिन जनता में बहुत अधिक उत्साह नही देखा गया। एक दल का नेतृत्व सुभाष चन्द्र बोस ने किया। एक दल का नेतृत्व चितरंजन दास के पुत्र ने किया। वे गिरफ्तार कर जेल भेज दिए गए। 3–4 दिन तो यूं ही चलता रहा, लेकिन 7 दिसम्बर को आन्दोलन ने एक नया मोड़ लिया उस दिन चितरंजनदास की

---

1. अग्रवाल, गिरिराज शरण : पूर्वोद्धत,

पत्नी श्रीमती वासन्ती देवी और उनकी बहिन श्रीमती उर्मिला देवी ने सत्याग्रहियों का नेतृत्व किया, वे गिरफ्तार कर ली गयीं। इस घटना से जनता में क्रोध की लहर फैल गयी, तुरन्त ही एक हजार लोग गिरफ्तार होंने के लिए निकल पड़े। सुभाष चन्द्र बोस श्रीमती वासन्ती देवी का बहुत आदर करते थे, वे उन्हें अपनी माँ के समान मानते थे।[1] लेकिन इस घटना ने लोगों के मन में एक नया उत्साह और उमंग भर दी थी। जब वे जेल ले जाई जा रही थीं तो कुछ पुलिस वालों ने भी नौकरी छोड़ देने का संकल्प लिया तुरन्त ही सरकार ने पुलिस वालों के वेतन बढ़ा दिये। बंगाल के तत्कालीन *गवर्नर रानल्हशे* चाहते थे कि बातचीत के द्वारा ऐसा समाधान निकाला जाए जिससे बंगाल के स्वयं सेवकों का यह आन्दोलन बन्द हो जाए।

24 दिसम्बर को जब "प्रिन्स आफ वेल्स" कलकत्ता पहुंचे तो उनका स्वागत कलकत्ता में हड़ताल द्वारा न हो , इस बातचीत के लिए उन्होंने 8 दिसम्बर 1921 को चितरंजनदास को बुलाया था, परन्तु चितंरजनदास इसके लिए सहमत नही हुये। अतः 10 दिसम्बर 1921 को देशबन्धु गिरफ्तार कर लिये गए। 24 दिसम्बर को *''प्रिन्स आफ वेल्स''* कलकत्ता आने वाले थे।[2]

---

2. सान्याल भूपेन्द्रनाथ : पूर्वोद्धत, पृष्ठ 28

1. वही, पृष्ठ 21–22

इसके एक सप्ताह पूर्व वायसराय इस प्रकार का प्रयास करने कलकत्ता आए, जिससे कि हड़ताल न हो और कांग्रेस से किसी प्रकार का समझौता हो जाए। पण्डित मदनमोहन मालवीय बीच मे पड़े। वायसराय ने चितरंजनदास और मौलाना अब्दुल कलाम आजाद से अलग अलग वार्तालाप की। दोनों नेता इस शर्त पर समझौते के लिए सहमत हो गये थे, कि सरकार उन सब कैदियों को छोड़ देगी जो विशेष फौजदारी कानून और उन सब कानूनों के अन्तर्गत गिरफ्तार किए गए थे। जो बगाबत फैलाने का आरोप लगाते थे उन्होनें स्वराज, खिलाफत और जलियांवाला काण्ड पर गोलमेज की भी शर्तें रखी गयीं, परन्तु निर्णय हाई कमान को लेना था। प्रारम्भ में गांधी जी अली बन्धुओं की रिहाई पर अड़े रहे। 24 दिसम्बर को जब *"प्रिन्स ऑफ वेल्स"* कलकत्ता आये तो पूर्ण हड़ताल से उनका स्वागत हुआ।[1]

1 फरवरी 1922 को महात्मागाँधी ने "कर बन्दी" का अल्टीमेटम देकर जनता के उत्साह और संघर्ष को बढ़ाने का प्रयास किया। इसी समय 4 फरवरी 1922 को चौरा–चोरी घटना घट गयी, जिससे उत्तेजित जनता ने थाना जला दिया। इस हिंसक घटना के कारण, पूरे जोश और उत्साह से चल रहे इस असहयोग आन्दोलन को, गाँधीजी ने स्थगित कर दिया। इस स्थगन से देशबन्धु चितरंजनदास, मोतीलाल नेहरू आदि सभी गाँधीजी से नाराज थे।

---

1. पूर्वोक्त, पृ0 24

2. सविनय अवज्ञा आन्दोलन

असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद सरकार का दमन चक्र शुरू हुआ और अधिकांश नेता जेलों में डाल दिए गए। असहयोग आन्दोलन का प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से राजनैतिक गतिविधियों एवं आन्दोलनों पर पड़ा। इनमें सुभाष बोस भी थे उन्हें अलीपुर जेल में रखा गया। जहां उन्हें बंगाल के सभी प्रतिनिधियों से मिलने का अवसर मिला। ऐसे समय में देशबन्धु चितरंजनदास ने जनता में एक बार फिर से उत्साह भरने की योजना बनाई। इस नई योजना के अनुसार कांग्रेस–जनों का अब चुनाव बहिष्कार करने के बजाय उसमें उम्मीदवार के रूप में खड़े होकर और सीटों को जीतकर सरकार का समान रूप से सकारात्मक और नकारात्मक दृष्टि से विरोध करना था। कलकत्ता कांग्रेस ने 1920 में कौंसिलो के बहिष्कार की जो नीति तय की थी, वह बुरी तरह असफल सिद्ध हुयी थी क्योंकि राष्ट्रवादियों ने विधान मण्डलों में प्रवेश नही किया। इनके स्थान पर अवांछित लोग चुनाव लड़कर कौंसिलो में पहुँच गए। इन लोगों ने देश के आन्दोलन को समर्थन देने के बजाय सरकार का साथ दिया। उनकी सहायता से सरकार दुनिया को यह दिखा सकी कि उसे विधान मण्डलो में चुने हुये सदस्यो का समर्थन प्राप्त हैं। देशबन्धु का मत था कि क्रान्तिकारी संघर्ष में किसी भी प्रकार सुविधाजनक बिन्दु को शत्रु के हाथों में नही रहने देना चाहिए। इसलिए विधान मण्डलों में सब निर्वाचन स्थलों और सार्वजनिक

निकायों, नगरपालिकाओं , जिला बोर्डो इत्यादि की सीटों पर कांग्रेस जनों को कब्जा करना चाहिये। इसमें जो ठोस रचनात्मक कार्य करने का अवसर मिले, उसे करना चाहिए।

इस नई योजना के बारे में अलीपुर सेन्ट्रल जेल में रोज गर्मागरम बहस होती थी। विरोधियों का तर्क यह था कि 1919 के अधिनियम में मनोनीत सदस्यों की संख्या इतनी रखी गयी है कि निर्वाचित सदस्य कुछ कर पायेंगे, इसमें संदेह है, फिर गवर्नरों के विशेषाधिकार इस सम्बन्ध में सबसे बड़े अवरोधक होंगे। इसका जबाव यह था कि विधान मण्डलों में सक्रिय विरोध के द्वारा वे बाहरी आंदोलन को सहायता पहुंचा सकते थे।

देशबन्धु ने जेल में अपने समर्थकों के साथ अनेक बार विचार विमर्श कर बड़े विस्तार से अपने कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की। उन्होंने अपने कार्यक्रम विचारों और योजनाओं के प्रचार–प्रसार के लिए एक समाचार पत्र भी निकाला, जिसका नाम था 'फारवर्ड'! इसका सम्पादन बाद में सुभाषचन्द्र बोस को सौंप दिया गया।

1922 में उत्तरी बंगाल में भीषण बाढ़ आई थी। सुभाष ने इस भयावह अवस्था में देश के अल्पसंख्यक लोगों की तन, मन एवं धन से सेवा की।[1]

''चोरा–चोरी'' काण्ड के बाद गांधी जी ने जब असहयोग आन्दोलन

---

1. मदनगोपाल, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 123

वापिस ले लिया तब उनके इस कदम से मोतीलाल जी नेहरू , जवाहर लाल नेहरू, सी0आर0दास0 ने अब कौंसिलों में प्रवेश का नया सूत्र दिया। वे गया अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष होने वाले थे। उन्होंने कौंसिल प्रवेश के अपने प्रस्ताव के पक्ष में भारी प्रचार किया था तथा ऐसा वातावरण बनाने का पूरा प्रयास किया, जिससे इस प्रस्ताव के पक्ष में वातावरण बन सके। गया अधिवेशन में गांधीवादियों के विरोध के कारण सी0आर0दास0 का प्रस्ताव पारित नहीं हो सका। इसका विरोध करने वालों में राजगोपालाचारी जी मुख्य थे। अपने प्रस्ताव को गिरता देखकर मोतीलाल नेहरू ने स्वराज पार्टी के निर्माण की घोषणा की। इस प्रकार सी0आर0दास ने मोतीलाल नेहरू, विट्ठल भाई पटेल, सुभाष चन्द्र बोस के सहयोग से स्वराज्य पार्टी की स्थापना की थी।[1]

इस बार जो चुनाव हुए, उसमें बंगाल में स्वराज पार्टी ने अधिकांश सीटें जीत लीं जो मुसलमानों के लिए सुरक्षित थीं, उनमें भी कुछ स्थान स्वराज पार्टी ने जीत लिए। बंगाल में गवर्नर ने चितंरजनदास को मंत्रीमण्डल बनाने के लिए आमंत्रित किया, परन्तु इस आमन्त्रण को उन्होंने यह कहकर ठुकरा दिया कि वर्तमान विधानमण्डल में ऐसे मंत्रिमण्डलों का कोई महत्व नही है। अतः वे सरकार से बाहर रहकर दोहरी शासन प्रणाली को विफल करेंगे।[2]

1923 में सी0आर0दास जो कलकत्ता नगर निगम के मेयर चुने

---

1. अय्यूर, एस0ए0, पूर्वोद्ध4, पृष्ठ 12–13
2. सान्याल, भूपेन्द्रनाथ : पूर्वोद्धत, पृष्ठ 29

गये थे, उन्होंने सुभाष चन्द्र बोस को कलकत्ता नगर का चीफ एक्जीक्यूटिव आफीसर नियुक्त किया, परन्तु इस पद पर वे 5 माह ही कार्य कर सके। नगर निगम में उन्होंने क्रान्तिकारी परिवर्तन किए।[1]

सन् 1924 के अक्टूबर माह में लार्ड लिटन ने बंगाल आर्डिनेस एक्ट निकाला। इस एक्ट का विरोध करने वालों में सुभाष और उनके गुरू सी0आर0 दास मुख्य थे। आन्दोलन के कारण सुभाष को भी 25 अक्टूबर को बन्दी बना लिया गया। वे अपनी गिरफ्तारी के समय कलकत्ता नगर निगम के मुख्य कार्यपालक अधिकारी थे। सरकार ने विशेष आज्ञा प्रदान करके उनके सेक्रेटरी को जेल में मिलकर कार्य करने की अनुमति दे दी थी। बाद में जेल से उनका स्थानान्तरण रामपुर जेल में कर दिया गया। दो माह बाद उन्हें उस स्थान पर भेज दिया गया जहां तिलक और लाला लाजपत राय को (माण्डले जेल में) वर्मा में रखा गया था। सुभाष ने इसे अपने लिए गौरव माना था। सुभाष ने लिखा है– "मुझे ठीक प्रकार से याद है कि यह वही स्थान है जहां तिलक ने 6 वर्ष के लिए और लाला लाजपतराय ने एक वर्ष के लिए समय बिताया था। इसलिए इस विचार ने हमें कुछ सान्त्वना दी कि हम उनका अनुकरण कर रहे हैं। इस विचार से हमें गर्वानुभूति हुई।"

माण्डले जेल के अस्वस्थ वातावरण में सुभाष बाबू का स्वास्थ्य

---

1. वही

बिगड़ने लगा। उन्हें वहां नियमित ज्वर (टाईफाइड) और मलेरिया ने पीड़ित किया। दशा बिगड़ती ही गयी, परन्तु जेल अधिकारियों ने उनकी चिकित्सा का भी कोई खास प्रबन्ध नहीं किया। उनका वजन 40 पौंड घट गया था। उन्होंने माण्डले जेल से अन्य जेल में स्थानान्तरण के लिए लिखा, परन्तु उनकी प्रार्थना उस स्थिति मे भी स्वीकार नहीं की गयी। अधिकारी वर्ग की धारणा थी कि सुभाष झूठ बोल रहा है।

सुभाष सभी कुछ सहते रहे। इसी समय उन्हें माण्डले जेल में ही अपने राजनीतिक गुरू देश के परमप्रिय नेता चितरंजदास की मृत्यु का दुखद समाचार मिला। यह उनके लिये व्याकुलता की चरम स्थिति थी।

दुर्गा पूजा बंगालियों का सबसे महत्वपूर्ण त्यौहार है। सुभाष चन्द्र बोस ने भी माण्डले जेल में मां दूर्गा का पूजन पूर्ण उत्साह के साथ मनाने का निश्चय किया था। इसके लिए सुभाष ने जेल अधिकारियों से रुपयों की स्वीकृति मांगी, लेकिन राष्ट्रीयता को कुचलने के अभियान में लगे अधिकारियों ने इस मांग को ठुकरा दिया।[1]

सुभाष चन्द्र बोस इस घटना से अत्यन्त बिक्षुब्ध हो उठे थे। इसी बात को लेकर उन्होंने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। उनकी इस घोषणा से सारा देश हिल उठा। देश में चारों ओर उग्र आन्दोलन प्रारम्भ हो गए।[2]

---

1. अग्रवाल गिरिराज शरण, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 47
2. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 149

सुभाष के इस आमरण अनशन पर केन्द्रीय असेम्बली में काम रोको प्रस्ताव रखा गया था। प्रस्ताव के सम्बन्ध में बोलते हुए टी0टी0 गोस्वामी ने कहा – अनशन का केवल यही कारण नहीं है कि बन्दियों को दुर्गा पूजा की सुविधाएं नही दी गयीं, उनको तरह–तरह के कष्ट एवं यातनायें दी गईं। सुभाष बाबू का जीवन खतरे में है, यदि उनकी मृत्यु हो जाती है तो सरकार और गृह सचिव तो चैन की सांस ले सकते हैं, परन्तु सम्पूर्ण भारतवर्ष को जो महान क्षति होगी उसकी क्षतिपूर्ति कौन करेगा?[1]

काम रोको प्रस्ताव पारित हो गया। देश के बड़े –बड़े नेताओं ने तार भेजकर सुभाष से अनशन तोड़ने की अपील की और देशभर में उनके स्वास्थ्य की कामनाऐं की गयी। चारों ओर से प्राप्त निवेदनों के कारण सुभाष ने 6 सप्ताह पश्चात 4 मार्च 1926 को अपना अनशन तोड़ा।[2]

माण्डले जेल में सुभाष चन्द्र बोस का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। उनमें क्षयरोग के लक्षण दिखने लगे थें। शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था उनका स्थानान्तरण रंगून जेल में कर दिया गया। यहां के जेल अधिकारियों में विशेष रूप से जेलर कूलावर ड्यू का व्यवहार अपमानजनक और अभद्र था।[3]

---

1. पूर्वोक्त
2. वही, पृष्ठ 152
3. लाल श्रीकृष्णः कालयवी सुभाष, पृष्ठ 92

यहां भी उनके रोग की ओर कोई ध्यान नही दिया गया तब उन्होने जेलर फूलावर ड्यू को अपना टेम्परेचर चार्ट दिखाकर कहा था कि मुझे हरारत रहती है इस पर मेजर ने टिप्पणी करते हुए कहा था लेकिन बुखार कहाँ है।

रंगून जेल में सुभाष चन्द्र बोस को अन्य कैदियों से पृथक रखा गया था। वहाँ के अन्य कैदियों को शारीरिक दण्ड का भय दिखा कहा गया था कि वे सुभाष से कतई बात न करें। जेल अधिकारी की इस अनुचित व्यवहार की शिकायत सुभाष चन्द्र बोस ने वर्मा के गवर्नर से अपने दो लम्बे पत्रों में की थी। एक पत्र का अंश यह है जिसमें उन्होंने लिखा था।

"मैं देश के कानून के अन्तर्गत नजरबन्द हूँ इसीलिए मैं महसूस करता हूँ कि रंगून जेल के सुपरटेण्डेंट *मेजर फूलावर ड्यू* ने अनाधिकारिक रूप से मेरी भावनाओं को चोट पहुंचाई है और अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की दृष्टि में उन्होंने ऐसी टिप्पणी लिखकर मेरा अपमान किया है। उनकी लिखी हुयी टिप्पणी प्रत्येक न्यायप्रिय एवं विवेकी व्यक्ति की दृष्टि में अशिष्ट एवं अपमानजनक ठहरेगी।[1]

इस समय मेरी बुद्धि यह निश्चय नहीं कर पा रही है कि जेल अधिकारियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करूँ। अब तो मैं अच्छा समझता हूँ कि जेल अधिकारियों को कुछ न लिखूं और अपनी आवश्यकताओं

---

1. आत्मकथा, पृष्ठ 192

का परित्याग कर दूँ अन्यथा और अधिक बेइज्जती सहन करनी पड़ेगी।

19 मार्च 1926 को यह झगड़ा काफी बढ़ गया। अपने स्वास्थ्य के प्रति जेल अधिकारियों की इस अपेक्षा को देखकर सुभाष चन्द्र बोस ने इस सबकी सूचना पं0 मोतीलाल नेहरू, जे0एन0 सेन गुप्त एवं अपने भाई शरत चन्द्र बोस को दी और उनसे अपने जेल स्थानान्तरण के बारे में सरकार से सिफारिश करने को कहा। इसके बाद सुभाष का स्थानान्तरण इनासीन जेल में हो गया।

इस समय उनका शरीर बिल्कुल जर्जर और कमजोर हो गया था। उन्हें उठने बैठने में भी असुविधा होती थी। सरकारी मेडिकल अधिकारियों एवं उनके बड़े भाई शरत चन्द्र बोस ने उनके स्वास्थ्य की जांच की और सुभाष के स्वास्थ्य को चिन्ताजनक बताया। बंगाल सरकार की ओर से मोबरले ने सुभाष को स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से इस शर्त पर स्विटजरलैण्ड भेजने का सुझाव रखा कि क्रिमिनल ला एमेण्डमेंट की समाप्ति से पूर्व भारत नहीं लौटने तथा उनका जहाज जिसमें वे यात्रा करेंगे भारत के किसी बन्दरगाह में नहीं रुकेगा, यह शर्तें अपमानपूर्ण थीं। अतः सुभाष ने इसे ठुकरा दिया। इसे ठुकराने के पीछे तर्क देते हुये उन्होंने अपने बड़े भाई शरत चन्द्र बोस को लिखा था।

"मैने मोबरले के प्रस्ताव के एक–एक शब्द को ध्यान से पढ़ा और उस पर चिन्तन किया। यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने अत्यन्त सावधानीपूर्वक अपने भय का सृजन किया है।

सरकार की इच्छा यह है कि जब तक ऑर्डिनेन्स समाप्त नहीं होता अर्थात जनवरी 1920 के बाद यह कानून फिर से लागू नहीं होगा. ...... यदि ऐसा हुआ तो मुझे सदैव विदेश में ही रहना पड़ेगा। प्रवास में मुझे किस प्रकार की स्वतंत्रता मिलेगी? इस बात को स्पष्ट नहीं किया गया है। स्विटजरलैण्ड में जो झुंड के झुंड गुप्तचर विचरते है क्या उनके हाथों भारत सरकार मेरी रक्षा कर सकेगी। इस बात को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मैं राजनीति सन्देह का अभियुक्त हूं और जब तक अपना विचार बदल नहीं लूं पुलिस के जासूस तब तक मुझे सन्देह की दृष्टि से देखेंगे और इस बात की सम्भावना अधिक है कि ये जासूस मेरा पीछा करते हुये मेरा जीवन असहनीय न बना दें।

मैं जानता हूँ कि पुलिस जासूस ऐसे समय में कुछ अधिक ही सतर्कता दिखाते हैं। मैं यूरोप में कितना भी शान्त और सतर्क क्यों न रहूँ वे भारत सरकार के पास मेरे विरुद्ध अन्यायपूर्ण रिपोर्ट भेजेंगे। इस प्रकार यह भी सम्भव है कि 1929 के पूर्व वे मुझे बोल्शेविक नेता घोषित करके मेरा भारत लौटने का मार्ग ही सदैव के लिये बन्द कर दें।

यदि यूरोप जाने के पूर्व सरकार मुझे घर जाने देती है, मेरा यूरोप का व्यय उठाती है, रोग मुक्ति के पश्चात मुझे बिना किसी प्रतिबन्ध के देश लौटने देती है तो मैं इसे सहायता का परिचायक समझूंगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो मैने निश्चय कर लिया है कि चिरकाल के लिये मातृभूमि से

निर्वासित होने की अपेक्षा जेल में रहकर मृत्यु का वरण करना कहीं अधिक श्रेयस्कर होगा।

हमारे विचार और आदर्श अमर रहेंगे, हमारे भाव और आकांक्षायें समाज की स्मृति से कभी नहीं मिटेंगे। भविष्य में हमारे वंशधर हमारी संकल्पनाओं के उत्तराधिकारी बने तो इस विश्वास के साथ मैं दीर्घकाल तक विपदाओं और अत्याचारों को हंसते हुये सहन कर सकूंगा।

सरकार भी भलीभांति समझ गयी कि सुभाष का स्वास्थ्य चिन्ताजनक है। यदि उन्हें कुछ हो गया तो भारतीय जनता में विद्रोह हो सकता है। अतः उसने यही उचित समझा कि जनता में विद्रोह पैदा होने से पहले ही सुभाष को मुक्त कर दिया जाय, जिससे वे स्वतन्त्र होकर भी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकें। 16 मई 1927 को सुभाष चन्द्र बोस को मुक्त कर दिया गया। उस समय सुभाष हड्डी का ढांचा मात्र रह गये थे। देश भर में उनके सम्मानार्थ सभायें हुयीं, उत्साह आयोजित किये गये। उसी समय उन्होंने अपने देशवासियों को एक सन्देश दिया था।[1]

"अब मैं फिर अपने देश में पहुंच गया हूँ। मेरा पहला कर्तव्य यह है कि शीघ्र ही अपने स्वास्थ्य सुधारों की उचित व्यवस्था करूँ, ताकि इसके बाद पुनः अपना पवित्र कार्य सुचारु रूप से चला सकूँ।[2]

---

1. नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय, भाग 2, पृष्ठ 102
2. मदनगोपाल, पूर्वोद्धत 149

वे आत्म शक्ति से परिपूर्ण थे। सुभाष ने बहुत थोड़े समय में ही अपना स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर लिया। किसी को भी आशा नहीं थी कि सुभाष इतने शीघ्र स्वस्थ होकर राष्ट्र की सेवा में संलग्न हो जायेंगे।

स्वास्थ्य लाभ करने के पश्चात सुभाष बाबू बंगाल प्रांतीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष चुने गये। उन्होंने एक बार फिर अपने आपको सक्रिय राजनीति में समर्पित कर दिया। 3 मई 1928 को पूना में महाराष्ट्र प्रदेश कांग्रेस का छठा अधिवेशन हुआ। सुभाष चन्द्र बोस को इसका सभापति चुना गया। सुभाष चन्द्र बोस द्वारा दिया गया भाषण अत्यन्त ओजस्वी था।

सितम्बर 1928 में कांग्रेस का पैंतालीसवां अधिवेशन कलकत्ता की विशाल नगरी में हुआ। इसके अध्यक्ष पं0 जवाहरलाल नेहरू थे। इस अधिवेशन में ब्रिटिश सरकार को यह अल्टीमेटम दिया गया था कि यदि दिसम्बर 1929 तक भारत को औपनिवेशिक स्वराज प्रदान नहीं किया जाता तो कांग्रेस अहिंसात्मक आन्दोलन प्रारम्भ कर देगी। यह प्रस्ताव महात्मा गाँधी ने प्रस्तुत किया था। इस समय कांग्रेस में युवा वर्ग जिसका नेतृत्व नेहरू और सुभाष करते थे, पूर्ण स्वराज्य का पक्षधर था। वे औपनिवेशिक स्वराज से संतुष्ट नहीं थे।[1]

कलकत्ता अधिवेशन में सुभाषचन्द्र बोस ने एक संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किया था जिसमें उन्होंने कहा था– मुझे दुःख है कि महात्मा गाँधी

---

1. अग्रवाल गिरिराज शरण पूर्वोद्धत।

द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव में मैं संशोधन प्रस्तुत कर रहा हूं और जिसे कहीं अधिक अनुभवी नेताओं का ,समर्थन भी प्राप्त है।[1]

हम अनुभव करते हैं कि हम अपने स्वतंत्रता के ध्वज को एक दिन के लिये भी झुकाने को तैयार नहीं हैं जहां तक युवा पीढ़ी का सम्बन्ध है वह भारत को स्वतंत्र कराने का प्रण कर चुकी है। हम अपने नेताओं को चाहते हैं, प्यार करते हैं, आदर करते हैं परन्तु हम चाहते हैं कि वे समय के साथ–साथ चलें। यदि हमारे नेता युवकों के साथ समन्वय नहीं रखेंगे तो नये पुरानों के बीच दरार पैदा हो जायेगी। देश के युवा वर्ग को एक नई दिशा चाहिये।

युवा वर्ग को एक नयी विचार शक्ति प्राप्त हुयी है और वे अंधानुकरण नहीं कर सकेंगे। वे समझ चुके हैं कि भविष्य के उत्तराधिकारी वे ही हैं। उनको अपने ही देश को स्वतंत्र कराना है। इस नई चेतना के उद्‌गम के साथ ही नई पीढ़ी भी किसी कठिन परिस्थिति से जूझने के लिये तैयार बैठी हैं।

एक अन्य तर्क और है जो मुझे अति उपयुक्त लगता है और वह अन्तर्राष्ट्रीय हैं। आपको याद होगा कि मद्रास प्रस्ताव के बाद भारत नें अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में विशेष स्थान प्राप्त किया है। मुझे आशा है कि यदि प्रस्तुत प्रस्ताव पास हो जाता हैं तो इस मद्रास प्रस्ताव के बाद अर्पित

---

1. पट्टाभि सीतारमैयाः भारतीय काँग्रेस का इतिहास खण्ड – 1, पृष्ठ 209

सम्मान खो देगे।

मुख्य प्रस्ताव में इस ब्रिटिश सरकार को 12 महीने का समय मिला है। क्या आप अपने दिल पर हाथ रखकर कह सकते है कि इतने कम समय में उपनिवेशीय शासन को प्राप्त करना सम्भव है। पं0 मोतीलाल नेहरू ने भी इस सम्भावना पर सन्देह व्यक्त किया है फिर 12 महीने के लिए हम अपने देश में ध्वज को क्यों झुकाएं ? हम क्यों नहीं कहते कि ब्रिटिश शासन से हमारा विश्वास उठ चुका है और हम कोई भी कठोर कदम उठाने को तैयार है?

सम्भवतः आप जानना चाहेगे कि पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव से हमें क्या मिलेगा? मेरा यह मानना है कि इससे एक नवीन मनोवृति विकसित होगी। आखिर हमारी राजनीतिक अधोगति का मूल कारण क्या है? क्या मनोवृति ही है? यदि आप दासता की मनोवृति पर विजय प्राप्त करना चाहते है तो अपने देशवासियों को पूर्ण स्वराज्य के लिए उत्साहित करके ही ऐसा कर सकते है। मै तो उससे भी बढ़कर कहता हूँ कि यदि यह मान भी लिया गया कि हम अपनी इच्छाओं और आशाओं को कार्यरूप में परिणित नही कर पायेंगे तो भी इस पावन सन्देश को ईमानदारी से मात्र प्रभावित करने तथा अपने देशवासियों के सम्मुख स्वाधीनता के लक्ष्य को रखने से हम एक नई पीढ़ी का सृजन कर सकेगें।

लेकिन मैं कहता हूँ कि हम हाथ पर हाथ रखकर नही बैठेगे। मैं कह चुका हूँ कि युवा पीढ़ी अपने उत्तरदायित्व को भलीभाँति समझती

है और वह पूरी तरह तैयार है हमें अपने कार्यक्रम पर पूरी तरह विचार कर लेना चाहिए और अपनी पूर्ण योग्यता से इसको क्रियान्वित करने की योजना बनानी चाहिए ताकि हमारे प्रस्ताव को रद्दी की टोकरी में फेंक देने का कोई भी खतरा नही रहें।

अपनी बात समाप्त करने के पहिले मैं इस तथ्य की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। सभी घटनाओं से ऐसा आभासित हो रहा है जैसे विश्वयुद्ध छिड़ने वाला है क्योंकि युद्ध को भड़काने वाले विभिन्न कारण आज संसार मे उपस्थित हैं। देशों मे शस्त्रीकरण की होड़ लगी है और वास्तविकता यह है कि सभी स्वतन्त्र देश एक नये युद्ध की तैयारी में लगे हुए हैं। ऐसे समय में अपने देशवासियों में हमें एक ऐसी मनोवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिये जो कहे इनको पूर्ण स्वराज चाहिये। यह भी सम्भव होगा जब हम स्पष्ट रूप से अपने विचारों और आदेशों की घोषणा करे।

"अपने देश में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव से ही हमने स्वतन्त्रता की कल्पना पूर्ण स्वराज्य के रूप में की है। उपनिवेशक स्वराज्य के साथ में हमने इसका अर्थ कभी नही लगाया। हमें स्वतन्त्रता को पूर्ण स्वराज्य के साथ में ही समझना है। उपनिवेषी राज्य की बाते हमारे देशवासियों को तनिक भी प्रभावित नहीं कर सकतीं। यहां तक कि तरुण पीढ़ी को नही जो अभी विकसित हो रही है। हमें यह याद रखना चाहिये कि तरुण पीढ़ी ही भविष्य की उत्तराधिकारी है।

"निष्कर्ष साथ में है, अन्तिम निवेदन करता हूँ कि यदि हम संशोधन स्वीकार कर लें तो इसमें हमारे नेताओं का तनिक भी सम्मान नही है। अपने नेताओं का आदर और प्यार उनकी इज्जत और आराधना एक बात है, किन्तु सिद्धान्तों का आदर निम्न है। मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करें और तरुण पीढ़ी को नवीन चेतना से अनुप्रेरित करें।

सुभाष द्वारा प्रस्तुत इस संशोधन प्रस्ताव के साथ ही कांग्रेस के दो दल बन गये।

"एक दल इस संशोधन का विरोधी था, दूसरा इसका पक्षधर था। दोनो दलों में शक्ति परीक्षण हुआ। यहां यह उल्लेखनीय है कि पंडित जवाहर लाल नेहरू सुभाष द्वारा प्रस्तुत संशोधन के पक्षधर थे। यद्यपि यह संशोधन 1350 के मुकावले 973 मतों से गिर गया फिर भी यह सभी को ज्ञात हो गया, कि नेहरू सुभाष का काम यहाँ अधिक सशक्त था।[1]

"प्रस्ताव गिरने का कारण सदस्यों का विरोध नही अपितु सदस्यों के मन में यह दुविधा थी कि यदि महात्मा गांधी भी इस प्रस्ताव पर हार मान गये तो वे राजनीति से सन्यास ले लेंगे और तमाम सदस्य यह नही चाहते थे। सुभाष पर इस घटना का कोई विशेष प्रभाव नही पड़ा, क्योंकि उनके मन में निश्चित दृढ़ संकल्प था। सुभाष चुप नही बैठे। उन्होने अपने विचारों के अनुरूप युवको में जागृति पैदा करने के लिए देश में युवकों के अनेक

---

1. नेहरू जवाहरलाल, मेरी कहानी, पृष्ठ 29

संगठन बनाये। पंजाब और उत्तरी भारत मे सरदार पटेल के नेतृत्व में एक अखिल भारतीय नौजवान सभा बनी।

नौजवान सभा का कलकत्ता अधिवेशन 25 सितम्बर 1928 को कलकत्ता में हुआ इसमे विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधि शामिल हुये। इसके स्वागत भाषण में सुभाष चन्द्र बोस ने कहा– ' दुनिया के सभी देशों में नवयुवक जाग रहा है। वहां पुरानी पीढ़ी के नेता असफल होते है वहां के युवक स्वयं सचेत है और उन्होंने समाज की नव रचना का कार्य सम्भाल लिया। .... भारत के नवयुवक भी अब अपने पुराने नेताओ पर जिम्मेदारी डालने मात्र से सन्तुष्ट नहीं है और वे हाथ पर हाथ रख कर नही बैठे है। उन्होंने यह स्पष्ट अनुभव किया है कि उन्हें एक स्वतन्त्र महान शक्तिशाली नये भारत का निर्माण करना है।[1]

"अन्त में सुभाष ने सारे देश में नई चेतना और जागृति का संचार करने के लिए पूर्ण वहिष्कार का नारा दिया। दिसम्बर 1929 में लाहौर अधिवेशन मे उन्होंने कहा था कि मेरा कार्यक्रम तो सर्वतोमुखी वहिष्कार है मैं नही समझता कि सबको छोड़कर केवल एक वस्तु का वहिष्कार करने के लिए चुनने से कोई लाभ नही होगा। सुभाष के नेतृत्व में युवकों, मजदूरों, किसानों को संगठित होता देखकर ब्रिटिश सरकार परेशान हो उठी थी। अतः उन पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया। उनके जन्म दिवस पर

---

1. अग्रवाल गिरिराज शरण : क्रान्तिवीर सुभाष, पृष्ठ 63

23 जनवरी 1930 को उन्हें गिरफ्तार किया गया और एक वर्ष के कारावास की सजा भी मिली।

"इस समय सुभाष को सरकार की ओर से एक प्रस्ताव प्राप्त हुआ कि यदि वे एक वर्ष स्वतन्त्रता संग्राम मे भाग न लें तो उन्हे मुक्त किया जा सकता है। भला सुभाष जैसा स्वाभिमानी देशभक्त इस प्रस्ताव को कैसे मान सकता था। उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया।

1 अप्रैल 1931 को करांची में अखिल भारतीय राजनीति बन्दी सम्मेलन हुआ। सुभाष चन्द्र बोस इसके सभापति चुने गये। इनमें इन्होंने भारतीय कारीगरो की दशा का सजीव चित्रण किया था क्योंकि कारीगरों के जितना अनुभव शायद ही किसी को था।

सुभाष ने इस समझौते का विरोध किया। भारतीयों पर होने वाले अत्याचारों से उनका मन विक्षुब्ध हो उठा था। उनकी जागृत चेतना को चिंगारी मिली। कांग्रेस के समझौतावादी सिद्धांतो से उन्हे अरूचि हो गई थी उसके नेताओं द्वारा किये जाने वाले कार्यो के प्रति उनके मन में अविश्वास और अस्थिरता पैदा हो गयी थी। सरदार भगत सिंह के सम्बन्ध में गांधी इरविन पेक्ट सें सौदा क्यों नही किया गया। सरदार भगत सिंह को फांसी लगाये जाने के केवल चार दिन बाद करांची में अखिल भारतीय नौजवान सभा का अधिवेशन हुआ। उसकी अध्यक्षता सुभाष चन्द्र बोस ने की। इस सभा में भाषण देते हुए सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था – " कांग्रेस के सिद्धान्तों और कार्यक्रमो की मूलभूत कमजोरी यह है कि उसके नेताओं के

मस्तिष्क में केवल अपना ही सोचने और करने की भावना है उनके मन अत्यवस्थित है उनकी विचारधारा अस्पष्ट है तथा उनका कार्यक्रम सुधारवाद पर नही वरन् समझौता पर आधारित है। उनके समझौते भूमिपति और किराएदार पूंजीपति और मजदूर उच्च वर्ग और निम्न वर्ग पुरूष और स्त्री, सभी के मध्य हो जाते हैं।[1]

मै विश्वास नही करता कि कांग्रेस के ये कार्यक्रम भारत की स्वतन्त्रता को जीत सकते हैं। मेरे विश्वास से, जिस कार्यक्रम से स्वतत्रता प्राप्त की जा सकती है वह इस प्रकार हो सकता है:

1. सामाजिक कार्यक्रम के आधार पर किसानों और मजदूरों के संगठन।
2. मजबूत अनुशासन कें स्वयंसेवी दलों में युवकों का संगठन।
3. जाति प्रथा की समाप्ति और सभी प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक अन्धविश्वासों का उन्मूलन।
4. नवीन कार्यक्रम की योजना बनाकर और कुछ सिद्धान्त स्वीकार कर महिला संस्थाओं का संगठन।
5. विदेशी माल के वहिष्कार का जोरदार कार्यक्रम।
6. इस नवीन कार्यक्रम के प्रचार हेतु विशिष्ट साहित्य की रचना।

इसके बाद उन्होंने कहा– मेरे विचार से गांधी इरविन समझौता

---

1. बोस सुभाषचन्द्र, "रोल ऑफ दी यूथ मूवमेंट, स्पीच ऐट दी थर्ड सेशन ऑफ दी आल इंडिया यूथ कॉंग्रेस कलकत्ता दिसम्बर 25, 1928, पब्लिश्ड इन सिलेक्टेड स्पीचेज आफ सुभाष चन्द्र बोस पब्लिकेशन डिवीजन देहली, पृष्ठ 42–43

अत्याधिक निराशाजनक और असन्तोषजनक है। मुझको सबसे बड़ा दुख यह है कि समझौता ऐसे समय में किया गया है, जबकि हमारे पास अधिक शान्ति है। इस समझौते में वैसे ते अनेकानेक कमजोरियाँ हैं फिर भी जब यह हो ही चुका है तो हमें यह देखना है कि वर्तमान स्थिति में हमारे क्या कर्तव्य हैं? अब हमारे लिए सही यह होगा कि हम ऐसे रचनात्मक कार्य करें जिनसे हमारा राष्ट्र शक्तिशाली हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ कार्यक्रम वर्तमान समय में कांग्रेसी नेताओं के अनावश्यक वैमनस्य को बचायेंगे और देश को कमजोर तथा विदेशी शासन को मजबूत होने से रोकेगें। हमको दूसरों की निन्दा करने की अपेक्षा अपने ऊपर संयम रखना है। यदि हम अपने को संयमी और सहृदय बना लेंगे तो हम हानि की अपेक्षा निश्चित ही लाभ अर्जित करेंगे।[1]

इस भाषण में सुभाष ने जोर देकर कहा था कि संसार के समस्त घटनाचक्र का मुख्य स्थान इस समय भारत है और स्वतन्त्र भारत संसार से साम्राज्यवाद को मिटाकर ही रहेगा इसलिए ऐसा कार्य करने की ओर अग्रसर हो जाओ जिससे भारत स्वतन्त्र हो जायें तथा मानवता बचाई जा सके।[2]

"जनता *लार्ड बैलिंगटन* के क्रूर व्यवहार से पहले ही भारत की

---

1. पूर्वोक्त ।
2. वही।

जनता त्राहि त्राहि कर रही थी। सुभाष चन्द्र बोस के इस भाषण के बाद देश भर मे ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह की आग फैल गयी। सुभाष का नारा कि कुछ न कुछ क्रियात्मक कार्य करें । सम्पूर्ण भारतीय जनमानस में स्थान ग्रहण कर चुका था।

सुभाष चन्द्र बोस द्वारा बनाए गये आन्दोलन को देखकर भारत के वायसराय और बंगाल के गवर्नर का दिल दहल उठा। एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित की गयी और 2 जनवरी 1932 को देशवासियों ने अचानक सुना कि सुभाष को बन्दी बना लिया गया है। सरकार उनके ऊपर कोई भी निश्चित अपराध न लगा सकी। मात्र इतना ही विज्ञप्ति में कहा गया कि सुभाष क्रान्तिकारी हैं और उन्होंने व्रिटिश शासन को उलटने के लिए देशभर में विद्रोह का जाल फैलाया है। जेल में सुभाष बाबू की अस्वस्थता बढ़ती गयी, परन्तु सरकार ने सुभाष चन्द्र बोस को जेल से मुक्त करना उचित नही समझा। पहिले उन्हे मुवाली सेनीटोरियम भेजा गया किन्तु उनका स्वास्थय सुधर न सका। इस स्थिति में डाक्टरों ने स्विटजरलैंड या फ्रान्स भेजने की सलाह दी। जब सुभाष मृत्यु के निकट पहुँच गये, तो सरकार ने उन्हें विवश होकर विदेश में चिकित्सा हेतु भेजने का निर्णय किया। उन्हें अपने माता पिता से भी नही मिलने दिया गया।[1]

---

1. नेताजी सम्पूर्ण वाङ्.मय, पृष्ठ 167

13 फरवरी 1933 को उन्हे बम्बई से जहाज द्वारा विदेश रवाना किया गया। उन्हें विदा करने आए किसी व्यक्ति से उन्हें नहीं मिलने दिया गया। विदशों में वे पहले कुछ दिनों वेनिस में रहे । इन्ही दिनों रोम में पूर्वी विधार्थियो की एक कान्फ्रेस हुयी। इसका उद्घाटन सुभाष चन्द्रबोस ने ही किया था। इस अवसर पर स्वयं मुसोलिनी ने आकर जुलियस सीजर हाल में विधार्थियों के समक्ष भाषण दिया।

"रोम में कुछ दिनों रहने के बाद वे पोलेण्ड गये। बारसा में सुभाष बाबू ने देखा कि पोलिश लोग भारतीय सभ्यता व संस्कृति के बड़े प्रेमी है। ओरियण्टल सोसायटी में सुभाष बाबू ने विद्वता पूर्ण भाषण दिया। इसके बाद वे जेनेवा आए। वहां से वे बाइस (दक्षिणी फ्रान्स) गये। यहां की जलवायु, सुखद वातावरण तथा सूर्य की रश्मियों से सुभाष के स्वास्थ्य को आशातीत लाभ हुआ।[1]

"29 सितम्बर 1933 में जेनेवा में भारत विषयक तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस हुयी। कान्फ्रेंस में अमरीका, चीन, डेनमार्क, इग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, हालैण्ड, भारत तथा स्विटजरलैण्ड के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

सुभाष ने इस सभा में बहुत सारगर्भित भाषण दिया। उन्होंने कहा:—

यदि किसी को भारत की वर्तमान दशा को समझना है तो उसके लिए

---

1. पूर्वोक्त।

यह समझना बहुत जरूरी है कि वहां कितना कठोर दमन हुआ है जो व्यक्ति जेल में हैं उनके तो यह तो कहना ही क्या जो जेल से छूट गये है, उनके लिए भी सरकार ने ऐसा प्रतिबन्ध लगा रखा है कि उनका जेल में रहना या बाहर रहना बराबर ही है।

''इस समय भारतवासी शान्त हैं, परन्तु चुप्पी का यह अर्थ नही लगाया जाना चाहिये कि भारतवासी इस कठोर दमन नीति से भयभीत हो गये हैं और उन्होंने अपनी पराजय स्वीकार कर ली है। भारतीयों की रग–रग में स्वतन्त्रता की भावना भरी हुयी है और जब तक भारत अपने भौतिक मानवीय अधिकारो से वंचित रखा जाता है तब तक यह सम्भव नही है कि भारतवासियों के ह्रदय से क्रान्ति की लपटें बुझाई जा सकें।

भारत के स्वराज्य की समस्या केवल एक देश की समस्या नहीं वरन् संसार की समस्या है। भारत में ब्रिटिश राज्य सारे ब्रिटिश साम्राज्य का आधार है व ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर ही विश्व साम्राज्यवाद स्थित हैं। इसलिये भारत के स्वराज्य के लिये प्रयत्न करना संसार के स्वराज्य के लिये प्रयत्न करना है।

4 दिसम्बर 1934 को अपने पिता के अन्तिम दर्शन के लिये सुभाष बाबू भारत आये तो दमदम हवाई अड्डे पर लाखों लोगों की भीड़ उनके स्वागत में उपस्थित थी। सारा हवाई अड्डा उनके जयकारे से गूंज उठा परन्तु विमान उतरते ही *सार्जेण्टों* ने उन्हें अपने साथ ले लिया। ऐसा लगता था कि उनके पिता के प्राण सुभाष को देखने के लिये ही अटके थे। उनका

देहावसान हो गया। अपने पिता की श्राद्ध तक भी सुभाष को भारत में नहीं टिकने दिया गया।

यह सुभाष चन्द्र बोस की असहयोग व सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका थी।

3. बोस द्वारा गाँधीवादी विचारों की आलोचना

इसी बीच चौरा–चोरी घटना घट जाने से गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया । इस आन्दोलन में सुभाष चन्द्र बोस की भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने यद्यपि इस आन्दोलन में चितरंजनदास के नेतृत्व में कार्य किया, परन्तु उन्होंने इस आन्दोलन में स्वयं सेवकों को जिस प्रकार संगठित किया उसमें उन्होंने अपने आपको एक अद्भुत संगठन सिद्ध किया।[1]

जहां तक सुभाष चन्द्र बोस का प्रश्न है , वे नौजवान थे, उन्होंने चितरंजनदास के समझौतावादी प्रयासों का भी विरोध किया था, परन्तु बाद में वे चितरंजनदास के अकाट्य तर्को एवं प्रतिमानों से सहमत हो गए थे। चितरंजनदास ने उन्हें तर्क दिया था कि कांग्रेस ने जनता से 1 साल में स्वराज्य दिलाने का वायदा किया है, वह अवधि समाप्त होने में मात्र 15

---

1. अग्रवाल गिरिराज शरणः पूर्वोद्धत, पृष्ठ 89

दिन बचे हैं और इसी बीच कुछ न कुछ ऐसा अवश्य प्राप्त होना चाहिये, जिसमें कांग्रेस की इज्जत बच सके और स्वराज के बारे में महात्मा जी का वचन भी पूरा हो सके। वायसराय का प्रस्ताव तो मानों हमारे लिये ईश्वर का वरदान है और यदि सभी राजनीतिक बन्दी जेलों से छूट जाते हैं तो आम आदमी को यही लगेगा कि कांग्रेस की जीत हुई है। गोलमेज सम्मेलन चाहे वह सफल हो या असफल , लेकिन यदि वह असफल हुआ और सरकार ने जनता की मांगों को नहीं माना तो कांग्रेस जब चाहे अपनी लड़ाई दुबारा आरम्भ कर सकती है और जब वह ऐसा करेगी तो उसे जनता का अधिक विश्वास प्राप्त होगा तथा उसकी गरिमा पहिले से अधिक बढ़ जायेगी।[1]

सुभाष चन्द्र बोस ने "इण्डियन स्ट्रगल" में लिखा है कि चितरजंनदास के प्रस्ताव को न मानकर गांधी ने एक बहुत बड़ी राजनीतिक भूल की थी। यदि वे ऐसा न करते तो भारत का इतिहास ही दूसरा होता।[2]

जहां तक गांधी जी के नेतृत्व के सम्बन्ध में सुभाष चन्द्र बोस की टिप्पणियों का सम्बन्ध है, सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा है कि "चितरंजनदास गांधी जी के बारे में कहा करते थे कि महात्मा जी किसी आन्दोलन की शुरूआत बड़ी समझदारी से करते हैं, उसे कुशलता से आगे बढ़ाते हैं, उन्हें असफलता से सफलता मिलती जाती है और वे चरम बिन्दु

---

1. नेताजी सम्पूर्ण वाड़्.मय, भाग – 2, पृष्ठ 22

2. वही, पृष्ठ 25

पर पहुंच जाते हैं, लेकिन वहां पहुंचकर वे घबरा जाते हैं और लड़खड़ाने लगते हैं।"[1]

महात्मा गांधी की संगठन क्षमता के सम्बन्ध में सुभाष चन्द्र बोस ने स्वयं उपरोक्त पुस्तक में लिखा है कि कांग्रेस अत्यन्त सुसंगठित पार्टी थी। इसके पूर्व कांग्रेस एक वैधानिक पार्टी और पाषणबाज संस्था थी। 1897 से महात्मा गांधी जी ने इसे नया विधान और राष्ट्रव्यापी आधार ही नही दिया, अपितु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह हुयी कि उन्होंने इसे क्रान्तिकारी संगठन में बदल दिया। तिरंगा सारे देश में फहराया गया और इसकी बहुत महत्ता हो गयी। हर जगह एक से नारे लगते थे। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक एक ही नीति और विचारघारा प्रचलित थी। अंग्रेजी का महत्व कम हुआ और हिन्दी का बढ़ा। खादी, कांग्रेस जनों की स्वतः वर्दी हो गयी। इस सबका श्रेय निःसन्देह महात्मा गॉधी को ही है।[2] परन्तु जब महात्मा गाँधी ने "चोरा चौरी" घटना के कारण असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया तो सुभाष बाबू ने भी उनकी अलोचना की। सुभाष बाबू गम्भीर रूप से देश के हित के सम्बन्ध में सोचते थे। हालांकि सुभाष बाबू गाँधी का सम्मान करते थे।

1922 में नया साल आने पर यद्यपि एक साल में स्वराज का वायदा तो पूरा नहीं किया जा सका, परन्तु 1 फरवरी 1922 को महात्मा

---

1. वही

2. पूर्वोक्त ।

गाँधी ने कर बन्दी का अल्टीमेंटम देकर जनता के उत्साह और संघर्ष को बढ़ाने का प्रयास अवश्य किया। वायसराय लार्ड रीडिंग को यह अल्टीमेटम दिया गया कि यदि 1 सप्ताह के भीतर सरकार अपने ह्रदय परिवर्तन का संकेत नही देती तो वे गुजरात में वारदोली से लगान बन्दी आन्दोलन शुरू कर देंगे। सब लोग इस अन्तिम समय का इन्तजार कर रहे थे। इसी समय 4 फरवरी 1922 को चौरा चोरी घटना घट गयी, जिसमें उत्तेजित जनता ने सिपाहियो व थानेदारों का थाना जला दिया। इस हिंसक घटना के कारण गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। इससे कांग्रेस के लोगो में भी सर्वत्र आलोचना हुयी। कोई यह नहीं समझ सका कि चौरा–चोरी की अकेली घटना की वजह से गाँधी जी ने पूरे जोश और उत्साह में चल रहे इस आन्दोलन को क्यों स्थगित कर दिया। इस घटना से देशबन्धु चितरंजनदास, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय सभी गाँधी जी से नाराज थे।[1]

---

1. नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय

अध्याय - तृतीय

कॉंग्रेस अध्यक्ष के रूप में सुभाषचन्द्र बोस की भूमिका

(अ) निर्वाचन

(ब) कार्यशैली

(स) मतभेद

Subhas Chandra Bose, shown here laughing in conversation with Mohandas Gandhi, was one of the more radical leaders of the Indian nationalist movement, whose individual tactics included political flirtations with Adolf Hitler. Beginning his career in the Indian civil service, Bose joined the nationalist cause in 1921 and was imprisoned repeatedly; by 1938 he was president of the Indian National Congress. Disagreement with the pacifist stance of Gandhi forced him to resign in 1939, however, and in 1941 he fled to Germany, where he became a propaganda broadcaster for the Nazis. In 1943 he set up an Axis-backed Provisional Government of Free India in Malaya, and organized with Japanese help an Indian National Army, recruited from the Indian community in occupied South East Asia to fight against the British. The force had little military success, and Bose died in August 1945 in a plane crash while fleeing to Japan in the aftermath of the Japanese surrender

कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में सुभाषचन्द्र बोस की भूमिका

1. निर्वाचन

1934 में कांग्रेस की स्थिति इस प्रकार की हो गयी थी जिसमें विभिन्न नेतृत्व और पंच उभर रहे थे। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद कांग्रेस का पूर्ण अधिवेशन 26 अक्टूबर 1934 को बम्बई में हुआ। इस अधिवेशन में दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये थे। इनमें एक कांग्रेस के विधान मे परिवर्तन करना था इस परिवर्तन का उद्देश्य कांग्रेस पर गाँधी जी की पकड़ मजबूत करना था। इसलिए इस प्रस्ताव के दो भाग थे। (1) कांग्रेस के प्रतिनिधियों और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की गतिविधियों की संख्या को घटाना। (2) ऐसे नियम का प्रावधान कि कांग्रेस कार्यकारिणी का सदस्य बनने के लिए किसी व्यक्ति को 6 महीने तक आदतन खादी पहननी होगी। ये दोनों ही प्रस्ताव महात्मा गाँधी की देन थें। 1920–21 के वर्षो से कांग्रेस का जो विधान चला आ रहा था, उसमें कांग्रेस के पूर्ण अधिवेशन के लिए 6000 प्रतिनिधियों और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कें 350 सदस्यों की व्यवस्था थी।

"दिसम्बर 1929 के लाहौर अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने कांग्रेस तन्त्र पर अपना कब्जा किया था और पुराने नेताओं को निकाल बाहर किया था, तब प्रजातन्त्रीय शक्तियाँ उनके पक्ष में थीं और नागपुर अधिवेशन में कम से कम 14000 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। आज इस समय हालत

यह है कि महात्मा जी प्रजातन्त्री शक्तियों से डरते हैं. जिन्हे स्वयं उन्होंने ही उभारा। यही कारण है कि कांग्रेस प्रतिनिधियों की ही नही अपितु अखिल भारत की समस्या है।[1]

"4 दिसम्बर 1934 को अपने पिता के अन्तिम दर्शन के लिए सुभाष चन्द्र बोस भारत पहुंचे तो दमदम हवाई अड्डे पर लाखो की भीड़ उनके स्वागत में उपस्थित थी। सारा हवाई अड्डा उनके जय– जयकार से गूंज उठा, परन्तु विमान उतरते ही सार्जेण्टो ने उन्हें अपने साथ में लिया। उन्हे किसी से नही मिलने दिया गया। उन्होंने जानकीनाथ बोस के अन्तिम दर्शन किये; ऐसा लगता था कि उनके प्राण सुभाष को देखने के लिए अटके थे। सुभाष को देखते ही उनके पिता का देहावसान हो गया। अपने पिता के श्राद्ध तक भी सुभाष को भारत में नहीं टिकने दिया गया।

"1933 में महात्मा गाँधी ने अपने तीन सप्ताह के अनशन से सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन से उत्पन्न असन्तोष से बचाव का प्रयास किया था। 1934 में राजनीति से सन्यास लेने की बात करके उन्होंने कांग्रेस का विधान ही बदलवा दिया था। इन दोनों ही अवसरों पर महात्मा गाँधी जी के लिये इतनी अधिक सहानुभूति पैदा हो गयी थी कि भावुक और सोच विचार करने वाले लोग महात्मा गाँधी की खातिर उनके हर प्रस्ताव को मानने

---

1. सरल श्री कृष्ण : कालजयी सुभाष, पृष्ठ 183

के लिए तैयार हो गये।[1]

प्रश्न यह उठता है कि क्या 1934 में महात्मा गाँधी ने वास्तव में कांग्रेस से सन्यास ले लिया था। वास्तविकता इससें भिन्न थी। महात्मा गाँधी का नाम कांग्रेस कार्यकारिणी की सूची में नही आता था।[2]

"परन्तु अब स्थिति यह थी कि कांग्रेस कार्यसमिति मे तो सारे उनके अनन्य समर्थक ही थें। यह स्थिति 1924 से भिन्न थी क्योकि 1924 में कांग्रेस कार्यकारिणी पर स्वराजवादियों का कब्जा हो गया था, परन्तु इस समय 1934 में स्थिति यह थी कि कार्यकारिणी में भले ही महात्मा गाँधी नहीं थे, परन्तु उनका कार्यकारिणी पर पूर्ण नियन्त्रण था और सबसे बड़ी बात यह थी कि ग्रामोद्योग संगठन पर जो कांग्रेस का सबसे बड़ा हिस्सा था, गाँधी जी का पूरा नियन्त्रण था, अतः जैसा कि सुभाष चन्द्र बोस ने आत्मकथा में स्पष्ट किया है कि यह तो उनकी एक प्रकार की नीति थी जो उन्होंने हमेशा असफलता के बाद राजनीतिक मन्दी के दौर में अपनाई थी।

केन्द्रीय विधान मण्डल में 1934 में स्थिति निम्न प्रकार थी। इसमें कांग्रेस पार्टी ने 43 कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी ने 8 और अन्यों ने करीब 46 सीटें जीती थीं।

"इस समय कांग्रेस की भीतरी दशा में अस्थिरता मौजूद थी क्योंकि

---

1. वही, पृष्ठ 196

2. वही, पृष्ठ 197

कांग्रेस मे एक वामपंथी रुझान वाली कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बन चुकी थी तो दूसरी ओर जवाहर लाल नेहरू जो गाँधी के बाद सबसे अधिक लोकप्रिय थे, श्री गाँधी जी के वैचारिक दृष्टि से कट्टर समर्थक नही थे।[1]

"उस समय नेहरू साम्यवाद के पक्षधर थें। यद्यपि ये उनका विचार था कि इसका अर्थ यह नही था कि उनके सभी समर्थक उनके विचार से सहमत थे। सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा है कि यह नेहरू जी का तत्कालीन निजी विचार था, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नही, उनकी (नेहरू जी की) लोकप्रियता का अर्थ था, इनके विचार कांग्रेस संगठन में सबको मान्य होते थे, जैसे कि महात्मा गाँधी की अपूर्व लोकप्रियता का अर्थ यह नहीं था, कि उनके अनुयायी उनकी तरह लंगोटी लगाते हों या बकरी का दूध पीते हों।[2]

"सुभाष चन्द्र बोस भी नेहरू जी के इस विचार से सहमत नहीं थे कि दुनिया में केवल दो ही रास्ते हैं –एक फासिस्टवादी दूसरा साम्यवादी, और हमें इनमें एक को ही चुनना होगा। सुभाषचन्द्र बोस का स्पष्ट मत था कि जब तक कि हम विकास की प्रक्रिया के अन्तिम छोर पर न पहुंच गये हों या विकास के सिद्धान्त को न नकारते हो तब तक यह मानने का कोई कारण नहीं है कि हमें केवल इन्ही दो रास्तों में से एक को चुनना है चाहे हम हीगेल के विकास सिद्धान्त को माने, चाहे वर्गसन के

---

1. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, मैकमिलन, पृष्ठ 628–29

2. नेताजी सम्पूर्ण वाङ्.मय, पृष्ठ 205

या विकास के किसी अन्य सिद्धान्त को माने।

''हमें यह नही सोचना चाहिए कि सृजन का अन्त आ गया है। हर बात का विचार करने के बाद हमें यही सोचने पर मजबूर होना पड़ेगा कि विश्व इतिहास के अगले चरण में साम्यवाद और फासिस्टवाद का कोई समन्वित रूप सामने आयेगा और क्या यह आश्चर्य की बात होगी कि यह समन्वय भारत ही प्रस्तुत करें। पुस्तक ''इण्डियन स्ट्रगल'' की प्रस्तावना में यह विचार प्रकट किया जा चुका है कि भौगोलिक रूप से शेष देशों के अलग होंने के बाबजूद भारतीय जागृति विश्व के अन्य भागों की प्रगति से जुड़ी हुयी हैं और इस बात के प्रमाण स्वरूप तथ्य और आंकड़े भी प्रस्तुत किये गये हैं। अतः इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं होगी कि ऐसा प्रयोग सारे विश्व के लिए महत्व रखता हो भारत में किया जाये।[1]

''इस समय महात्मा गाँधी गोबिन्द बल्लभ पंत और मदन मोहन मालवीय में मतभेद था। महात्मा गाँधी कांग्रेस के नेता थे। मालवीय नेशनलिस्ट कांग्रेस के नेता थे। जहाँ तक गाँधी जी का प्रश्न है, सुभाष चन्द्र बोस ने यह स्वीकार किया है कि गाँधी जी ने भारत को अहिंसक प्रतिरोध का तरीका अवश्य सिखाया, लेकिन वे कम्युनिज्म की तरह देश और समाज के सामने समाज की पुनर्रचना का कोई कार्यक्रम प्रस्तुत नही कर पाये और

---

1. बोस सुभाष चन्द्र, दि इण्डियन स्ट्रगल 1920–1934, प्रस्तावना, कलकत्ता थेंकर स्पिक एण्ड कम्पनी।

कम्युनिज्म का विकल्प समाज की पुनर्रचना का कोई सिद्धान्त ही हो सकता है। महात्मा गाँधी आधुनिक युग की मशीनरी सभ्यता की निन्दा करते थे और वे मध्ययुगीन अर्थव्यवस्था के समर्थक थे। 1930 में उन्होंने जो 11 सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किये, उन्हे कोई भी भारतीय उद्योगपति स्वीकार कर सकता था।[1]

"सुभाष चन्द्र बोस का मत था कि गाँधी जी बुनियादी तौर पर सुधारवादी थे क्रान्तिकारी नहीं। उन्हें सत्ता मिलने के बाद आर्थिक, सामाजिक परिवर्तन की कोई आशा नहीं थी, वे तो केवल उन सुस्पष्ट अन्यायों को ही दूर करते थे जिनके विरुद्ध उनकी नैतिक भावना विद्रोह करती थी।

"इस समय सुभाष चन्द्र बोस का स्पष्ट विचार था कि भारत का भविष्य अलवत्ता एक ऐसी पार्टी के हाथ में सुरक्षित रह सकता है जिसकी अपनी स्पष्ट विचारधारा हो, कार्यक्रम हो और कार्यवाही की योजना हो और जो केवल आजादी के लिए लड़ेगी और उसे प्राप्त ही नही करेगी बल्कि युद्धोपरांत पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को पूरी तरह अमल में लायेगी। ऐसी एक पार्टी जो भारत को शेष संसार से अलग– थलग पड़े रहने की स्थिति को जो कि उसके लिए अभिशाप रहा है, खत्म करेगी और उसे राष्ट्रों की विरादरी में लाकर विठायेगी, ऐसी पार्टी जो इस बात में पूरा यकीन करती है कि भारत की नियति समूची मानवता की नियति के साथ अटूट रूप

---

1. नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय, भविष्य की फलक, पृष्ठ 305 पर गांधी जी के बारे में सुभाष बाबू।

से जुड़ी हुई है।[1]

यह 1934–35 में सुभाष चन्द्र बोस की मन:स्थिति का स्पष्टीकरण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय आन्दोलन और तात्कालीन प्रश्नों पर सुभाष चन्द्र बोस क्या सोचते थे।

''1935 में ब्रिटिश सरकार ने भारत को भारत शासन अधिनियम दिया। सुभाष चन्द्र बोस का विचार था कि इस समय ब्रिटिश सरकार को यह उम्मीद थी कि वह अल्पसंख्यक मुसलमानों , दलित वर्गो, भारतीय ईसाइयों और एंग्लो–इण्डियनों की सहायता से राष्ट्रवादी विरोध को दबाने की उपेक्षा करने में सफल हो जायेगी परन्तु क्या वह इसमें सफल होगी। इसके बारे में केवल इतनी आशा अवश्य थी कि भारत के अल्पसंख्यक सम्प्रदाओं का काफी वड़ा हिस्सा कुछ समय तक सरकार के प्रभाव में बना रहेगा। यह उन रियासतों का बदला होगा जो सम्प्रदायिक अवार्ड द्वारा दी गयी है। सुभाष चन्द्र बोस का विचार था कि यह स्थिति अधिक दिनों तक चलने वाली नहीं है, अधिक से अधिक बस इतना ही है कि साम्प्रदायिक अवार्ड ने अल्प संख्यक सम्प्रदाओं को नये संविधान के अन्तर्गत विधान मण्डलो में अधिक प्रतिनिधित्व दे दिया है।

नये संविधान (भारत शासन अधिनियम 1936) के सम्बन्ध में सुभाष चन्द्र बोस का विचार था। कि यह समस्त भारतीयों अथवा उसके

---

1. पूर्वोक्त, अन्तिम पैराग्राफ।

किसी वर्ग को कोई वास्तविक अधिकार या शक्ति प्रदान नहीं करेगा।

अतः सुभाष चन्द्र बोस का विचार था कि उन सम्प्रदायाओं को यह समझाने में अधिक समय नही लगेगा, यद्यपि सरकार ने उन्हें विधान मण्डलो में अधिक सीटें दी हैं , पर कोई शक्ति या अधिकार नही दिया हैं। विधान मण्डल की सीटें तो मुट्ठी भर लोगों के लिए होती हैं। वे थोड़े लोग आम जनता पर सभी अपना प्रभाव बनाये रख सकते हैं जब वे सारे सम्प्रदाय या वर्ग की भलाई के लिए कुछ कर सके , परन्तु यह सम्भव नहीं होगा क्योंकि उन्हें कोई ऐसी शक्ति दी ही नहीं जा रही है जिससे वे जनता के लिए कुछ काम कर सकें, परन्तु जब विभिन्न सम्प्रदाय यह अनुभव करने लगेंगे कि उनके प्रतिनिधि उनके लिए कुछ कर ही नही सकते तो वे विधायिकाओं में दिलचस्पी खो देंगे और संविधान के विरुद्ध जन बिद्रोह बढ़ने लगेगा।[1]

"सुभाष चन्द्र बोस का विचार था कि यह जन– विक्षोभ भारत में जो आर्थिक संकट छाया है उसके कारण और भी बढ़ेगा और ब्रिटेन या अन्य किसी देश में कोई सुधार हुआ भी तो भी उसका भारत में कोई प्रभाव नही पड़ेगा। आज (1936) में भारत में जो आर्थिक संकट है उस पर सारे विश्व के आर्थिक संकट का ही प्रभाव है। यह स्वतन्त्र घटना भी है, जिसके कारण बहुत हद तक भारत के प्राकृतिक संसाधनो का और

---

1. बोस सुभाष चन्द्र : "इण्डियन स्ट्रगल (1934–1942)" कलकत्ता चक्रवर्ती एण्ड कम्पनी, प्रकाशित 1952, उद्धृत एम.वी. गुप्ता, पृष्ठ 26

भारतीय बाजार का विदेशी और खासकर ब्रिटिश उद्योगों द्वारा शोषण है और साथ ही अपने उद्योगो का आधुनिकीकरण न कर सकने के फलस्वरूप विदेशी मुकाबले का सामना न कर सकने की उनकी असमर्थता भी है।[1]

सुभाष चन्द्र बोस का स्पष्ट मत था कि भारत की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए न केवल विश्व की आर्थिक स्थिति में सुधार आवश्यक है बल्कि भारत की औद्योगिक तकनीकी का आधुनिकीकरण भी आवश्यक है।[2]

"सुभाष चन्द्र बोस का स्पष्ट मत था कि ब्रिटिश सरकार की अल्प संख्यको को खुश करने की नीति सफल नही होगी क्योंकि मुसलमानों का भी एक बहुत बड़ा वर्ग राष्ट्रवादी है।[3]

उनका प्रभाव कम होने की सम्भावना नही है। अपितु बढ़ेगा ही। अल्पसंख्यकों में बहुसंख्यक कांग्रेस के समर्थक हैं। छुआछूत मिटाने का कांग्रेस का जो प्रचार चल रहा है, उससे और अधिक दलित वर्ग के लोग कांग्रेस के साथ आयेंगे, ऐसी सुभाष चन्द्र बोस को आशा थी। इसके अतिरिक्त उनका मत था कि भारत के ईसाई समाज में भी अब राष्ट्रीय चेतना जागृत हो रही है। धार्मिक क्षेत्र में उन्होंने उन यूरोप के ईसाइयों के प्रभुत्व का विरोध करना शुरू कर दिया है। वे अपने लिए राष्ट्रीय चर्च की मांग कर रहे हैं।[4]

---

1. वही, पृष्ठ 126
2. बोस सुभाष चन्द्र : इण्डियन स्ट्रगल, पृष्ठ 205
3. राष्ट्रवादी मुसलमान इन मुसलमानों को कहते हैं जो कांग्रेस के साथ थे और अंग्रेजों को भारत निकालने में विश्वास रखते थे।
4. उद्धृत, नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय, अध्याय भविष्य की कल्लकः पूर्वोक्त, पृष्ठ 20

"सुभाष चन्द्र बोस जब सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में अलीपुर जेल में थे उनके साथ तो अनेक ईसाई युवक थे, जो सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेकर जेल गये थे एंग्लोइण्डियन को पहले ब्रिटिश सरकार बहुत सी सुविधायें देती थी, परन्तु अब 1935 के अधिनियम में उन्हें भारतीय मान लिया गया था । अतः उनके नेता लै0 कर्नल सर एच. गिडनी ने यह अपील की कि एंग्लोइण्डियन भारत को अपना घर समझें और भारत पर गर्व करें, उन्हे अंग्रेजो की चापलूसी छोड़ देनी चाहिये और भारतवासियो के साथ अपनी किस्मत को जोड़ लेना चाहिए।

"व्यापार में भारतीयों की स्थिति बदल रही है, अब व्यापार भारतीयों के हाथ मे आता जा रहा है। 1932 में बम्बई में भी अंग्रेजी फर्मों ने वायकाट से बचने के लिए राष्ट्रवादी आन्दोलन से सहानुभूति प्रस्ताव प्राप्त किया था।[2]

2. कार्यशैली

1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ। इसके सम्बन्ध में सुभाष चन्द्र बोस का मत था" सोशलिस्ट पार्टी ने जो रूप इस समय धारण किया है, उससे वह अधिक आगे नही वढ़ सकती ,क्योकि इस पार्टी में एक मेल के लोग नहीं है, और इसके कुछ विचार पुराने पड़ चुके है

---

1. वही, पृष्ठ 202

लेकिन जिस प्रेरणा से यह पार्टी बनी है वह ठीक है। सुभाष चन्द्र बोस का विचार था कि इस वामपंथी विद्रोह के कारण अव तो वामपंथी स्पष्ट कार्यक्रम योजना और विचारधारा वाली एक पूर्णतः नई पार्टी का उदय होगा।[1]

''उस समय भारतीय राजनीति के सामने एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न था कि साम्यवाद का भविष्य क्या है? यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण बन गया था, क्योंकि पंडित जवाहर लाल नेहरू जो उस समय ख्याति की दृष्टि से महात्मा गाँधी के बाद दूसरे नम्बर पर थे, साम्यवाद की खुली वकालत करने के पक्षधर थे। जवाहरलाल नेहरू ने एक प्रेस वक्तव्य में कहा था ''मेरा पक्का विश्वास है कि आज की दुनिया को मूलतः साम्यवाद अथवा फासिस्टवाद में से एक को चुनना होगा और मैं पूरे– पूरे दिल से पहले यानि साम्यवाद के पक्ष में हूँ।

मैं फासिस्टवाद से वेहद घृणा करता हूँ और वास्तव में समझता हूँ कि वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा किसी भी कीमत पर अपना आधिपत्य कायम रखने के लिए एक निहायत भौंड़े और वहिसयाना तरीके के सिवा कुछ भी नही है। फासिस्टवाद और साम्यवाद के बीच कोई रास्ता नही है। हमें दोनो में से एक को चुनना होगा और मैं साम्यवाद के आदर्श को चुनूँगा। इस आदर्श की प्राप्ति के लिए दकियानूसी कम्यूनिस्टों ने जो तरीका और रास्ता चुना, में उसकी हर बातों से सहमत नही हूँ। मेरे विचार में,

---

1. पूर्वोक्त।

इन तौर तरीकों को बदली हुई स्थितियों के अनुसार बदलना होगा और वे अलग– अलग देशों में अलग–अलग होगें लेकिन मैं साम्यवाद के मूल सिद्धान्तों और इसकी व्याख्या को सही मानता हूँ।[1]

"सुभाष चन्द्र बोस, नेहरू के इन विचारों से सहमत नहीं थे। उनका विचार था कि जब तक हम विकास की प्रक्रिया के अन्तिम छोर पर नही पहुँच गये हों या विकास के सिद्धान्त को न नकारते हों तब तक यह मानने का कोई कारण नहीं है कि हमें केवल इन्हीं दो रास्तों में से एक को चुनना है। चाहे हम हीगेल के विकास सिद्धान्त को माने या वर्गसिन के या विकास के अन्य सिद्धान्त को मानें , हमें यह नही सोचना चाहिये कि सृजन का अन्त आ गया है। हर बात का विचार करने के बाद हमें यही सोचने पर मजबूर होना पड़ेगा कि विश्व इतिहास के अगले चरण में साम्यवाद और फासिस्टवाद का कोई समन्वित सच सामने आयेगा और क्या यह आश्चर्य की बात होगी कि यह समन्वय भारत ही प्रस्तुत करे? इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं होगी कि कोई ऐसा प्रयोग जो सारे विश्व के लिए महत्व रखता हो, भारत में किया जाये, खास तौर से जब हम अपनी आंखों से देख चुके हैं। भारत में किये गये अन्य प्रयोग के प्रति जिसे महात्मा गाँधी ने किया, अंहिसात्मक राजनीतिक के प्रति सारे विश्व में जबरदस्त दिलचस्पी उत्पन्न हो गयी है।[2]

---

1. नेहरू आन सोशलिस्ट, पाल मेक्टिव पक्ति देहली, 1972, पृष्ठ 49

2. नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय, पृष्ठ 204

"सुभाष चन्द्र बोस का स्पष्ट मत था कि साम्यवाद और फासिस्टवाद में अनेक समान विषेशतायें है। साम्यवाद और फासिस्टवाद दोनों ही राज्य को व्यक्ति से ऊपर और ऊँचा मानते हैं। दोनो ही संसदीय प्रजातन्त्र के विरोधी है। दोनो ही एक दल या पार्टी की डिक्टेटरशिप मे विश्वास रखते हैं। दोनो भिन्न भिन्न मत रखने वाले अल्पसंख्यकों के दमन में विश्वास रखते हैं। दोनों ही देश के योजनावद्ध औद्योगिक पुनर्गठन के पक्षधर हैं। दोनो में जो समान तत्व है, वे ही नये समन्वय का आधार बनेंगे। बोस इसी समन्वय को साम्यवाद मानते हैं। उनका मत था कि इस प्रकार का समन्वय प्रस्तुत करने का जिम्मा भारत का होगा।[1]

"उनका मत था कि भारत में निम्नलिखित आधारों में साम्यवाद लोकप्रिय नही होगा। इस सम्बन्ध में पहली बात यह है कि साम्यवाद में राष्ट्रवाद के प्रति कोई सहानुभूति नही है। भारत की मुक्ति का वर्तमान आन्दोलन है अर्थात राष्ट्रवादी जनता की मुक्ति का आन्दोलन है। कम्युनिस्ट और राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में लेनिन का सिद्धान्त चीन की क्रांन्ति की असफलता के बाद से त्याग दिया गया था।

"उस समय रूस अपने बचाव करने की नीति पर चल रहा था और उसकी विश्व क्रांन्ति मे अब कोई रूचि नही थी भले ही 1935–36 में पूंजीवादी देशों के साथ समझौते किये गये थे और इस तरह के समझौतों

---

1. पूर्वोक्त ।

में जिस तरह की लिखित या अलिखित शर्तें होती थीं, उसके चलते रूस की एक क्रांन्तिकारी शक्ति के रूस में जो छवि थी, वह काफी मन्द पड़ गयी थी। तत्कालीन रूस अपने आंतरिक औद्योगिक पुनर्गठन में लगा हुआ था और अपनी पूर्वी सीमा पर जापानी खतरे का सामना करने की समस्या मे उलझा हुआ था। वह बड़ी शक्तियों से अच्छे दोस्ताना सम्बन्ध बनाने के लिए भी बहुत चिन्तित था। सुभाष चन्द्र बोस का मत था कि उपरोक्त कारणो से रूस भारत जैसे देशों के बारे में सक्रिय रूचि नही ले सकता था। सुभाष चन्द्र बोस का मत था कि कम्युनिज्म में ऐसे बहुत से विचार हैं जो भारतीयो को पसन्द नही आ सकते, क्योंकि वे इन पर विपरीत प्रभाव डालेंगे। जारकालीन रूस का इतिहास ऐसा रहा है जिसमे चर्च एक सुसंगठित संस्था थी। इस कारण रूस में कम्युनिस्टों का विकास धर्म विरोधी और नास्तिकवादी रूप में हुआ। इसके विपरीत भारत में भारतीयों की कोई संगठित धार्मिक संस्था नही रही, न राज्य सत्ता व धर्म से किसी प्रकार का सम्बन्ध रहा, इस कारण यहां धर्म के प्रति ऐसी कोई विरोधी भावना नही रही है।[1]

इसके अतिरिक्त सुभाष चन्द्र बोस का मत था कि इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या जो कम्युनिज्म का दिशा बिन्दु है, भारत में वे लोग भी सम्पूर्ण रूप से ग्रहण नही करेंगे , जो इसके आर्थिक सिद्धान्त को मानने को तैयार होंगे।

---

1. सुभाषचन्द्र बोस ने साम्यवाद के सम्बन्ध में यह टिप्पणी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक इण्डियन स्ट्रगल के खण्ड – 2 में लिखी है।

"सुभाष चन्द्र बोस का मत था कि यद्यपि आर्थिक दृष्टि से योजना या नियोजित अर्थव्यवस्था साम्यवाद की बहुत भारी देन है, किन्तु यह अन्य कई दृष्टियों से काफी कमजोर है। उनके मतानुसार जहाँ तक मैट्रिक समस्या का सम्बन्ध है, इसने कोई नया विचार नही दिया है और पुराने परम्परागत अर्थशास्त्र का सहारा लिया है। सुभाष चन्द्र बोस ने उस समय लिखा था कि "यह भविष्यवाणी विश्वासपूर्वक की जा सकती है कि भारत सोवियत रूस का नया संस्करण कभी नहीं बनेगा।'[1]

"1935 में कांग्रेस के अध्यक्ष डा0 राजेन्द्र प्रसाद चुने गये थे। वे कट्टर गाँधीवादी थे। इसी वर्ष ब्रिटिश शासन ने भारतीय शासन अधिनियम का क्रियान्वितीकरण दो साल बाद 1937 में चुनाव हो जाने के बाद किया। इस एक्ट के द्वारा भारत को स्वशासन देने के बजाय राजाओं, नवाबों जातिवादी संगठनो और प्रतिक्रियावादों और अंग्रेजों के समर्थक संगठनों की मदद से भारत में अंग्रेजी राज्य को कायम रखने की योजना थी।

"इस अधिनियम का मूल्यांकन करते हुए सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा है कि "1935 के भारतीय शासन अधिनियम के दो हिस्से थे। संघीय और प्रान्तीय। प्रस्तावित संघ फेडरेशन एक प्रकार से इस अर्थ में नई चीज थी कि इसमें एक अखिल भारतीय केन्द्रीय सरकार की व्यवस्था की गयी थी जो ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों को एक करने वाली थी। इसमे

---

1. उदघृत नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय, पृष्ठ 205

भी प्रतिनिधित्व समिति थी। रक्षा और विदेश नीति वायसराय के लिए सुरक्षित रखे गये थे।

इसी प्रकार वित्त नीति नौकरशाही पर नियन्त्रण और पुलिस की विधान मण्डल के अधिकार क्षेत्र से बाहर के विषय थे। संविधान का प्रान्तों से सम्बन्ध रखने वाला भाग कुछ कम संकीर्ण था। यह भाग ब्रिटिश भारत के केवल 11 प्रान्तों के लिए ही था। प्रान्तीय विधान मण्डलों में केवल निर्वाचित प्रतिनिधि ही थे। यद्यपि उच्च सदनों के अधिकार सीमित थे केवल गुप्तचर व्यवस्था गवर्नर के अधीन थी। इस प्रकार प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारें बनने की कुछ सीमित सम्भावनायें थी।"[1]

1935–36 में कोई सनसनीखेज घटना नहीं घटी। कांग्रेस का संसदीय पक्ष अपना काम करता रहा और धीरे–धीरे उसका प्रभाव भी बढ़ने लगा। दूसरी तरफ कांग्रेस समाजवादी पार्टी युवा पीढ़ी को और साथ ही साथ कांग्रेस के भीतर की और सामान्य जनता के अग्रगामी तत्वों को भी प्रभावित करने लगी थी। उस समय सत्याग्रह या सविनय अवज्ञा आन्दोलन और क्रान्तिकारी आतंकवाद ने भी अपना आकर्षण खो दिया था और जो रिक्तता पैदा हुई थी उसके कारण कांग्रेस समाजवादी पार्टी का आगे बढ़ना स्वाभाविक था।

"यूरोप प्रवास के दौरान ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर लगातार

---

1. नेताजी सम्पूर्ण वाड्मय, संग्रह–2, पृष्ठ 212–13

सुभाष चन्द्र बोस का पीछा करते रहे कि वे विभिन्न देशों की सरकार से सम्पर्क न कर पायें। वे फासिस्ट देशों में सुभाष को कम्युनिस्ट बताते थे। जबकि कम्यूनिष्ट देशों में उन्हें फासिस्ट बताते थे। इन सब बाधाओं के बाबजूद सुभाष चन्द्र बोस ने यूरोपीय देशों में भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के पक्ष में उपयोगी प्रचार किया और सहानुभूति अर्जित की। उन्होंने कई देशों में भारत के प्रति दिलचस्पी पैदा की और साथ ही भारत से सम्पर्क स्थापित करने , सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से कई संगठन भी स्थापित किये।[1]

अप्रैल 1936 में सुभाष चन्द्र बोस लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन मे भाग लेने के लिए भारत आये तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद उन्हें मार्च 1936–37 में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी को अंग्रेजो ने गैर कानूनी घोषित कर दिया था। इसलिए कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने सदस्यों से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में घुसकर काम करने के लिए निर्देश दिया था। उस समय कम्युनिस्ट पार्टी को मिल मजदूरों तथा विधार्थियो में अपना प्रभाव बढ़ाने में कुछ सफलता मिली।[2]

सुभाष चन्द्र बोस का मत है कि उस समय कांग्रेस साम्यवादी पार्टी को 1920 से चले आ रहे गाँधीवादी नेतृत्व के एकाधिकार को हटाकर

---

1. भारत लीग ऑफ नेशन्स का भी प्रारम्भिक सदस्य था। पांच लीग ऑफ नेशन्स में भारत ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों का प्रतिनिधित्व करता था।

2. वर्मा, वी0पी0 आधुनिक भारतीय राजनीति चिन्तन, पृष्ठ 436

नेतृत्व संभालने का ऐतिहासिक अवसर मिला था। यह बात सरल हो जाती यदि पंडित जवाहर लाल नेहरू कांग्रेस समाजवादी दल का नेतृत्व सम्भाल लेतें। लेकिन उन्होंने ऐसा नही किया।[1]

उसकी अन्तिम यात्रा आयरलैण्ड की थी, जहां वे वहां के तत्कालीन राष्ट्रपति डी. वेलेरा से मिले। जेनेवा में उन्होने भारत विषयक अन्तर्राष्ट्रीय समिति के साथ मिलकर कार्य किया। इस समिति का प्रधान कार्यालय जेनेवा में था। वहां भारत के विषय में एक मासिक बुलेटिन अंग्रेजी, फ्रेन्च जर्मन इन तीन भाषाओं में प्रकाशित होती थी और विश्वभर मे भारत में रूचि रखने वाले लोगों को भेजी जाती थी। जेनेवा में सुभाष चन्द्र बोस इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लोग आवनेसन्स की मशीनरी पर ब्रिटेन और फ्रान्स का पूरा कब्जा है, और भले ही भारत लीग का प्रारम्भिक सदस्य हो परन्तु इस सस्था का भारत की आजादी के लिए इस्तेमाल करना असम्भव है। सुभाष चन्द्र बोस ने यह आन्दोलन शुरू किया कि भारत ''लीग आफ नेशन्स'' का सदस्य बनकर अपना धन बेकार खर्च कर रहा है। और उसे जल्दी से जल्दी इस संस्था से त्याग पत्र दे देना चाहिये। इस आन्दोलन ने भारत की जनता का काफी समर्थन किया।

1936 में नेहरू को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया और उन्होने अप्रैल 1936 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन का सभापतित्व

---

1. बोस सुभाषचन्द्र : इंडियन स्ट्रगल 1937– 1943, पृष्ठ 85

किया। साल के अन्त में फिर कांग्रेस अध्यक्ष चुने गये और 1937 के कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने फिर कांग्रेस का सभापतित्व किया। इस दो वर्ष के कार्यकाल में नेहरू ने गांधीवादियों और समाजवादी दोनों में सामंजस्य बनाये रखा।[1]

इस 1933 से 1936 –37 के काल में सुभाष चन्द्र बोस यूरोप में थे उन्होंने इस काल का उपयोग रूस को छोड़कर सारे विश्व भ्रमण करने में किया और वर्साय की संधि के बाद यूरोप की स्थिति का भली प्रकार अध्ययन किया। इटली और जर्मनी भी गये तथा वहां उन्होंने मुसोलिनी से मुलाकात भी की । उन्होंने लीग ऑफ नेशन्स का अध्ययन किया उन्होंने यूरोप के बहुत सें देशों में 1937 में कलकत्ता के एक अस्पताल में नजरबन्दी से छोड़ा गया। तब तक चुनाव खत्म हो चुके थे। दिसम्बर 1937 में वे फिर अपने प्रिय स्वास्थ्यवर्धन स्थान मारत्तीन (आस्ट्रिया) चले गये और वहां से इग्लैण्ड गये। जनवरी 1938 में सुभाष चन्द्र बोस को पता लगा कि वे सर्वसम्मति से कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिए गये।[2]

सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में उनका व्यक्तित्व एक आदर्श के रूप में माना जाता है। वह जीवन में विभिन्न पदों पर आसीन रहे तथा कांग्रेस के अध्यक्ष पद को प्राप्त करके उन्होंने उच्चकोटि की ख्याति

---

1. इतिहास खण्ड – पृष्ठ 132

2. पूर्वोक्त, पृष्ठ 216

अर्जित की जो उनके जीवन के लिये बड़ी उपयोगी थी। सुभाष चन्द्र बोस एवं रास बिहारी बोस ने भारतीय स्वतंत्रा संग्राम के लिये सुधारात्मक निर्णय लिये। कांग्रेस अध्यक्ष चुने जाने के बाद सुभाष चन्द्र बोस ने इग्लैण्ड में ब्रिटिश मन्त्री मण्डल के कई सदस्यों से भेंट की। इनमें लार्ड हेली फेंक्स और लार्ड वैटलेण्ड का उल्लेख उन्होंने "इण्डियन स्ट्रगल" में किया है। उन्होने वहां लेवर पार्टी और लिवरल पार्टी के कई ऐसे सदस्यों से भी भेंट की जो भारत के प्रति सहानुभूति रखते थे। ये लोग थे एटली, आर्थर ग्रीनबुड श्री वेकिन, सर स्टेफर्ड क्रिपस, श्री हेरेल्ड लास्को, लार्ड ऐलेन।[1]

फरवरी 1938 में कांग्रेस का 51वां अधिवेशन हरिपुरा (गुजरात) में हुआ। इस महान अधिवेशन के लिए जिसके अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस को चुना गया था। ताप्ती नदी के किनारे विट्ठल नगर बसाया गया था। सम्पूर्ण नगर बिजली से जगमगा रहा था। इस अधिवेशन के माध्यम से सुभाष का पुनः राजनीतिक अभिषेक हुआ था। अधिवेशन का अध्यक्ष सुभाष को बनाया गया। इस अवसर पर विशाल जुलूस सुभाष बाबू को लेकर निकाला गया। वे 51 बैलों से खींचें जाने वाले रथ पर विराजमान थे। इतने में ही गाँधी जी दूसरी ओर मोटर में आयें। गाँधीजी उतरे तो सुभाष बाबू ने अपनी बांह का सहारा देकर उनको मंच तक पहुंचाया।[2]

---

1. वही पृ0 218 (इन सबसे भेंट का वर्णन सुभाष चन्द्र बोस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक इंडियन स्ट्रगल में किया है। यह नेता जी सम्पूर्ण वाड्.मय, खण्ड–2 के पृष्ठ 216 पर उद्धृत है।

2. अग्रवाल गिरिराज शरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ 81

सारा मण्डल अभिनन्दन ध्वनि से गूंज उठा। हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में सुभाष बाबू का भाषण बड़ा ओजस्वी और "राष्ट्रीय ओज से पूर्ण था। उन्होंने कहा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के विषय में हमारी प्रमुख समस्या होगी, देश में गरीबी दूर करने की। देश में गरीबी दूर करने के लिये यह आवश्यक होगा कि वर्तमान भूमि व्यवस्था में बुनियानी परिवर्तन किये जायें। निःसन्देह जमीदारी प्रथा का नाश करना भी इसमें शामिल है। किसानों के सारे कर्ज समाप्त कर देने होंगे और देहाती भाइयों को सस्ती दर पर ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था करानी होगी। वैज्ञानिक तरीकों से खेती करवानी होगी, जिससे पैदावार बढ़े।[1]

उन्होंने अपने इस भाषण के माध्यम से देश में विधान सभाओं की आवश्यकता पर वल देते हुये कहा अपनी संस्था के अन्दर अनुशासन रखने के लिए हम लोगों का उद्देश्य एक ऐसी समस्या पर विचार करना है जिसे लेकर विवाद हो चुका है। मेरा मतलब ट्रेड यूनियन कांग्रेस से उनके सम्बन्ध को लेकर है। इस प्रश्न पर दो परस्पर विरोधी विचारधारा हैं एक दृष्टिकोंण कांग्रेस से अलग अन्य सभी सभाओं को घातक समझता है और दूसरा स्वतन्त्र सभाओं का समर्थन करता है। मेरा विचार है कि हम उन संस्थाओं का समर्थन करते हैं। मेरा विचार है कि हम उन सस्थाओं

---

1. सुबोध सुभाष चन्द्र, यू कांग्रेस आई प्रकाशन किताविश्व, इलाहाबाद, (पुस्तक पर प्रकाशन वर्ष नहीं दिया गया है।, पृष्ठ 5–6

की निन्दा तथा उपेक्षा करके उन्हें तोड़ नही सकते उनका अस्तित्व प्रत्यक्ष है। उनकी सत्ता कायम हो गयी है और उनके खत्म होंने का कोई चिन्ह नही दिखाई पड़ता। इससे स्पष्ट है कि उनके पीछे कोई ऐतिहासिक शक्ति है। ऐसी संस्था अन्य देशों में पाई जाती है। हम चाहें या न चाहें उनका अस्तित्व हमें मानना ही पड़ेगा। अब प्रश्न इस बात का है कि कांग्रेस उनसे किस प्रकार का व्यवहार करे साफ बात यह है कि हमें देखना है कि ऐसी संस्थाये राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में चलने वाले भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की विरोधी न बनें।

इसीलिए इन संस्थाओं को कांग्रेस के आदर्शो तथा तरीकों से प्रभावित कर और मिलकर चलना चाहिए। उसके लिए कांग्रेस कार्यकर्ताओं को अधिक से अधिक संख्या में किसान और मजदूर सभाओं मे भाग लेना चाहिये मजदूर सभाओं में काम का जो मेरा अनुभव है, उससे में कह सकता हूँ कि अपने को किसी भी झगड़े या विरोध में डाले बिना यह किया जा सकता है। कांग्रेस तथा इन दोनो संस्थाओं का सहयोग बड़ा सरल हो जायेगा। यदि वे मजदूरों और किसानों की आर्थिक मांगो से ही विशेष रूप से सम्बन्ध रखें और कांग्रेस को इन सब लोगों की शक्तिशाली संस्था समझे. ...जो देश की स्वतन्त्रता की वेड़ियों को काटना चाहते हैं।

''सुभाष बाबू ने आगे कहा, ''मित्रो आप इस चिन्ताजनक परिस्थितियों का मुकावला कर रहे हैं। कांग्रेस के भीतर दक्षिण और बामपंथी पक्षों में बहुत से मतभेद एवं द्वन्द्व हैं, जिसकी उपेक्षा करना ठीक नही आज

ब्रिटिश साम्राज्य बाद हमें चुनौती दे रहा है। ऐसी विपत्ति मे हमारा कर्तव्य हो गया है। .... यह कहने की आवश्यकता नहीं । हमें दृढ़ता के साथ आगे बढ़कर इस तूफान का सामना करना चाहिए और अपने निर्दयी शासकों की गलत नीतियों को मिलकर असफल बनाना चाहिए। स्वतन्त्रता युद्ध के लिए आज कांग्रेंस ही सर्वाधिक उपयुक्त अस्त्र है। इसमें उग्रपंथी हो सकते है और अहिंसावादी भी परन्तु दोनो को कांग्रेस की छत्रछाया में खड़े करके साम्राज्य विरोधी शक्तिओं का संगठन करना चाहिए।

"अन्त में यह कहकर अपने वाक्यों को वाणी दूंगा कि गाँधी दीर्घ जीवी हों और हमारा देश बहुत दिनों तक उनके नेतृत्व में आगे बढ़ता रहे. .... यही समस्त भारत की हार्दिक कामना है......... भारत महात्मा गाँधी को खोना नही चाहता, विशेषकर ऐसे समय में जबकि पूरे भारतवर्ष मे एकता स्थापित करने की आवश्यकता है। हम अपने स्वतन्त्रता युद्ध को घृणा और कटुता से बचाये रखना चाहते है। हमें मानवता के लिए उनकी आवश्यकता है। हमारा युद्ध केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नहीं है बल्कि पूरे विश्व साम्राज्यवाद से है। अतः हम भारत के लिये लड़ रहे हैं। भारत की स्वतंत्रता का अर्थ है समस्त मानव जाति का भयमुक्त हो जाना।

"इस समय भारत में मजदूर संगठन और किसान सभायें काफी प्रभावशाली हो गयी थी। कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेताओं की सहानुभूति भारतीय पूंजीपतियों के साथ थी, इसलिए जिन प्रान्तों में कांग्रेस सरकारें बनीं थीं वहां दक्षिणपंथी कांग्रेसी चाहते थे कि मजदूर संगठन तथा किसान सभायें

अपने आपको आर्थिक प्रान्तो तक सीमित रखे हमारा युद्ध केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नही है, वस वह विश्व – साम्राज्यवाद से है। अतः हम भारत के लिए ही नही वरन मानव–मात्र के लिए लड़ रहे हैं। भारत की स्वतंत्रता का अर्थ है समस्त मानव–जाति का भय से मुक्त हो जाना।[1]

"हरिपुरा अधिवेशन के पश्चात सुभाष ने कुशलतापूर्वक और पूर्ण मनोयोग, मनोबल एवं आत्म साहस से स्वतन्त्रता संग्राम का संगठन किया।

3. मतभेद

"संघ योजना को लेकर भी सुभाष चन्द्र बोस का गाँधी जी के समक्ष मतभेद था। गाँधीवादी संघ योजना को स्वीकार करने के लिए इस समय ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता करना चाहते थे, परन्तु सुभाष चन्द्र साम्राज्यवादियों के खिलाफ संग्राम करना चाहते थे। इसलिए उनके साथ गाँधीवादियो का विरोध वढ़ गया। उन्होंने अपनी पुस्तक " भारतीय संघर्ष" में लिखा है कि "कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से लेखक (सुभाष) ने ब्रिटेन के साथ किसी भी समझौते के प्रति कांग्रेस पार्टी के विरोध को कठोर बनाने का प्रयत्न किया। इससे गांधीवादी क्षेत्रो में जो उस वक्त ब्रिटिश सरकार के साथ किसी समझौते की आशा कर रहे थे, खीज पैदा हो गयी थी। सितम्बर 1938 के म्युनिख पेक्ट के बाद (सुभाष चन्द्र बोस) ने राष्ट्रीय संघर्ष

---

1. बोस सुभाषचन्द्र, यू कांग्रेस आईज, पृष्ठ 7

के लिए जो यूरोपीय युद्ध के साथ चलना चाहिए भारतीय जनता को तैयार करने की गरज से भारत में खुला प्रचार करना शुरू किया। यह कदम य़द्यपि जनता में बहुत लोकप्रिय हुआ लेकिन गाँधीवादियों ने जो अपने मंत्रित्व और संसदीय काल में किसी प्रकार का दखल पसन्द नहीं करते थे जो उस समय किसी भी राष्ट्रीय संघर्ष के विरोधी थे, उस पर नाराजगी भी जाहिर की।

हरिपुरा अधिवेशन के पश्चात् सुभाष के जीवन में ही नही वरन् भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में भी एक विशिष्ट क्षण दृष्टिगोचर हुआ।

कांग्रेस के अध्यक्ष पद से की गयी उनकी सेवाओं में एक अधिवेशन में एक विशेष सेवा की देश में जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना कमेटी का निर्माण जिनके संयोजक वह स्वयं बने थे। दक्षिणपंथी सुभाष चन्द्र बोस को अपने मार्ग में एक बहुत बड़ा कांटा समझने लगे थे।

19.02.1938

स्वतंत्रत भारत में लम्बी अवधि के कार्यक्रमों के सम्बन्ध में प्रथम समस्या जिससे मुकाबला करना है, हमारी बढ़ती हुई जनसंख्या है।

राष्ट्रीय एकता के विकास हेतु हमें एक समान भाषा, समान विचारधारा और समान लिपि विकसित करनी होगी और राष्ट्र के जनमानस को समता की दृष्टि से देखना पड़ेगा।

अंग्रेजों के विरुद्ध अपने असहयोग को सफल बनाने के लिये भारतीयों में एक दूसरे के प्रति पूर्ण सहयोग की भावना होनी चाहिये।

हमारा यह कर्तव्य है कि हम अंग्रेजों को खोखला कर दें। उन्हें सबक सिखाने की दो राहे हैं– एक राह है आतंकवाद से उन्हें झुकाने की और दूसरी राह है शांति से उन्हें अन्दर ही अन्दर से खोखला कर देने की। पहली राह भारत के लिये अनुपयोगी है, इसलिये हमें दूसरी राह अपनानी चाहिये।

जब तक मैं उस जेल (मण्डले) के अन्दर नहीं आ गया तब तक मैं यह अनुभव नहीं कर सका कि इसी जेल की चारदीवारी के अन्दर इसके मनहूस वातावरण के मध्य लोकमान्य तिलक ने गीता का भास्य किया था। मेरा विनम्र मत है कि इस अमर ग्रंथ ने लोकमान्य तिलक को भी श्री शंकराचार्य और स्वामी रामानुज जैसी महान प्रतिभाओं के समकक्ष बैठा दिया है।

आज भारत की रक्षा ब्रिटिश सेना नहीं, भारतीय सेना कर रही है। यदि भारत की सेनायें भारत के बाहर इंग्लैण्ड के लिये, तिब्बत, चीन, मैसोपोटामिया, फारस, मिस्त्र और लेण्डर्स में युद्ध कर सकती हैं तब वे विदेशी आक्रमण से अपनी भूमि की रक्षा क्यों नहीं कर सकतीं।

अन्याय करने से अन्याय सहन करना भी बड़ा पाप है। मेरी देश की भीड़ मेरी शत्रु नहीं है।

स्वतंत्रता और आत्मोन्नति में अभिन्न और अत्यन्त निकट के सम्बन्ध

हैं। स्वतंत्रता के बिना आत्मोन्नति सम्भव नहीं है। स्वतंत्रता का मूल इसी में है कि वह आत्मोन्नति का पथप्रदर्शन करती है।

हम अपना समस्त जीवन अपने लिए और मानवता के लिये एक नये संसार में परिवर्तित करना चाहते हैं। इसे प्राप्त करने के लिए हमारे भीतर जो अच्छाईयां हैं पहले उन्हें जगाना होगा। स्वतंत्रता के जादू का स्पर्श है हमारी क्षमताओं को जाग्रत कर हमें अबाध कर्मठता एवं शक्ति की प्रेरणा दे सकता है।

कांग्रेस का अग्रगामी अधिवेशन त्रिपुरी में होना निश्चित था। नये राष्ट्रपति के चुनाव के लिए तैयारियाँ होने लगीं। उग्रवादियों ने इस बार भी राष्ट्रपति पद के लिए सुभाष बाबू का नाम घोषित किया। गाँधीजी का आशीर्वाद पाकर पट्टाभि सीता रम्मैया खड़े हुये।

"एक अभूतपूर्व संघर्ष प्रारम्भ हो गया। दोनों ओर से चुनाव आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। सुभाष वाबू के विपक्ष में वड़ी–बड़ी शक्तियाँ कार्य कर रही थीं। सुभाष चन्द्र बोस के साथ वामपंथी शक्तियाँ थीं। यही वह पृष्ठभूमि थी जिससे गाँधीवादी दक्षिणपंथी सीतारमैया और वामपंथी उम्मीदवार सुभाष चन्द्र बोस के बीच त्रिपुरी में संघर्ष हुआ।

इस बार पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने भी सुभाष बाबू के विरोध में कार्य किया। समग्र देश भयपूर्ण दृष्टि से अपने नेताओं का चुनाव संग्राम देख रहा था। सबके मन आशंकित थे कि क्या इस तरह सुभाष चुनाव जीत जायेंगे? सुभाष को 1575 वोट प्राप्त हुये और सुभाष चन्द्र बोस

विजयी हुए। सुभाष चन्द्र बोस की इस जीत से दक्षिणपंथी नेताओं के शिविर में हलचल मच गयी।[1]

"29 जनवरी, 1939 को सुभाष बाबू की विजय से महात्मा गाँधी जैसे आदर्श व्यक्ति भी विक्षिप्त हो उठे , उन्होंने अभी आन्तरिक व्यथा प्रकट करते हुये कहाः" डा0 पट्टाभि सीतारम्मैया की हार मेरी हार है।[2]

इस अवसर पर आरोप लगाते हुए गाँधीजी ने कहा था कि कांग्रेस ने एक भ्रष्ट रूप धारण कर लिया है, उसके सदस्य बोगस हैं। उन्होंने खुली धमकी दी थी कि यदि दक्षिणपंथियों के मन की नही हुई तो वे कांग्रेस से अलग हो सकते हैं।[3]

"10 मार्च 1939 को प्रातः काल अध्यक्ष का शानदार जुलूस निकाला गया। सुभाष बाबू अत्यधिक अस्वस्थ थें, इसलिए वह जुलूस मे सम्मिलित न हो सके। उनके स्थान पर उनका चित्र रथ पर रखा हुआ था जिसे 51 हाथी खींच रहे थे। मिषनहरिया की मडिया (विशुण दषनगर से 9 कि.मी.दूर) से जुलूस रवाना हुआ। हाथी के होदे पर तिरंगा फहरा रहा था। कांग्रेस के 51 के चित्र 51 हाथियों पर रखे हुये थे। जुलूस विष्णु दशनगर के झण्डा चौक मे जाकर समाप्त हुआ।[4]

---

1. अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 645

1. पट्टाभि सीता रमैया : द हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1947, पृष्ठ 106

2. रजनी ममा दतः इंडिया टुडे, पृष्ठ 410

3. अग्रवाल गिरिराज शरण : पूर्वोद्धत

सुभाष अस्वस्थ्य थे उन्होने अध्यक्ष पद से भाषण देते हुये कहा–

: "मैं राष्ट्र से इस बात की अपील करता हूँ। कि वह आपसी झगड़ो का अन्त कर दें, अपने सारे साधनों को संचित करके राष्ट्रीय आन्दोलन मे अपनी पूरी शक्ति लगाये और इस समय जो अनुकूल अवसर सामने आया हुआ है उसका पूरा पूरा लाभ उठाए।"[1]

सुभाष बाबू ने राजकोट के समझौते और गाँधी जी के अनशन की समाप्ति के सम्बन्ध में भी चर्चा की। उन्होंने अध्यक्ष पद के चुनाव और इसके बाद प्रथम श्रेणी के नेताओं द्वारा त्याग पत्र देने का उल्लेख करते हुये कहा–

"अध्यक्ष का चुनाव ढीला ढाला नहीं था, चुनाव में अनेक उत्तेजक घटनाएं हुयीं और कार्यसमिति के 15 सदस्यों में से सरदार पटेल, मौलाना आजाद राजेन्द्र प्रसाद आदि 12 सदस्यों ने त्याग पत्र दे दिया। कार्य समिति के एक प्रमुख और प्रभावशाली सदस्य पं. जवाहर लाल नेहरू ने यद्यपि त्याग पत्र नही दिया लेकिन उन्होंने इस प्रकार का एक वक्तव्य प्रसारित किया, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को यह विश्वास हो जाता था कि उन्होंने त्याग पत्र दे दिया।[2]

---

1. पट्टाभि सीता रमैया, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 108–109

2. मजूमदार, आर.सी. हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडमूवमेन्य इन इंडिया, खण्ड 3 फर्म के.एल. मुखोपाध्याय कलकत्ता 1963, पृष्ठ 588–92

वास्तव मे कांग्रेस बर्किंग कमेटी के 15 सदस्यों में से 12 सदस्य दक्षिणपंथी थे। उन्होंने त्याग पत्र दे दिया और सुभाष के साथ सहयोग करने से इन्कार कर दिया। बाद में नेहरू जी ने भी त्याग पत्र दे दिया था। यद्यपि कारण भिन्न बताया था।

घरेलू राजनीति की चर्चा करते हुये सुभाष बाबू ने कहा– इधर कुछ समय में मैं जो अनुभव करता हूँ उसे स्पष्ट करना आवश्यक समझता हूँ। स्वराज्य का प्रश्न उठाने का अब अवसर आ गया है। वह समय भी आ गया है , जबकि हमें ब्रिटिश सरकार के समक्ष अपनी राष्ट्रीय मांगों को धमकी के रूप में रखना चाहिये।

''मैं यह अनुभव करता हूँ कि अब समस्या इस बात की नही है कि संघ–शाखा की योजना कब हमारे गले के नीचे उतारी जायेगी , बस समस्या इस समय यह है कि यदि संघ– शासन की योजना ताक पर रख दी जाये तो हमें क्या करना चाहिये। हमें अपनी राष्ट्रीय मांगों की सरकार के समक्ष धमकी के रूप में रखना चाहिये और अन्तिम चुनौती की एक अवधि निश्चित कर देनी चाहिये । अवधि के समाप्त होते ही हमें ब्रिटिश सरकार से तुरन्त चुनौती का उत्तर मांगना चाहिये। जिनमें इतना अधिक निराशवाद है कि वे सोचते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के ऊपर आक्रमण करने का अभी समय नहीं है लेकिन वास्तविक दृष्टि से देखने पर मुझे निराशा का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। आठ प्रान्तों में कांग्रेस सरकार है, जिसके कारण हमारे राष्ट्रीय संगठन की शक्ति, मर्यादा और अनुशासन

बहुत बढ़ गया है। राष्ट्रीय आन्दोलन ने अच्छी सफलता प्राप्त की है।

राज्यों की जनता में भी हमें जागृति लानी है। यह काम बहुत आवश्यक है। स्वराज्य की ओर अग्रसारित होने का, अब हमारे राष्ट्रीय इतिहास में इससे अच्छा अवसर और क्या हो सकता है और विशेषकर ऐसी स्थिति में जबकि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति हमारे इतने अनुकूल है।[1]

एकता पर बल देते हुए सुभाष बाबू ने कहा यदि हम अपने मतभेदों को दूर कर अपने साधनों को जुटाकर राष्ट्रीय आन्दोलन में लग जाएं तो हम ब्रिटिश साम्राज्य के ऊपर ऐसा आक्रमण कर सकते हैं, जिसका मुकाबला करना उसके लिए असम्भव हो जायेगा। हमें वर्तमान स्थिति से अधिक से अधिक लाभ उठाकर राजनीति व दूरदर्शिता का परिचय देना चाहिये।[2]

अधिवेशन में सुभाष बाबू का कई नेताओं से मतभेद हो गया। सुभाष बाबू अंग्रेज सरकार से छः माह के भीतर स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे। समय समाप्त होने पर उन्होंने आन्दोलन छेड़ने की सलाह दी। लेकिन गाँधी जी का कहना था कि यह आन्दोलन के लिये उचित समय नहीं है।

दोनों महान नेताओं गांधी जी और सुभाष चन्द्र बोस में विरोध बढ़ता ही चला गया। इसके कारण कार्य समिति का कार्य भी जटिल हो

---

1. कांग्रेस का त्रिपुरी अधिवेशन 10–12 मार्च, 1039 को हुआ। भाषण सुभाष चन्द्र बोस ने दिया था

2. बोस सुभाष चन्द्र, यू कांग्रेस आईज, पृष्ठ 15 व 20

गया न कोई रचनात्मक कार्य हो पाता और न पार्टी का ही कोई कार्य सम्भव हो पाता था।

गाँधी जी कांगेस के चयनित सदस्य नहीं थे, फिर भी दक्षिणपंथियों ने यह प्रस्ताव पारित कराया कि सुभाष वही कार्यकारिणी मनोनीत करें जो गाँधी जी को पसन्द हो।

"सुभाष बाबू ने कार्य समिति के पुनर्गठन के लिए महात्मा गाँधी से अनुरोध किया, परन्तु उन्होंने सैद्धान्तिक मतभेद का बहाना बनाकर बात टाल दी। वस्तुतः यह सुभाष बोस को इस बात का अल्टीमेटम था कि तुम्हें दक्षिणपंथियों की कठपुतली बनकर रहना होगा अथवा अध्यक्ष पद छोड़ना होगा। यह प्रस्ताव सबजेक्ट कमेटी में 135 के विरुद्ध 218 वोट से पास हो गया। कितने ही वामपंथी राष्ट्रवादियों ने व कांग्रेस सोशलिस्टों ने इस समय ढुलमुलपन दिखाया था।

सुभाष बाबू कांगेस में बढ़ती हुयी फूट को देख रहे थे। वह नहीं चाहते थे कि उनके कारण इतने दिनों से चलता हुआ इतना विशाल संगठन धूल में मिल जाये।

सुभाष बाबू ने काफी विचार किया और 29 अप्रैल 1939 को कलकत्ता में हुयी कांग्रेस समिति की बैठक में अपना त्याग पत्र प्रस्तुत कर दिया। दक्षिणपंथियों ने तुरन्त डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को अध्यक्ष बना दिया। 16 मई 1939 को कलकत्ता के हजारी पार्क में एक विशाल सभा का आयोजन किया गया।

सुभाष बाबू ने इस सभा में (कांग्रेस) राष्ट्रीय पद से त्याग पत्र पर प्रकाश डाला। प्रारम्भ से अन्त तक की स्थितियों का विश्लेषण करते हुये उन्होंने कहा–

"राष्ट्रपति का मत चुनाव विभिन्न दृष्टियों से अप्रत्याशित था परन्तु उससे स्पष्ट होता था कि उस समय सामान्य जनता और कांग्रेस का मानस किस ओर था। मेरी जीत के साथ ही महात्मा गाँधी का वक्तव्य प्रसारित हुआ जिससे अनेक कांग्रेस जन जिनका विश्वास कांग्रेस महासमिति से अधिक गाँधी जी में था, प्रभावित हुये और उन्होंने मेरा समर्थन बन्द कर दिया। निःसन्देह एक बड़ी संख्या में कांग्रेस जन जो कि कांग्रेस महा समिति को नहीं चाहते थे, महात्मा गाँधी को छोड़ने को तैयार नहीं थे।

"जब मैं 5 फरवरी को वर्धा में गाँधी जी से मिला, उन्होंने मुझे पुराने सदस्यों के बिना ही कार्य समिति बनाने का सुझाव दिया। मैने उनसे काफी विचार विमर्श किया और एक मिली–जुली समिति बनाने का अनुरोध किया। अपनी बातचीत के अंत में मैने यह भी कहा कि मैं सरदार पटेल व अन्य सदस्यों को कार्य समिति में रहने के लिये मना लूंगा। महत्मा जी ने कहा कि यदि तुम ऐसा कर सकते तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।[1]

मेरी दुर्भाग्यपूर्ण बीमारी ने इसमें बाधा उत्पन्न कर दी और मैं 22 फरवरी को बर्धा में हुयी बैठक में कार्य समिति के सदस्यों से नहीं

---

1. बोस सुभाष चन्द्र, दि इण्डियन स्ट्रगल पृष्ठ 190

मिल सका। उसी दिन उन्होंने अपने त्याग पत्र प्रेषित किये थे। इसके पश्चात त्रिपुरी में जो कुछ हुआ वह सभी को ज्ञात है।

त्रिपुरी में कांग्रेस अधिवेशन के बाद मैं इतना बीमार हो गया कि महात्मा गाँधी से भी नहीं मिल सका। उन्होंने मुझको दिल्ली जाकर रहने के लिए कहा था लेकिन मेरे चिकित्सकों ने इसको असम्भव कर दिया। उन्होंने महात्मा गाँधी को मेरी स्थिति से अवगत कराते हुये विस्तृत तार दिये और मुझे केवल पत्र व्यवहार करने की सलाह दी। लगभग एक पखवाड़े के पश्चात जब मेरी स्थिति तनिक सुधरी हुयी थी तब मुझे लगा कि पत्र व्यवहार से कार्य ठीक प्रकार से नहीं चल रहा है।

तभी मैने उनसे व्यक्तिगत रूप में मिलने का विचार किया। मैं उनसे मिलने के लिए इतना अधिक उत्सुक था कि चिकित्सकों की भी अवहेलना करके दो दिन के लिए दिल्ली जाने को तैयार हो गया। दुर्भाग्य से महात्मा गाँधी को अचानक राजकोट जाना पड़ा और इस प्रकार हम आखिरकार मिल न सके।[1]

"उसके बाद मैं महात्मा जी से 27 अप्रैल को कलकत्ता में मिल पाया। उनकी विचारधारा जब भी वैसी ही थी, जैसा कि उन्होंने अपने पत्रों में लिखी थी या बर्धा में उन्होंने प्रकट की थी। वह अब भी उन सदस्यों को छोड़कर जिन्होंने त्याग पत्र दिया था, नयी कार्य समिति बनाने के पक्ष

---

1. पूर्वोक्त पृष्ठ 127

में थे। कुछ कारणों से मैने भी उनकी सलाह नहीं मानी। क्योंकि इस तरह की समिति को महात्मा गाँधी का विश्वास प्राप्त नहीं हो पाया और इस प्रकार वह पण्डित पंत के प्रस्तावों की शर्त के भी विरुद्ध होती, क्योंकि देश के हित में मिली–जुली समिति के सिद्धान्त में विश्वास ही करता हूँ। इसलिए मैने बारबार महात्मा गाँधी जी से अपने पत्रों में और वार्ता में प्रार्थना की कि वह त्रिपुरी कांग्रेस के अपने उत्तरदायित्व के अनुसार कार्य समिति के सदस्यों की घोषणा करे।

"जब कलकत्ता में गांधी जी ने अन्तिम रूप से इस कार्य को करने से मना कर दिया तब एक गतिरोध पैदा हो गया। अब अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के समक्ष इस बात को रखने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। ऐसे समय में मुझको डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद और कार्यसमिति के दूसरे सदस्यों से विचार विमर्श करने की सलाह दी गयी और नयी कार्यसमिति के अधिकारियों के प्रबन्ध के लिए यत्न करने का सुझाव दिया गया। मैने गाँधी जी से कहा कि मैं प्रसन्नतापूर्वक इस कार्य को कर सकता हूँ। यदि यह प्रयास सफल हुआ होता तो मैं उस समझौते को भारतीय कांग्रेस समिति के सम्मुख रखकर औपचारिक अनुमति लेता, लेकिन दुर्भाय से हम कोई समझौता नहीं कर पाये। अब प्रश्न यह है कि हम इसमें असफल क्यों हुये और इस असफलता के लिए उत्तरदायी कौन है।

उन्होंने आगे कहा– समझौते की बातचीत सर्वप्रथम डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद से हुयी मैने चार सदस्यों को लेने का सुझाव रखा और चारों के

नाम भी सुझाव दिये। कुछ बातचीत के बाद हम मौलाना अब्दुल कलाम के मकान पर आगामी वार्ता के लिये गये। यहाँ मुझे बताया गया कि तुम्हारे सुझाये गये नाम स्वीकार नहीं हैं। उनके स्थान पर नये नाम प्रस्तावित किये गये और पण्डित जवाहर लाल नेहरू का नाम कार्यालय के प्रधान सचिव के रूप में प्रस्तावित किया गया। मैने इस विचार का स्वागत किया और पंडित नेहरू से इसको स्वीकार करने के लिए कहा लेकिन इसके पहले कि हम कोई अन्तिम निर्णय करते, हमें महात्मा गाँधी जी से वार्तालाप के लिए अपनी बातचीत फिर स्थगित करनी पड़ी।[1]

"जब हमने वार्ता का पुनः आरम्भ किया तो फिर से बिल्कुल नये प्रस्ताव रखे गये। उसमें एक यह भी था कि फिर से पुरानी कार्य समिति की नियुक्ति कर दी जाये। अपनी पहली वार्ताओं से मैने यह समझा था कि चार नये सदस्यों की नियुक्ति के सम्बन्ध में कोई असहमति हो सकती है। लेकिन मैं तब सन्देह में भर गया, जब मैने देखा कि नये प्रस्तावों का स्वयं महात्मा गाँधी ने समर्थन किया है। मुझसे कहा गया कि कुछ समय पश्चात दो स्थान रिक्त किये जायेंगे और दो सदस्यों को उनके स्थान पर लिया जा सकता है। आगे जानकारी प्राप्त करने पर मुझको पता चला कि केवल इन दो ही सदस्यों को रख सकता था।

मैने जानना चाहा कि क्या नये सदस्यों को प्रारम्भ में मनोनीत

---

1. जनरल मोहन सिंह : कांग्रेस अन्मर पृष्ठ 119–20

नहीं किया जा सकता है? मुझे इसका नकारात्मक उत्तर मिला। स्थिति स्पष्ट करने के लिये मैने पूछा कि क्या इन खाली स्थानों पर मेरे प्रस्तावित नाम रखे जायेंगे? और इस सन्दर्भ में मैने अपने नाम भी सुझा दिये, लेकिन मेने दोनों नामों को अलग कर दिया।[1]

"तब मैने जानकारी की कि क्या इन दो नये सदस्यों में से मैं अपनी इच्छा का द्वितीय सचिव रख सकता हूँ, जो कलकत्ता में रहेगा ? मैने कहा कि प्रारम्भ में तीन सचिवों की उपयोगिता है, जिनमें से इस वर्ष दो के लिए मैने प्रस्ताव रखा। एक इलाहाबाद के लिए और दूसरा कलकत्ता के लिए। मेरे कार्य के सहयोग देने के लिए वास्तव में यह आवश्यक भी था। इस बार भी मेरा प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया गया।"

अब अपनी बातचीत से हम इस नतीजे पर पहुँचे तो मैने महात्मा जी से कहा कि यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मेरा कोई प्रस्ताव स्वीकृत नहीं होगा। दूसरी ओर विचारों की साम्यता के अभाव में मैं किस प्रकार कार्य कर पाऊँगा? मैं केवल दिखावा बनकर ही रहना नहीं चाहता और किसी भी कीमत पर दल को लटकाने की मेरी इच्छा नहीं है, इसलिए कांग्रेस समिति के समक्ष मैने अपना त्याग पत्र रख दिया ताकि वह नया राष्ट्रपति चुन सके और नयी कार्य समिति का निर्माण कर सके। मुझको इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपना त्याग पत्र प्रस्तुत करके मैने सही मार्ग अपनाया था।

---

1. पूर्वोक्त ।

"मैने बारबार घोषित किया कि मैने अपना त्याग पत्र पूर्णरूपेण सहयोगी भावना से ही दिया है और यह देश के हित में ही सिद्ध होगा। कांग्रेस में आये संकट को टालने के लिए समझौता करने के सभी प्रयास जब असफल हो गये तो आत्मसम्मान, प्रतिष्ठा और देश के प्रति मेरे कर्तव्य का सही तकाजा था कि मुझे त्याग पत्र दे देना चाहिये।[1]

घटना चक्र ने जो मार्ग पकड़ा उससे सभी देशप्रेमी दुखी हुये। इस विषय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध दैनिक आज के सम्पादक ने टिप्पणी खिलकर अपना मतभेद प्रकट किया।

"हमारे आदरणीय बुजुर्ग और पूज्य नेताओं को उदारता से काम लेना चाहिये था। गाँधी जी राष्ट्र के हृदय में जिस ऊँचे स्थान पर हैं, उसकी मर्यादा की रक्षा इस बात में थी कि उस दल के कहे जाने वाले लोग उदार हृदय से काम लेते, ऐसा नहीं हुआ। इसी का खेद है कि जो हुआ वह न केवल अहितकर हुआ, बस पुराने नेताओं और गाँधी जी के पद के लिए हानिकारक भी हुआ।[2]

"अन्त में कार्य समिति को सुभाष बाबू का त्याग पत्र स्वीकार करना पड़ा। उसी के बाद नई कार्य समिति का निर्वाचन हुआ।

वास्तव में 1938–39 में सुभाष चन्द्र बोस कम्युनिस्ट न होते हुए

---

1. वही पृष्ठ 127–28

2. पूर्वोक्त पृष्ठ 127–128

भी ऐसे वामपंथी थे, जिन्हें तत्कालीन समय में कांग्रेस के सभी वामपंथियों का समर्थन प्राप्त था। उनके निर्वाचन और पुनर्निर्वाचन में वामपंथियों की महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि थी। उनके अध्यक्ष काल में कांग्रेस में कई ऐसे वामपंथी कदम उठाये गये जिनसे कांग्रेस के नौजवान उनसे प्रसन्न थे। सर्वप्रथम हरिपुरा कांग्रेस में ही देशी रिसायतों में हस्तक्षेप न करने की नीति कांग्रेस को छोड़नी पड़ी। इस नीति के छोड़ते ही देशी रियासतों में प्रजातांन्त्रिक आन्दोलन बड़ी तेजी से बढ़ा। लगभग 80 देशी रियासतों में तब तक राजनीतिक संगठन कायम हो चुके थे जो कमोवेश प्रजातान्त्रिक सुधारों की मांग करते थे।[1]

"हरिपुरा कांग्रेस के बाद ही त्रावणकोर में फरवरी 1938 में कांग्रेस कमेटी बनाई गयी लेकिन रियासतों के शासकों ने उसे अवैध घोषित कर दिया। इसके फलस्वरूप त्रावणकोर कांग्रेस कमेटी ने सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया। जम्मू कश्मीर में जनतांत्रिक आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिए राष्ट्रीय बुजुर्ग वर्ग ने नेशनल कान्फ्रेन्स की स्थापना की थी। उसने भी उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार की स्थापना के लिए सामूहिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन या सत्याग्रह चलाया। उड़ीसा, गुजरात, पंजाब, मध्य भारत आदि की रियासतों में सत्याग्रह का करबन्दी आन्दोलन चलाया गया। आन्दोलन के दबाव से इस काल में कितने ही रियातों में सामन्तवादी सरदारों ने कुछ

---

1. अयोध्या सिंह : पूर्वोक्त पृष्ठ 630

जनतान्त्रिक सुधारों के वायदे किये। कितनी ही रियासतों में वेहतर जिन्दगी के लिए मजदूरों और किसानों के आन्दोलन भी चले थे इसी महत्वपूर्णकाल में राजकोट त्रावणकोर बड़ौदा, ग्वालियर, इन्दौर बगैरा में ट्रेड यूनियन बनी और मजदूरों ने हड़तालें की।[1]

किसान आन्दोलन मजदूर आन्दोलन से भी जोरदार रहा, कितनी ही रियासतों में किसान सभायें बनी। लगान कम करने के लिए आन्दोलन चालए गये।[2]

"कांग्रेस के वामपंथियों में विशेषकर किसान सभाओं ने रियासती जनता की इन आन्दोलनों में बड़ी सहायता की परन्तु दूसरी ओर देशी रियासती सामन्तों ने इन आन्दोलनों को कुचलने के लिए भयंकर जुल्म ढाये। 1938 में राजकोट की घटनाओं ने सारे भारत का ध्यान आकर्षित किया। राजकोट गांधी जी की जन्मभूमि है। यहां वामपंथियों ने प्रजा परिषद बनाई थी। अधिकारियों की धमकी और दमन की उपेक्षा करके राजकोट में ही सितम्बर 1938 में एक सम्मेलन कराया गया जिसमें 3000 किसान शामिल हुये थे। इसने जनतांत्रिक सुधारों की मांग की, लोगों ने बैंकों रियासतों के कारणों और स्टेटों का वायकाट किया। रियासत का राजा कांग्रेस के साथ समझौता कर लेना चाहता था। लेकिन तभी ब्रिटिश अधिकारियों ने हस्तक्षेप

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ 631– 33
2. प्रताप, 19 मार्च 1938

किया। लोकप्रिय दीवान वीरावाला हटा दिया गया। उसके स्थान पर एक अंग्रेज बिठा दिया गया। उसने कुछ लोगों को सुविधायें देकर आन्दोलन में फूट डालनी चाही, परन्तु व इसमें सफल नहीं हुये और अन्त में राजा को कांग्रेस के साथ समझौता करना पड़ा। इससे कितनी ही अन्य देशी रियासतों के आन्दोलन को बल दिया। ब्रिटिश सरकार के हस्तक्षेप के कारण राजा ने जो सरदार पटेल के परामर्श से समिति बनाई थी वह भंग कर दी गई। अन्ततः 25 जनवरी 1939 को फिर सत्याग्रह शुरू हुआ। गाँधी जी ने अनशन शुरू किया। समस्त कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र की धमकी दी। अन्त में ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा।[1]

"वास्तव में इस समय कांग्रेस भी साम्राज्यवादी शक्तियों का संयुक्त संगठनकारी था। वह धीरे–धीरे राष्ट्रीय मोर्चे का रूप ले रही थी किन्तु कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेता यह पसन्द नहीं करते थे। वे कांग्रेस को साम्राज्यवादी शासकों और उनके आधार स्तम्भ सामन्तवादी सरदारों के विरुद्ध भारतीय जनता का क्रान्तिकारी अस्त्र नहीं बनने देना चाहते थे। वे हमें साम्राज्यवादियों पर दबाव डालने का और उनके साथ समझौता करने का अस्त्र बनाये रखना चाहते थे।[2]

"कांग्रेसी सरकारें साम्राज्यवाद विरोधी जन–संग्राम का अस्त्र बन

---

1. पूर्वोक्ति।

2. नेशनल फ्रन्ट, 13 फरवरी 1938 उद्धृत अयोध्यासिंह, पूर्वोक्त, पृ0 354

सकती थीं लेकिन दक्षिणपंथी नेताओं ने उन्हें संग्राम को विकसित करने का नहीं, उसे रखने का साधन बनाया। त्रिपुरी कांग्रेस के बाद से तो उन्होंने कांग्रेस को वामपंथियों से और भी दूर रखने और उसे सिर्फ एक संसदीय वैधानिकतावादी पार्टी बना देने का रास्ता अपनाया।

अध्याय - चतुर्थ

फारवर्ड ब्लॉक के संस्थापक के रूप में सुभाषचन्द्र बोस की भूमिका

(अ) फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना।

(ब) कार्यक्रम।

(स) सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में 1939 से 1942 तक कार्य।

फारवर्ड ब्लाक के संस्थापक के रूप में
सुभाषचन्द्र बोस की भूमिका

1. फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना :

काँग्रेस से अलग होकर सुभाष बाबू ने "फारवर्ड ब्लॉक" नामक एक संस्था की स्थापना की। उन्होंने सारे देश का दौरा किया। वे जहाँ भी जाते थे, जनता उनके विचारों को सुनने के लिए उमड़ पड़ती थी। वे देश भर में घूम–घूम कर मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये लोगों को उभारने का काम करते थे। उनका देश भर में जगह–जगह स्वागत किया गया। देश में उन्हें सिद्धान्तों पर दृढ़ तथा वीर नेता के रूप में माना जाने लगा।

महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू सहित अन्य कांग्रेसी नेता सुभाष बाबू के लोकप्रिय व्यक्तित्व व बढ़ते प्रभाव से चिढ़ से गये। 11 अगस्त को एक प्रस्ताव द्वारा सुभाष को तीन वर्ष के लिये कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया।

सन् 1936 के 12 अक्टूबर के दिन सुभाष उत्तर प्रदेश के लोगों के अनुरोध पर लखनऊ पधारे तो उनका भव्य जुलूस निकाला गया। इस जुलूस में लगभग डेढ़ लाख छात्र व युवक सम्मिलित थे।

लखनऊ के गंगा प्रसाद मैमोरियल हॉल में हुई विराट सभा जिसमें नेताजी ने ओजपूर्ण भाषण में कहा – "आजादी मांगी नहीं जाती, छीनी जाती है और हम उसे प्राप्त करके ही दम लेंगें।" अपने इन ओजस्वी

वाक्यों ने उन्हें युवकों का हृदय सम्राट बना दिया।

संयुक्त प्रान्त के चीफ सेक्रेटरी मिस्टर रिवन तक जब नेताजी के इन चिन्गारी उगलने वाले वाक्यों की खबर पहुंची तो उसने पुलिस के असिस्टेंट सुपरिटेंन्डेंट मिस्टर एफ.आर. स्टाकवेल को उन्हें गिरफ्तार करने का आदेश दिया। स्टाकवेल तुरन्त सभा में सुभाष बाबू को गिरफ्तार करने पहुंचे परन्तु लाखों की भीड़ में हाथ डालने का साहस न कर सके।

कांग्रेस द्वारा सुभाष बाबू को निष्कासित करने की प्रक्रिया से गुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर को भी बहुत बुरा लगा। उन जैसे महान लेखक, साहित्यकार, कवि एवं विचारक ने निजी तौर पर पत्र लिखकर गाँधीजी से निवेदन किया। यह समय आपस में लड़ने का नहीं। आजादी के इस पवित्र मकसद को पूरा करने के लिये हमें आपस में भेदभाव और संकीर्णता मिटाने ही होंगे। लेकिन गाँधी जी की जिद के आगे वे भी हार गये।

1938 तथा 1939 में सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष तो चुन लिये गये, परन्तु उस समय तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस स्पष्टतः दो खेमों में विभाजित हो चुकी थी। इनमें से एक ऐसा दक्षिणा पंथी, जो विशुद्ध गाँधीवादी था, को भारत में पूंजीवादी हितों का संरक्षण प्राप्त था। इसमें गाँधीवादी नेता शामिल थे जो गाँधी जी के अन्धभक्त थे। दूसरी खेमा वामपंथी था। वामपंथी खेमा सुभाष चन्द्र बोस का समर्थक था। वामपंथी खेमा भी दो भागों में बंटा हुआ था। एक भाग दक्षिणापंथी समाजवादियों का था जो कम्युनिस्टों को पसन्द नही करते थे। कम्युनिस्ट पार्टी पर जब प्रतिबन्ध लगा

दिया गया तो कम्युनिस्टों ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता ग्रहण कर उसके माध्यम से काम करने की इच्छा जाहिर की थी तथा उसने अपने सदस्यों को इस पार्टी की सदस्यता ग्रहण करने का निर्देश दिया।[1]

"वास्तव में यह वह समय था, जब राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम को सफल क्रान्ति की ओर ले जाने के लिए किस बात की आवश्यकता है इस अवधारणा पर विचार आवश्यक था। इसके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता थी संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे, एक क्रांन्तिकारी कार्यक्रम और क्रान्तिकारी नेतृत्व की आवश्यकता थी। कम्युनिस्टों ने इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नेशनल फ्रन्ट (राष्ट्रीय मोर्चा) नामक साप्ताहिक पत्र निकाला था। उनके इस पत्र का प्रकाशन कांग्रेस सरकारों द्वारा प्रजातान्त्रिक अधिकारों पर से प्रतिबन्धों को हटाने के कारण सम्भव हुआ था । इसके सम्पादक थे पूरन चन्द्र जोशी और सम्पादक मण्डल में इसके अलावा थे पूरन चन्द्र घोष, श्री पाद अमृत डागे, भालचन्द्र त्रयम्बक रणदिये और महमूद जफर ब्रिटिश शासकों ने उसे बन्द करने का हर सम्भव प्रयास किया। इसका उद्देश्य संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे की स्थापना था। इसके लिए यह जरूरी था कि सभी वामपंथियों में एकता स्थापित की जाये। कांग्रेस को भी संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा बनाया जा सकता था। वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट और कम्युनिष्ट इस बात को समझते थे। इसके लिए उन्होंने विभिन्न कदम उठाए। वे जन– संगठनों की एकता कायम

---

1. अयोध्या सिंह पूर्वोद्धत, पृष्ठ 659

करने में सफल भी हुये थे। इस काल में मजदूर आन्दोलनों की फूट लगभग समाप्त हो गयी थी और आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में फिर सब एकमय और संगठित हो गए , लेकिन अन्य तीन कार्यो में बहुत ज्यादा सफलता नही मिली।[1]

''क्रान्तिकारी शक्तियों की एकता के लिए सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों की एकता अत्यन्त जरूरी थी। दोनो ही इस बात को समझते भी थे। इसलिए इस दिशा में कदम भी उठाए गये। दोनों पार्टियों के प्रतिनिधियों को लेकर एक आल इण्डिया कान्टेक्ट कमेंटी (अखिल भारतीय सम्पर्क समिति) स्थापित की गयी थी। इसका उद्देश्य, दोनों पार्टियो के सदस्यों के बीच सम्पर्क बढ़ाना और ऐसा कार्यक्रम तैयार करना था जिसे दोनों पार्टियो के कार्यकर्ता मिलकर पूरा करें। इस काल में कम्युनिस्ट पार्टी के अनेक सदस्य और कार्यकर्ता कांग्रेस–सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बने और जिनका उद्देश्य इसे शक्तिशाली बनाना था।[2]

''वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट चाहते थे कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी मिलकर एक हो जायें, लेकिन कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का दक्षिणपंथी भाग जिसमें मीनू मसानी , अशोक मेहता, राम मनोहर लोहिया और अच्युत पटवर्धन जैसे लोग थे जो मूलतः कम्यूनिष्ट विरोधी थे। वे सर्वहारा के प्रथम राज्य सोवियत संघ के भी विरोधी थे।

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ 660
2. वही

सोशलिस्टो और कम्युनिस्टों की इस एकता को तोड़ने के लिए मीनू मसानी ने एक पेम्पलेट प्रस्तावित किया था। "कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के खिलाफ कम्युनिस्टों का षडयन्त्र", इस प्रकार दक्षिणपंथी समाजवादियों ने वामपंथी एकता के मार्ग में उस समय अवरोध उत्पन्न किया था।

"काँग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने पर वाध्य होने के बाद ही सुभाष चन्द्र बोस ने फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना की तरफ कदम उठाया। इसका पहला सम्मेलन जून 1939 में बम्बई में हुआ। ठीक इसी समय एक कांग्रेस महासमिति की बैठक हो रही थी। इसके प्रथम अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस और सरदार बल्लभ भाई पटेल थे। सुभाष इसे सब रेडीकलों और साम्राज्यवाद विरोधियों का मंच बनाना चाहते थे। वे सब वामपंथियों को फारवर्ड के झण्डे के नीचे गोंलबन्द करना चाहते थे।[1]

काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के रहते कांग्रेस के अन्दर फारवर्ड ब्लॉक का निर्माण आवश्यक था, फिर भी उसका निर्माण किया गया और मजे की बात यह थी कि प्रत्यक्ष में तो लोहिया और पटवर्धन जैसे नेताओं ने इसके निर्माण का स्वागत किया, दूसरी तरफ कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने मिलकर जून 1939 में ही ध्यान दिया कि फारवर्ड ब्लॉक के निर्माण से वामपंथी शक्तिओं की फूट और गहरी हो जाती है तथा उससे साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों के ब्लॉक को खतरा पैदा हो जाता है।[1]

---

1. वही भाग 3, पृष्ठ 1920, उद्धृत अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम पृष्ठ 664

2. नेशनल फ्रन्ट, जून 1937

"इस प्रस्ताव में यह कहा गया था कि एक नया वामपंथी सम्मेलन बुलाया जाये और फारवर्ड ब्लॉक, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी तथा कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों को लेकर 'ले फूट को–आपरेशन कमेंटी " (वामपंथी सहयोग समिति) स्थापित की जाए और सब मिलकर एक सर्वसम्भव कार्यक्रम राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर कार्य करें।

"फारवर्ड ब्लॉक के नेता जिद कर रहे थे कि उनके संगठन को सब वामपंथी दलों ने संगठन मान लिया था, किन्तु अन्य वामपंथी पार्टियों के प्रतिनिधियों के साथ बात करने के बाद वे कुछ पीछे हटे और फारवर्ड ब्लॉक कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी तथा एन0 एन0 राय द्वारा स्थापित रेडीकल कांग्रेस मेनलीग तथा आल इण्डिया किसान सभा के प्रतिनिधियो को लेकर लेफूट कान्सोलीटेशन कमेटी बनाई गयी । इसके अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस चुने गयें। इस कमेटी ने कांग्रेस की नीति के आधारभूत प्रश्नों पर एक वक्तव्य दिया। इस वक्तव्य में कांग्रेस के जून 1939 के फैसले की आलोचना की गयी। इसमें बताया गया कि जबसे प्रान्तों में सरकारें बनी है, तब से कांग्रेस कमेटी के सदस्य और खुद ये सरकारें जन आन्दोलनों का विरोध कर रही हैं। उन्होंने बे–हिचक प्रतिक्रियावादी शक्तियों के साथ समझौते किये। उन आलोचनाओं में कांग्रेस सदस्यो के भाग लेने पर रोक से कांग्रेस कार्यकर्ता व्यस्त हो रहे थे। जन साधारण पर कांग्रेस का असर घट रहा था। कांग्रेस – जनों ने जनान्दोलनों के संगठनों को बनाने में महत्वपूर्ण कार्य किया था, यदि उन्हें जन– आन्दोलन में भाग नही

लेने दिया जा रहा था तो यह निश्चित था कि उनका स्थान प्रतिक्रियावादी गतिविधियों में लगेगा और अपने नाकाम इरादों को पूरा करने मे वे इसका इस्तेमाल करेगी। कांग्रेस कमेटी के उक्त फैसलों का इस वामपंथी कमेटी ने प्रतिवाद किया था और 9 जुलाई 1939 को वामपंथियों ने कार्यक्रम के पक्ष में जनमत जुटाने के लिए सभाओं और जुलूसों का आव्हान किया।[1]

"सुभाष चन्द्र बोस द्वारा "फारवर्ड ब्लॉक" की स्थापना के सुनिश्चित लक्ष्य थे जैसे कि उन्होंने स्वयं लिखा है, सुभाष चन्द्र बोस को 1939 के बहुत पहिले ही यह विश्वास हो गया था कि निकट भविष्य में ही युद्ध (द्वितीय विश्व युद्ध) की शक्ल में एक अन्तर्राष्ट्रीय संकट आने वाला है।[2]

"उनका यह स्पष्ट विचार था कि भारत इस संकट का अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए पूरा–पूरा लाभ उठायेगा। उन्होंने लिखा है कि 1938 में कम्युनिस्ट पैक्ट के बाद मैं भारतीय जनता को बराबर यही बात समझाने का प्रयास करता रहा और कांग्रेस को भी अपनी नीति विदेशों में चल रहे इस घटना क्रम के अनुसार ढालने को तैयार करने के वास्ते लगातार प्रयास करता रहा। इस प्रयास में मेरे मार्ग में गाँधीवादी गुट द्वारा पग–पग पर बाधाएं डाली जाती रहीं, क्योंकि उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय घटना चक्र की कतई समझ नही थी और वे लोग बड़ी उत्सुकता के साथ समझौता हो जाने की उम्मीद

---

1. नेशनल फ्रन्ट 2–9, 15 जुलाई 1939
2. नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय, पृष्ठ 217

लगाये बैठे थे। खैर मैं यह भलीभांति जानता था कि कांग्रेस के भीतर आम जनता के बीच मुझे भारी समर्थन प्राप्त है, बस जरूरत है तो इस बात की कि मेरे पीछे कोई संगठित और अनुशासित पार्टी होना चाहिये।[1]

''उन्होंने लिखा है कि ''फारवर्ड ब्लॉक'' के गठन से मुझे दो अपेक्षाएं थीं एक तो यह कि गाँधीवादियों के साथ भावी टक्कर में, मैं उनका और अधिक ताकत के साथ मुकावला कर सकूंगा और मैं आशा कर सकता था कि एक बार समस्त कांग्रेस को मैं अपनी बात मनवा सकूंगा। दूसरे यदि सारी कांग्रेस को यदि मैं अपने साथ नही ले सका तो भी किसी बडे संकट की स्थिति में से ऐसी स्थिति में अवश्य होऊँगा । यदि गाँधी गुट ने वक्त पर साथ न भी दिया तो भी मैं अपने बलबूते पर काम कर सकूंगा। बाद में जो कुछ घटनाएं घटीं फारवर्ड ब्लॉक के संस्थापक के नाते मेरी अपेक्षायें काफी हद तक पूरी हुयीं।[2]

फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना से कांग्रेस में प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुयी। इस हेतु जून 1939 बम्बई में कांग्रेस महासमिति की बैठक हुई। इस महासमिति ने देश में समस्त कांग्रेस जनों को आदेश दिया कि वे प्रान्तीय कांग्रेस समितियों की अनुमति के बिना किसी प्रकार के आन्दोलन न करें और न ही आन्दोलन में भाग लें।

---

1. वही, पृष्ठ 218
2. पूर्वोक्त

"सुभाष ने ऐसा विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित किया और देश की जनता से इन प्रस्तावों के विरूद्ध आन्दोलन करने की अपील की। इस विरोध प्रदर्शन के लिए 9 जुलाई 1939 का दिन निश्चित किया गया। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने प्रदर्शन को उच्छश्रृखंलता कहा। अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा था। "कांग्रेस का निर्माण हमने अतुलनीय प्रेम ,परिश्रम और न्याय से किया है। उसके संगठन के लिए प्रदर्शन कांग्रेस के लिए एक खुली चुनौती है। यदि हमने यही मार्ग अपनाया तो हमारी संस्था नष्ट भ्रष्ट हो जायेगी। साम्राज्यवादी विरोधी युद्ध छिड़ जायेगा। और जन –वर्ग की वृहद् लड़ाई पार्टीबन्दी तथा दलगत संघर्षों में परिणित हो जायेगी।"[1]

"9 जुलाई 1939 का दिन आ गया। कांग्रेस के बड़े–बड़े नेताओं और कार्यकर्ताओ में इस दिन के लिए बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा थी। वे यह देखना चाहते थे कि सुभाष किस प्रकार कांग्रेस के विरोध में प्रदर्शन करते हैं और उनको इसमें कितनी सफलता मिलती है। उनका विश्वास था कि देश की समस्त जनता गाँधीजी के साथ है, परन्तु 9 जुलाई 1939 को उनका विश्वास निराशाजनक सिद्ध हुआ। इस दिन देशभर में विरोध सभायें हुयीं। इस प्रदर्शन ने बता दिया कि जनता केवल अहिंसा की रट नहीं लगाते रहना चाहती बस उसके कदम अब क्रान्ति और प्रजातांत्रिक प्रतिमानों

---

1. उदधृत अग्रवाल गिरिराज शरण : पूर्वोद्धत, पृष्ठ 88

की ओर उठ चुके हैं। वह विद्रोह चाहती है और विद्रोही नेताओं का नेतृत्व चाहती है।[1]

"सुभाष बाबू की सफलता से देश में एक नूतन जोश व्याप्त हो गया। कांग्रेस के पदाधिकारी इस सफलता को देखकर बौखला उठे। अतः कांग्रेस महासमिति की ओर से घोषणा की गयी कि जिन कांग्रेस जनों ने विरोध प्रदर्शन में भाग लिया, उनके प्रति अनुशासनात्मक कार्यवाही की जावेगी।[2]

"वास्तव में जैसे ही फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना हुयी थी, गाँधी जी के गुस्से की पूरी गाज उस पर गिरी थी। चितरंजन दास की मृत्यु (1925) के बाद गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस को चुनौती मिलने का यह पहला अवसर था, फिर भला वे और उनके अनुयायी इसे कैसे सहन कर सकते थे।

"गाँधी जी के साथ–साथ ब्रिटिश सरकार को भी फारवर्ड ब्लॉक सताने लगी थी। अतः उसे (फारवर्ड ब्लॉक) को परेशान करने वाली कार्यवाही का सामना करना पड़ रहा था। क्योंकि ब्रिटिश सरकार के लिए राजनीतिक दृष्टि से गाँधीवादियों की अपेक्षा फारवर्ड ब्लॉक कहीं ज्यादा खतरनाक था।

"फारवर्ड ब्लॉक के जन्म से कांग्रेस के भीतर का संघर्ष और तेज हो गया और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि कोई भी इस या उस पक्ष

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ 88

2. पट्टाभि सीता रमैया : भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का इतिहास, खण्ड – 2, पृष्ठ 118

में शामिल हुए बिना नही रह सकता था। कांग्रेस के भीतर के इस द्वन्द्व में जिस व्यक्ति को सबसे अधिक परेशानी हुयी, वह थे पं. जवाहरलाल नेहरू। अभी तक तो वे बड़ी होशियारी से एक साथ दो घोड़ों पर सवारी करते रहे थे और एक तरफ गाँधीवादियों का समर्थन प्राप्त करते रहे थे तो दूसरी ओर वामपंथ के भी संरक्षक बन रहे थें। फारवर्ड ब्लॉक के कदम से उन्हें अपना उभयपक्षीय रवैया छोड़कर एक ही रास्ता चुनना पड़ा और उन्होंने दक्षिणापंथ की ओर बढ़ना शुरू किया ज्यों–ज्यों फारवर्ड ब्लॉक की तरफ अधिकाधिक झुकते गये वे उसी को अपना समर्थन देते चले गये।[1]

नेहरू की विचारधारा में दोहरापन था जिससे राजनीतिक पृष्ठभूमि में परिवर्तन आते रहते थे।

सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा है कि भारत के लिए सबसे अच्छी बात तो यही होगी कि गाँधी जी के नेतृत्व में समूची कांग्रेस फारवर्ड ब्लॉक की नीति को ही अपनाती रहे। इससे वह बच जाती और ब्रिटिश सरकार से संघर्ष करने के लिए कांग्रेस का बल बहुत बढ़ जाता, किन्तु मनुष्य स्वभाव अपने ही ढंग से काम करता है। सितम्बर 1938 में महात्मा गाँधी बराबर इस बात पर जोर देते रहे कि निकट भविष्य में राष्ट्रीय संघर्ष का तो प्रश्न ही नहीं उठता, परन्तु मेरे जैसे दूसरे लोगों को जो उनसे कम देशभक्त नहीं थे, यह विश्वास था कि आन्तरिक दृष्टि से देश क्रांन्ति के

---

1. नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय, खण्ड – 2, पृष्ठ 218

लिए कही अधिक तैयार है और आने वाला अन्तर्राष्ट्रीय संकट भारत को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति का ऐसा स्वर्ण अवसर प्रदान करेगा जो मानव इतिहास में बहुत दुर्लभ होता है। जब गाँधी को प्रभावित करने के सारे प्रयत्न विफल हो गये तो फारवर्ड ब्लॉक को गठित करके जनता का समर्थन प्राप्त कर महात्मा जी पर प्रत्याशित दबाव डालने के सिवाय कोई चारा नही था। अन्ततोगत्वा यह तरीका सफल भी हुआ । वास्तविकता भी यही थी कि यदि ऐसा नहीं किया गया होता तो गाँधी जी ने अपना रवैया कभी न बदला होता।[1]

2. कार्यक्रम

"इस प्रकार हम देखते है कि फारवर्ड ब्लॉक एक कांग्रेस का अग्रगामी मोर्चा था जो वामपंथी था। सुभाष चन्द्र बोस को आशा थी कि भारत में वामदल की शक्ति बढ़ेगी क्योंकि गाँधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस एक ऐसा संगठन था जो दृष्टि में भिन्न लेकिन विरोधी तत्वों को किसी प्रकार एक सूत्र में बांधने का ही प्रयत्न था इसलिए उन्होंने फारवर्ड ब्लॉक के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम तैयार किये थे, जिसमें एक दृष्टि से उनमें राजनीतिक विचारों का सार निहित था।

(1) कांग्रेस दल जनता के अर्थात किसानों और मजदूरों के हितों का समर्थन करेगा, न कि जमीदारों, पूंजीपतियों और साहूकार वर्गो का निहितस्वार्थ सिद्ध करेगा।

(2) वह भारतीय जनता की पूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक मुक्ति के लिए कार्य करेगा।

(3) वह अन्तिम उद्देश्य के रूप में संघात्मक शासन का समर्थन करेगा, किन्तु आगामी कुछ वर्ष तक अधिनायकवादी शक्तियों से एक मजबूत केन्द्रीय सरकार में विश्वास करेगा जिससे कि भारत अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

(4) देश के खेतिहर और औद्योगिक जीवन का पुनर्गठन करने के लिए उसे राजकीय नियोजन की सुदृढ़ तथा समुचित व्यवस्था मे विश्वास होगा।

(5) वह नई सामाजिक व्यवस्था में उन पुराने गांव समाजों में निर्माण करने का प्रयत्न करेगा जिनमें गांव मंच शासन करते थे। इसके अतिरिक्त वह जाति जैसी वर्तमान सामाजिक दीवारों को भी ध्वस्त करने का प्रयास करेगा।

(6) वह आधुनिक सरकार में प्रचलित सिद्धान्तों तथा प्रयोगों को ध्यान में रखते हुए एक नई मुद्रा व्यवस्था की स्थापना करने का प्रयत्न करेगा।

(7) वह जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करने तथा सम्पूर्ण भारत में एक सी भूमि व्यवस्था एवं राजस्व व्यवस्था कायम करने का प्रयास करेगा।

(8) वह इस प्रकार के लोकतंत्र का समर्थन नहीं करेगा, जिस प्रकार का विक्टोरिया के शासनकाल के मध्य में इंग्लैण्ड में प्रचलित था। वह एक ऐसे शक्तिशाली दल के शासन में विश्वास करेगा, जो सैनिक अनुशासन के द्वारा परस्पर आवद्ध होगा। जब भारतवासी स्वतंत्र हो जायेंगे और

उन्हें पूर्णतया अपने साधनों पर ही निर्भर रहना होगा, उस समय देश की एकता को कायम रखने तथा अराजकता को रोकने का यही एकमात्र साधन होगा।

(9) भारत की स्वतन्त्रता के पक्ष को मजबूत बनाने के लिए वह अपने आन्दोलन को भारत के भीतर तक ही सीमित नहीं रखेगा बल्कि वह अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार का भी सहारा लेगा और इसके लिए विद्यमान अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का प्रयोग करने का प्रयत्न करेगा।

(10) वह सब उग्रवादी संगठनों को एक राष्ट्रीय कार्यपालिका के अन्तर्गत संगठित करने का प्रयास करेगा, जिससे जब कभी कोई कार्यवाही की जाये तो अनेक मोर्चो पर एक साथ कार्य किया जा सके।[1]

"सुभाष चन्द्र बोस का शक्तिशाली व्यक्तित्व था। उन्होंने अपनी शक्ति को प्रज्ज्वलित करने के उद्देश्य से फॉरवर्ड ब्लॉक की स्थापना की थी, जो भारत ब्रिटिश शासन का विरोध करने तथा हर प्रकार से उसका तत्काल अन्त करने के सिद्धान्त को स्वीकार करती थी। वे यह नही चाहते थे कि उनका दल तत्व शासकीय मीमांसा के झमेले में पड़े। उनका उद्देश्य था कि वह केवल भारत की स्वतन्त्रता को तुरन्त प्राप्त करने के लक्ष्य में संलग्न रहे।

1 जनवरी 1941 को सुभाष चन्द्र बोस ने फारवर्ड ब्लॉक में मुख्य

---

1. पूर्वोक्ति, पृष्ठ 203

सिद्धान्तों का सार इस प्रकार व्यक्त किया था–

1– पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तथा उसको प्राप्त करने के लिए साम्राज्य विरोधी संघर्ष।

2– एक पूर्णतः आधुनिक ढंग का समाजवादी राज्य।

3– देश के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए वैज्ञानिक और नई तकनीकी ढंग से बड़े पैमाने पर उत्पादन ।

4– उत्पादन तथा वितरण दोनों का सामाजिक स्वामित्व तथा नियन्त्रण।

5– व्यक्ति को धार्मिक पूजा पाठ में स्वतन्त्रता।

6– हर व्यक्ति के लिए समान अधिकार

7– भारतीय समाज के हर व्यक्ति को भाषा विषयक, सांस्कृतिक स्वतन्त्रता एवं नये सांस्कृतिक स्तम्भों को अपनाने की आजादी।

8– नवीन स्वतन्त्र भारत के निर्माण में समानता तथा सामाजिक न्याय के सिद्धान्तो को लागू करना ।[1]

सुभाष चन्द्र बोस की नीतियाँ एवं अवधारणायें देश की सुरक्षा के लिए बड़ी उपयोगी एवं सारगर्भित थी। उनके विचारों में फारवर्ड ब्लॉक एक नवीन पार्टी थी जो भारत को वास्तविक रूप से आजादी दिलाने के लिये बड़ी उपयोगी पार्टी रही। क्योंकि फारवर्ड ब्लॉक भारत में समानता तथा सामाजिक न्याय की पक्षधर थी परन्तु परिस्थितियां ने पूर्ण रूप से साथ नहीं

---

1. पूर्वोक्ति, पृष्ठ 203

दिया। फारवर्ड ब्लॉक के सिद्धान्त भारत की स्वतंत्रता के लिये एक प्रेरणा के स्रोत थे। फारवर्ड ब्लॉक की अवधारणायें एवं नीतियों में भारत का हित था जिससे भारत का जनमानस एक खुशहाल जिन्दगी जी सके क्योंकि जनमानस ने गरीबी और लाचारी देखी थी।

3. सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में 1939 से 1942 तक कार्य

''फारवर्ड ब्लॉक के निर्माण पर सुभाष चन्द्र बोस द्वारा अप्रैल 1939 को कलकत्ता में नेहरू जी से लम्बी बातचीत हुयी थी। पंडित नेहरू का तर्क था कि इस नाजुक घड़ी में कांग्रेस में फूट पड़ जायेगी। सुभाष का मत था कि ऐसी एकता का क्या लाभ जिसमें निष्क्रियता विद्यमान हो। गाँधी जी राष्ट्रीय संघर्ष के विचार के ही विरुद्ध थे। इसलिए सुभाष चन्द्र बोस चाहते थे कि कांग्रेस के भीतर ही एक ऐसी पार्टी बनाई जाये जो प्रगतिशील हो, तो सम्भव है कि वह गांधी के पक्ष को भी प्रभावित करे और कांग्रेस को आक्रामक कार्यवाही करने के लए प्रेरित करे।[1]

''सुभाष चन्द्र बोस ने यह पार्टी इसलिए भी बनाई थी जिससे कि यदि जैसा कि लग रहा है कि निकट भविष्य में युद्ध शुरू होने वाला है यदि ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संकट में कोई कुछ करना चाहे तो इसके लिए

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ 219

एक पार्टी तो हो।

"सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था– "यदि गाँधीवादी यह भूमिका अदा करने को तैयार नहीं है तो तुरन्त ही समय रहते कोई दूसरी पार्टी बनाई जानी चाहिए। यदि इस काम को अभी नही किया गया और टाल दिया गया तो बाद में फिर यह नही हो पायेगा, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय संकट का पूरा लाभ आजादी हासिल दुहरायेगा जो उसने 1914 में की थी।"[1]

"इस वहस से नेहरू के विचारो कों बदला नही जा सका और वह गाँधी पक्ष का ही साथ देते रहे, लेकिन वो ऐसा जब–जब करते गये उतना वामपंथ से दूर होते गये। यह बात सुभाष के समक्ष 1938 में ही साफ हो गयी थी कि महात्मा गाँधी अपनी गतिशीलता और पहल करने की आभा तथा यश खो बैठे थे कारण जो भी रहा हो।

"अपनी कांग्रेस अध्यक्षता के दौरान सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को भी बार–बार यह सलाह देते रहे थे कि वे अपने मंच को और अधिक व्यापक बनायें और एक वामपथीय ब्लॉक बनाये, जिसके इर्द–गिर्द कांग्रेस के सभी अग्रगामी और प्रगतिशील तत्व इकट्ठे हो सके पर इस पार्टी ने ऐसा कुछ नहीं किया। भारत को इस बात की तुरन्त आवश्यकता थी कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध किसी प्रकार का समझौता किये बिना किसी ढंग और तरीके से निरन्तर ऐसे संघर्ष की ओर बढ़ा जाये

---

1. वही

जो महात्मा गाँधी के तरीके से अधिक कारगर हो। गाँधीवाद की यह कमी कि वह अंहिसा से प्रतिबद्ध था, इसलिए भारत की समस्याओं के हल के लिए ब्रिटेन से समझौते की बात सोचता था और बड़ी बात यह थी कि वह अहिंसक गतिरोध के रास्ते को अपनाते हुये भारत की स्वतंत्रता के लिये ब्रिटिश शासन से भीख चाहता था जो कि वामपंथी ठीक नहीं समझते थे। अतः एक ऐसी पार्टी की आवश्यकता थी जो इन दोषों एवं अवगुणों से मुक्त हो।[1]

फारवर्ड ब्लॉक के सामने प्रथम उद्देश्य भारत को स्वतंत्र कराने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ लगातार संघर्ष करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हर सम्भव उपाय को काम में लाया जाना चाहिये और गांधी जी के अंहिसा जैसे "दार्शनिक विचारों या पं0 नेहरू की धुरी राष्ट्र विरोधी विदेश नीति को भारत की जनता के मार्ग में बाधक नही बनने दिया जाना चाहिए।[2]

("फारवर्ड ब्लॉक एक यथार्थवादी विदेश नीति का समर्थक और युद्धोपरान्त भारत में एक समाजवादी व्यवस्था का पक्षधर था।)

"फारवर्ड ब्लॉक का जन्म एक ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए हुआ था। यही कारण था कि इसकी प्रत्येक बात सामान्य जनता

---

1. नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय, पृष्ठ 202–203

2. वर्मा वी.जी.: आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृष्ठ 415

को अच्छी लगती थी और इसकी लोकप्रियता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। कुछ महीने बाद महात्मा गाँधी ने यह टिप्पणी की थी कि सुभाष चन्द्र बोस की ख्याति कांग्रेस अध्यक्ष पद से त्याग पत्र के बाद और बढ़ी है।[1]

''सुभाष ने लिखा कि जब सितम्बर 1939 को यूरोप में युद्ध छिड़ गया तो शंकालु लोग मेरी इस राजनीतिक दूरदर्शिता की अवधारणा को मान गये कि मैने मार्च में त्रिपुरी के वार्षिक अधिवेशन में ही ब्रिटिश सरकार का भारत को 6 महीने में आजाद कराने का अल्टीमेटम देने का सुझाव दिया था। इस बात से फारवर्ड ब्लॉक की प्रतिष्ठा और गरिमा खूब बढ़ी ।[2]

''11 जुलाई 1939 को वर्धा मे अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुयी। इसमें सुभाष बाबू के प्रति अनुशासनात्मक कार्यवाही की गयी। इसमें एक विचित्र प्रस्ताव पारित किया गया और दो बार भारी बहुमत से कांग्रेस अध्यक्ष चुने जाने वाले सुभाष चन्द्र बोस को तीन वर्ष के लिए कांग्रेस कार्य समिति में किसी भी स्थान पर चुनने के अयोग्य घोषित कर दिया गया।[3]

''इस निष्कासन दण्ड पर टिप्पणी करते हुये सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था– '' मैने देश को सुधारवाद की ओर लगातार न बढ़ते रहने की चेतावनी

---

1. जनरल मोहन सिंहः कॉंग्रेस अनमास्कद पूर्वो0 पृष्ठ 131
2. वही, पृष्ठ 132
3. वही

दी थी। क्रान्तिकारी मनोवृति को नष्ट करने वाले कांग्रेस के सुझावों का विरोध किया था तथा वामपंथियों को संगठित करने का प्रयत्न किया था। साथ ही आने वाले प्रतिकूलता से देश को सावधान रहने की अपील की थी। बस इसी अपराध के लिए मुझको यह दण्ड दिया गया है, मुझे आज उसकी कोई चिन्ता नहीं है। मैं पहले से भी कहीं अधिक उत्साह से कांग्रेस की सेवा करूँगा। देश के एक तुच्छ सेवक होने के नाते मैं अब भी कांग्रेस और देश के प्रति अपना कार्य करता रहूँगा।[1]

"सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया, जिसका प्रभाव भारतीय राजनीति पर पड़ा। सुभाष चन्द्र बोस के अनुसार यही एक उपयुक्त समय था, जबकि सरकार के विरुद्ध आन्दोलन छिड़ जाता। कांग्रेस एकाएक आन्दोलन नहीं छेड़ना चाहती थी, परन्तु फारवर्ड ब्लॉक इसका पक्षधर था।[2] "यूरोप में युद्ध छिड़ते ही भारत के वायसराय ने बिना किसी की सलाह लिए युद्ध मे भारत को सम्मिलित करने की घोषणा की थी।[3]

"सुभाष और उसके फारवर्ड ब्लॉक ने इसका पूर्ण विरोध किया। उन्होंने सम्पूर्ण देश में विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने देखा कि सुभाष और फारवर्ड ब्लॉक के कार्यकर्ता सरकार के युद्ध और

---

1. पूर्वोक्त,।
2. नेताजी सम्पूर्ण वाङ्.मय पृष्ठ 223
3. वही।

युद्ध प्रयत्नों में बाधा उत्पन्न कर रहे है। इसलिए उन्हें भारत रक्षा अधिनियम के अन्तर्गत कई साथियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि युद्ध प्रारम्भ होने पर महात्मा गाँधी का दृष्टिकोण क्या था। 26 सितम्बर 1939 को वायसराय लार्ड लिन लिथगों से मुलाकात करने के बाद महात्मा गाँधी ने यह वक्तव्य प्रसारित किया कि भारत की आजादी के लिये भारत और ब्रिटेन के मतभेदों के बावजूद भारत को ब्रिटेन के संकट के समय उसके साथ सहयोग करना चाहिये। गाँधी जी का यह वक्तव्य भारतवासियों के लिए बम के धमाके की तरह आया, क्योंकि उन्हें तो 1927 से कांग्रेस नेताओं द्वारा यही पाठ पढ़ाया जा रहा था कि अगले युद्ध को भारत की आजादी प्राप्त करने का अभूतपूर्व मौका माना जायेगा। गाँधी जी के बाद बहुत से कांग्रेसी नेताओ ने यह घोषणा करनी शुरू कर दी कि यद्यपि हम भारत की आजादी चाहते हैं, परन्तु यह भी चाहते हैं कि भारत युद्ध जीते क्योंकि इस तरह के प्रचार से भारत के जनमत पर बहुत बुरा असर पड़ सकता था, इसलिए फारवर्ड ब्लॉक ने जो अब एक अखिल भारतीय संगठन बन चुका था, बड़े पैमाने पर इसका प्रतिकारात्मक प्रचार–प्रसार प्रारम्भ कर दिया था।[1]

"गाँधीवादियों के विपरीत फारवर्ड ब्लॉक इस बात का प्रचार कर रहा था कि कांग्रेस 1937 से बार – बार यह घोषणा करती आ रही है

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ 222

कि ब्रिटेन की लड़ाई में भारत को सहयोग नही देना चाहिए और अब समय आ गया है कि काँग्रेस इस घोषित नीति पर अमल करे।

''सुभाष चन्द्र बोस जानते थे कि हिटलर के आतंक के कारण ब्रिटिश सरकार भयभीत हो उठी है और यदि इस समय स्वतन्त्रता आन्दोलन का बीजारोपण हुआ तो सरकार इस वेग को सम्हाल न सकेगी।[1]

''30 सितम्बर 1939 को सुभाष चन्द्र बोस प्रयाग आये थे, उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर पं. जवाहर लाल नेहरू से बातचीत भी की थी। इसी यात्रा में सुभाष चन्द्र बोस ने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुये बताया था।

''हमें ब्रिटिश सरकार की वर्तमान स्थिति से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए। हम इस उचित पथ पर चलकर शीघ्र ही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। कुछ लोग यह कहते हैं कि ब्रिटिश सरकार से जो भी लाभ मिले उसे लेकर सन्तोष कर लें परन्तु मेरा विचार है कि ऐसे समय हमें अपनी बुद्धि बल द्वारा एक ऐसा मार्ग निर्धारित करना चाहिए जिससे हमें आंशिक नही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त हो सके। हम सरकार से स्वराज्य की भीख नही मांगते। हम अपने संगठन क्रान्ति तथा देश–भक्ति के बल पर स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते हैं। वह दिन दूर नहीं जब घबराई हुयी सरकार हमारें पैरों पर गिरकर शान्ति की भिक्षा मांगेगी और पुरुस्कार स्वरूप हम स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगें।[2]

---

1. वही

2. पूर्वोक्त, पृष्ठ 219

"सुभाष चन्द्र बोस ने सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया। वास्तव में वे देश में क्रांन्ति का सृजन कर रहे थे। एक ओर हिटलर का भयानक स्वप्न और दूसरी ओर सुभाष द्वारा लगाई गयी क्रांन्ति की आग ब्रिटिश सरकार की नींद हराम कर रही थी। सुभाष बाबू के यशस्वी और प्रेरक भाषणों ने भारतीय जनमानस पर आश्चर्यजनक प्रभाव डाला था। सरकार की चिन्ता स्वाभाविक थी, सुभाष बाबू का कहना था कि हम लोग युद्ध मे ब्रिटेन की जीत नहीं चाहते, क्योंकि ब्रिटेन के हार जाने और ब्रिटिश साम्राज्य के छिन्न– भिन्न हो जाने पर ही भारत के आजाद हो जाने की आशा की जा सकती है।[1]

"फारवर्ड ब्लॉक के इस सामान्य प्रचार के अलावा सुभाष चन्द्र बोस ने देश – भर का दौरा किया और दस महीने के समय में लगभग 9 हजार सभाओं में भाषण दिये। इस बात का सभी को और यहां तक कि सुभाष चन्द्र बोस को भी आश्चर्य था कि ब्रिटिश सरकार इस बात से भयभीत थी कि यदि फारवर्ड ब्लॉक के विरुद्ध कोई कठोर कदम न उठाया गया तो कहीं कांग्रेस भी न भड़क उठे और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू न हो जाए। सरकार की इस घबराहट का सुभाष ने पूरा फायदा उठाया और वह ब्रिटेन व युद्ध के विरोध में अपना धुआंधार प्रचार प्रसार करते रहे। हां इस प्रचार प्रसार के कारण उनके बहुत से सदस्य

---

1. वही, पृष्ठ 223

जेल में अवश्य डाल दिये गये थे।

"फारवर्ड ब्लॉक के इस प्रचार को सारे देश में खूब समर्थन मिला तब महात्मा गाँधी और उनके साथियों को भी एकदम महसूस हुआ कि अंग्रेजो से सहयोग की नीति का कांग्रेस को पूरी जनता का समर्थन नही मिलेगा अतः उन्होंने धीर–धीरे अपनी सोच बदलना शुरू कर दिया।[1]

"6 सितम्बर को कांग्रेस कार्यकारिणी की बर्धा में इस बात पर निर्णय करने के लिए बैठक बुलाई गयी कि युद्ध के बारे में कांग्रेस को क्या दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। सुभाष चन्द्र बोस को इसमें बुलाया गया। यद्यपि उस समय वे कार्य समिति के सदस्य नहीं थे। सुभाष चन्द्र ने इस बैठक में फारवर्ड ब्लॉक के विचार को स्पष्ट रूप से सामने रखा कि आजादी के लिए हमें फौरन संघर्ष छेड़ देना चाहिए। उन्होंने बैठक में यह भी कहा, यदि कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस बारे में आवश्यक कार्यवाही नहीं की तो फारवर्ड ब्लॉक देश के हित में जो कुछ करना ठीक समझेगा, करेगा।[2]

"इस दृढ़ रुख का यह प्रभाव पड़ा कि गाँधी पक्ष ने अंग्रेजों से सहयोग करने के विचार को पूरी तरह छोड़ दिया। इसके बाद भी लम्बे विचार विमर्श के बाद 14 सितम्बर 1940 को कांग्रेस कार्यसमिति ने एक नया प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें ब्रिटिश सरकार से यह कहा गया था कि

---

1. पूर्वोक्त।
2. वही

वह युद्ध के अपने उद्देश्यों की घोषणा करें। प्रस्ताव में आगे कहा गया था कि यदि भारत को स्वाधीनता दी जाती हैं तो एक स्वतन्त्र और प्रजातान्त्रिक भारत आक्रमण के विरुद्ध पारस्परिक सुरक्षा और आर्थिक सहयोग के लिए खुशी से अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों का साथ देगा। यह प्रस्ताव यदि वास्तव में देखा जाये तो कुछ शर्तों के साथ ब्रिटेन के युद्ध प्रयत्नों का साथ देने का प्रस्ताव था।[1]

"17 अक्टूबर को वायसराय ने कांग्रेस के इस प्रस्ताव का वक्तव्य द्वारा उत्तर दिया जो लन्दन के श्वेत पत्र के रूप में प्रकाशित हुआ। वायसराय का प्रस्ताव भारतीय प्रतिनिधियों के साथ एक संयुक्त मोर्चा स्थापित करने का था, जो वायसराय को लड़ाई के सवालों पर सलाह देता। वायसराय ने भविष्य में कभी डोमीनियम स्ट्रेटस अर्थात औपनिवेशिक दर्जा देने के प्रस्ताव को भी दुहराया था। यह वायदा दस साल पहले प्रथम बार भारत के प्रथम वायसराय लार्ड हेलीफेन्स ने भी किया था।[2]

"ब्रिटिश सरकार के इस उत्तर के अलावा भारत की जनता में जिस बात को लेकर भारी आक्रोश था, वह यह था कि एक तरफ तो मित्र राष्ट्र स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र के लिए लड़ने का दावा कर रहे थे, दूसरी ओर भारत में 1936 के भारत शासन अधिनियम को भी स्थगित कर दिया गया था और सारी शक्तियाँ वायसराय के हाथ में केन्द्रित कर दी

---

1. पूर्वोक्त।
2. नेताजी सम्पूर्ण वाड़्.मय, पृष्ठ 223

गयी थीं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर कठोर पाबन्दियाँ लगा दी गयी थीं जैसे छोटी छोटी सभाओं और प्रदर्शनों पर मनाही और बिना मुकदमा चलाए जेल में डालना आम बात थी।[1] हर प्रकार के प्रदर्शन पर विभिन्न प्रकार की पाबन्दियाँ लगा दीं गयीं जो लोग आन्दोलन में शामिल थे उनके साथ विभिन्न प्रकार के अत्याचार और प्रताड़नायें दी गयीं। सुभाष चन्द्र बोस का दृष्टिकोण उच्च आकांक्षाओं एवं आशाओं से परिपूर्ण था। उनके विचारों में देश की आजादी प्रमुख थी।

"सुभाष चन्द्र बोस का यह निश्चित मत था कि यदि कांग्रेस ने प्रारम्भ से ही युद्ध का दृढ़तापूर्वक विरोध, साहस पूर्ण और स्पष्टतौर पर किया होता तो निश्चित ही भारत में युद्ध के लिए उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ा होता। बंगाल में जहाँ सुभाष चन्द्र बोस का घर था यहां से सविनय अवज्ञा आन्दोलन बड़े जोश और उत्साह से चला और सुभाष चन्द्र बोस को भी कार्यकर्ताओ के साथ जेल में भेज दिया गया।[2]

जेल जाने से पूर्व सुभाष चन्द्र बोस की जून 1940 में गाँधी जी से एक लम्बी वार्ता हुयी। उस समय भारत में फ्रान्स की सेनायें बड़े विजयोल्लास के साथ पेरिस में दाखिल हो चुकी थीं। इंग्लैण्ड व भारत दोनों जगह ब्रिटेन का मनोवल गिरा हुआ था।[3]

---

1. वही, पृ0 224
2. पूर्वोक्त
3. वही, पृष्ठ 224

"भारत में फारवर्ड ब्लॉक ने जो सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया था, वह तेजी से चल रहा था। यद्यपि इसके सैकड़ों नेता जेल भेजे जा चुके थे। अतः ऐसे उपयुक्त अवसर पर सुभाष चन्द्र बोस ने महात्मा गाँधी जी से भी आकर अपना सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करने की भावभीनी अपील की थी। क्योंकि यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश साम्राज्य अब समाप्त हो जायेगा और यह भारत के लिए युद्ध में अपनी भूमिका अदा करने का सबसे अच्छा अवसर है, परन्तु महात्मा गाँधी अब भी युद्ध करने का वचन देने के लिए तैयार नही थे, उन्होने फिर वही अपनी राम कहानी दुहरा दी कि मेरी दृष्टि में देश संघर्ष के लिए तैयार नहीं है और इस समय यदि संघर्ष की नौवत लाई गयी तो लाभ के वजाय भारत को क्षति अधिक उठानी पड़ेगी। खैर बहुत लम्बी और दकियानूसी बातचीत के बाद उन्होंने यह कहा कि तो मैं (महात्मा गाँधी) तुम्हें बधाई का तार भेजने बाला पहला व्यक्ति होऊँगा। सुभाष चन्द्र बोस एक वामपंथी विचारधारा से थे। उनके विचारों में देश को आजाद कराने की प्राथमिकता एवं वरीयता थी। गाँधी और बोस की विचारधारा में समतुल्यता नहीं थी।

सुभाष चन्द्र बोस ने इस मौके पर भारत के तत्कालीन अन्य संगठनो से भी बातचीत की जैसे कि आल इण्डिया मुस्लिम लीग के मि. जिन्ना से अ.भा.हिन्दु महासभा के अध्यक्ष वीर सावरकर से। उस समय जिन्ना अंग्रेजो की मदद से पाकिस्तान की अपनी योजना पूरी करने की बात सोच रहे थे। अतः कांग्रेस के साथ मिलकर भारत की आजादी के लिए राष्ट्रीय

संघर्ष छेड़ने के सुभाषचन्द्र बोस के विचारों और भावनाओं का जिन्ना पर जरा भी प्रभाव नही पड़ा यद्यपि सुभाषचन्द्र बोस ने सुझाव दिया कि इस प्रकार मिलजुल कर संघर्ष किया गया तो स्वतन्त्र भारत के पहले प्रधानमन्त्री वे ही होंगे।[1]

"श्री सावरकर अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति से बिल्कुल अनभिज्ञ दिखाई देते थे और उस समय यही सोच रहे थे कि ब्रिटेन की भारत में जो सेना है, इसमें घुस कर हिन्दू किस प्रकार सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करें। इन मुलाकातों के बाद सुभाष चन्द्र बोस इस नतीजे पर पहुंचे थे कि मुस्लिम लीग या हिन्दू महासभा की कोई आशा नही की जा सकती है।[2] क्योंकि दोनों पार्टियां अपने–अपने विचारों में भिन्न थीं तथा जिन्ना की कूटनीति देश के हित में नहीं थी। जिन्ना पाकिस्तान को प्राथमिकता देने की सोच रहे थे।

30 मई 1940 को नेहरू ने तो बड़ा आश्चर्यजनक वक्तब्य दे डाला जिसमें उन्होंने कहा था "ऐसे वक्त जब ब्रिटेन जीवन और मृत्यु के संघर्ष में लिप्त है उस समय सत्याग्रह का सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करना भारत के सम्मान के लिए घातक होगा"। इसी प्रकार महात्मा जी ने कहा था कि "हम ब्रिटेन के विनाश के बदले अपनी आजादी नही लेना

---

1. पूर्वोक्त पृष्ठ 224
2. वही

चाहते। यह अंहिंसा का तरीका नही है। इससे यह साफ हो गया था कि गाँधीवादी लोग अंग्रेजों से उस समय समझौता करने की कोशिश कर रहे थे।"[1]

"27 जुलाई 1940 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने पूना की बैठक में जिसमें महात्मा गाँधी उपस्थित नहीं थे। इस शर्त के साथ कि यदि भारत की आजादी को कांग्रेस की माँग मान ली जाती है तो ब्रिटेन के युद्ध प्रयत्नों में सहयोग का प्रस्ताव किया है। इस समय महात्मा गाँधी कांग्रेस के नेतृत्व से अलग हो गये थे क्योंकि अहिंसा में अपनी आस्था के कारण उनके लिए युद्ध के प्रयास का समर्थन करना कठिन था।[2] गाँधी जी के विचारों में अहिंसा समाई हुई थी। अहिंसा उनका मूल मंत्र था। उनके विचारों और भावनाओं में अहिंसा ही भरी हुई थी।

"8 अगस्त 1940 के भारत के तत्कालीन वायसराय ने कांग्रेस के इस प्रस्ताव का जबाव दिया, जिसमें उन्होने अपनी कार्यकारी परिषद में तथा सलाहकार परिषद में और अधिक भारतीयो को जैसे की पेशकश की, लेकिन यह तो स्वतन्त्रता तो क्या उससे मिलती जुलती चीज भी नही थी।[3]

"इसी बीच सुभाष चन्द्र बोस की गिरफ्तारी के बाद फारवर्ड ब्लॉक

---

1. वही
2. पूर्वोक्ति, पृष्ठ 225
3. वही

का प्रचार और जोरों से चलता रहा, जिसने उस समय गांधीवादी कार्यकर्ताओं को भी प्रभावित किया। इस आदेश के बावजूद कि गांधी समर्थन के अनुभवी किसी भी शान्तिपूर्ण आन्दोलन में भाग नहीं ले। इस पक्ष के कार्यकर्ताओं के विशेषकर स्वयं सेवकों ने कुछ प्रान्तों में प्रचार करना शुरू कर दिया, जिस कारण कई गाँधीवादी नेता चिन्तित हो उठे। इनमें कुछ महात्मा गाँधी पर संघर्ष छोड़ने के लिए दबाव डालने लगे। उनका कहना था कि ऐसा करने पर देश में उनका प्रभाव और गरिमा समाप्त हो जायेगी। कुछ ने तो आदेश मिलने की प्रतीक्षा किए बिना ही धीरे धीरे इस संघर्ष में शामिल होना शुरू कर दिया। अन्त में गाँधी जी को ही झुकना पड़ा। 15 सितम्बर 1940 को कांग्रेस ने सहयोग के आश्वासन को वापिस ले लिया और महात्मा गाँधी को कांग्रेस का नेतृत्व करने के लिए बुलाया।[1]

"अक्टूबर में गाँधी जी ने घोषणा की कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार के युद्ध प्रयत्नो के खिलाफ आन्दोलन शुरू करने का फैंसला किया है लेकिन यह आन्दोलन बड़े पैमाने पर नहीं होगा।[2]

"नवम्बर 1940 में गाँधी जी का प्रचार शुरू हुआ और कुछ ही समय में जब प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रियो और सैकड़ो कार्यकर्ताओं को जिन्होंने इसमें भाग लिया गिरफ्तार कर लिया गया। यह फारवर्ड ब्लॉक और सुभाष

---

1. पूर्वोक्ति, पृ0 225
2. वही

के प्रयत्नों का प्रतिफल था।

''1940–41 का अभियान गाँधी जी ने इस उत्साह से नही चलाया, जिस उत्साह से 1920–21 और 1930–33 तक का सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया गया था। यद्यपि देश क्रांन्ति के लिए अधिक अच्छी तरह तैयार था।[1]

''स्पष्ट है कि महत्मा गाँधी अभी भी समझौते के लिए द्वार खुले रखना चाहते थे। वे जानते थे कि यदि आन्दोलन तीव्रता के साथ चलाया जायेगा तो ब्रिटिश सरकार नाराज हो जायेगी तो समझौता सम्भंव नही होगा। दूसरी और फारवर्ड ब्लॉक इस बात से अधिक खुश था कि महात्मा गाँधी को मजबूर होकर कुछ करना पड़ा। अब क्योंकि कांग्रेस के दोनो ही पक्ष गाँधीवादी और फारवर्ड ब्लॉक ब्रिटिश विरोधी और युद्ध विरोधी नीति अपना चुके थे, इसलिए अब भारत की आजादी प्राप्त करने के लिए और बड़ी योजनायें और कार्यवाही का अवसर था।[2]

''उस समय सुभाष चन्द्र बोस को बिना मुकदमा चलाए जेल भेज दिया गया था। उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो गया था और ब्रिटिश साम्राज्य चाहे जितनी बुरी हालत में हो, यह भारत की सत्ता भारतवासियों को कभी नही सौपेंगी और भारतवासियों को अपनी आजदी के लिए स्वयं ही लड़ना पड़ेगा। सुभाष चन्द्र बोस फारवर्ड ब्लॉक के अग्रगामी दूत एवं समर्पित

---

1. पूर्वोक्ति, पृ0 225
2. वही

कार्यकर्ता थे। उनकी भावनायें तथा दृष्टिकोण भारतवासियों को हर प्रकार से खुश करने का था। उनके जीवन में त्याग एवं आत्म बलिदान और आत्म–स्वाभिमान की भावना थी।

"सुभाष चन्द्र बोस का यह भी दृढ़ विश्वास था कि भारत को तभी आजादी मिल सकती है जबकि वह ब्रिटेन के विरुद्ध लड़ाई में हिस्सा लें और उन शक्तियों से मिलकर काम करे जो ब्रिटेन से लड़ रही है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि अब भारत को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में खुलकर हिस्सा लेना चाहिए।[1]

---

1. पूर्वोक्ति, पृ0 225

अध्याय - पंचम

आजाद हिन्द सरकार और सुभाष चन्द्रबोस

(अ) पलायन।

(ब) आजाद हिन्द सरकार का संगठन।

(स) आजाद हिन्द सरकार के कार्य।

(द) वामपंथियों का समाज पर प्रभाव।

Netaji in Germany With Hitler

आजाद हिन्द सरकार और सुभाष चन्द्र बोस

1. पलायन :

अध्यक्ष पद से त्याग पत्र देने के बाद सुभाषचन्द्र बोस ने फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना की थी। फारवर्ड ब्लॉक ने कांग्रेस के समझौतावादी सच का विरोध कर सम्पूर्ण भारत में एक ऐसा वातावरण तैयार कर दिया, जिससे राष्ट्रीय कांग्रेस को मजबूर होकर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भारत छोड़ो आन्दोलन चलाने के लिए विवश होना पड़ा था।[1]

फारवर्ड ब्लॉक से ब्रिटिश सरकार बुरी तरह चिढ़ी हुयी थी। सुभाष बाबू की सफलता से देश में नवीन जोश व्याप्त हो गया था सुभाष चन्द्र बोस का विचार था कि यही वह समय था जब सरकार के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा जा सकता था। कांग्रेस अंग्रेज सरकार के प्रति एकाएक आन्दोलन नहीं छेड़ना चाहती थी परन्तु फारवर्ड ब्लॉक संग्राम छेड़ने के पक्ष में था।[2]

''सुभाष चन्द्र बोस जानते थे कि यह वह समय है जब ब्रिटिश सरकार हिटलर के भय से आतंकित थी और यदि इस आन्दोलन को तेज कर दिया जाता तो सरकार को भारत की स्वतन्त्रता की मांग मानने के

---

1. बोस सुभाष चन्द्र : नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय पूर्वोक्त, पृ0 226

2. वही, पृ0 218 से 219

लिए विवश होना पड़ता।[1]

"सुभाष चन्द्र बोस ने समस्त देश की यात्रा की थी। वास्तव में वह देश में क्रान्ति का सृजन कर रहे थे। वे क्रांन्ति का बिगुल फूंक रहे थे। उनके क्रांन्तिवाद से ब्रिटिश सरकार भयभीत हो गयी थी। सुभाष चन्द्र बोस की क्रान्तिकारी नीतियों में त्याग एवं संघर्ष की भावना थी। वह वास्तव में देशप्रेमी थे।

"यह वह समय था जब एक ओर हिटलर का भयानक स्वप्न तो दूसरी ओर सुभाष बाबू द्वारा लगाई गई आग ब्रिटिश सरकार की नींदें हराम कर रही थी। सुभाष बाबू के जोशीले भाषण ने सरकार की नींद हराम कर दी थी। सुभाष बाबू के जोशीले भाषण भारतीय जनता पर आश्चर्यजनक प्रभाव डाल रहे थे।[2]

यूरोप में युद्ध छिड़ने ही भारत के वायसराय ने बिना किसी की सलाह लिए भारत को युद्ध में शामिल कर दिया था। सुभाष और उनके फारवर्ड ब्लॉक ने इसका जमकर विरोध किया था।

"जब ब्रिटिश सरकार ने यह देखा कि सुभाष और फारवर्ड ब्लॉक के कार्यकर्ता ब्रिटिश सरकार के युद्ध प्रयत्नों में अवरोध उत्पन्न कर रहे थे तो उन्होंने सुभाष चन्द्र बोस को उनके साथियों सहित भारत रक्षा अधिनियम

---

1. जनरल मोहन सिंह : कांग्रेस जनमास्कड पूर्वोक्त पृ0 118

2. पूर्वोक्ति

के तहत बन्द कर दिया।[1]

"सुभाष चन्द्र बोस ने 5 जुलाई 1940 से कलकत्ता में हालवेल स्मारक को हटाने के लिए आन्दोलन शुरू किया था। सरकार ने उन्हें इस आन्दोलन के सन्दर्भ में बन्दी बना लिया था। सुभाष वर्षों तक ब्रिटिश सरकार की जेलों में रह चुके थे, परन्तु अब उन्हें ब्रिटिश सरकार की जेलों में लाभ के स्थान पर नुक्सान अधिक दिखाई दिया, क्योंकि वे जानते थे कि यह वह समय है जबकि गरम लोहा वाला सिद्धान्त ब्रिटिश सरकार पर लागू होता है। इस समय जेल में बन्द रहने का अर्थ था, निष्क्रियता, निकम्मापन, अकर्मण्यता, लक्ष्य का अधूरापन। अतः नवम्बर 1940 में सुभाष चन्द्र बोस ने अपनी गैर कानूनी नजर बन्दी के विरोध में अनशन प्रारम्भ कर दिया। इस अनशन में सुभाष चन्द्र बोस ने सरकारी अधिकारियों को यह धमकी दी थी कि उन्हें छोड़ दिया जाए, अन्यथा वे अपनी जान दे देंगे।

"इस अनशन के सम्बन्ध में सुभाष चन्द्र बोस ने अपनी आत्मकथा में लिखा है "अब तक मैं ग्यारह बार अंग्रेजों की जेलों में रह चुका था, लेकिन मैने अब यह अनुभव किया है कि जब इतिहास का निर्माण कहीं और हो रहा हो, तो जेलों के सीखचों में निष्क्रिय रूप से बन्द पड़े रहना बहुत बड़ी राजनीतिक भूल होगी। मैने कानूनी तौर से जेल से बाहर जाने की तरकीव सोची, पर ऐसी कोई तरकीब नजर नही आई क्योंकि ब्रिटिश

---

1. मजूमदार : पूर्वोक्त

सरकार युद्ध के दौरान मुझे जेल मे बन्द रखने का पूरा निश्चय कर चुकी थी। (इस पर मैंने सरकार को अल्टीमेटम दे दिया कि उसके पास मुझे जेल में रखने का कोई गैर कानूनी नैतिक औचित्य नहीं है और यदि मुझे नही छोड़ा गया तो मैं आमरण अनशन कर दूँगा। मैंने जिन्दा या मुर्दा जेल से बाहर आने का दृढ़ संकल्प लिया।

"सरकार ने इस अल्टीमेटम को मजाक बनाकर उड़ा दिया और कोई जबाव नही दिया। अन्तिम समय में गृहमंत्री ने मेरे भाई शरद चन्द्र बोस को मुझे यह बताने का अनुरोध किया कि वह मेरा पागलपन है और सरकार इस बारे में कुछ भी नही करेगी। मेरे भाई ने बताया कि सरकार का रवैया बड़ा अमैत्रीपूर्ण, अमानवीय एवं हिंसक है, मैंने अपना अनशन प्रारम्भ कर दिया, परन्तु सातवें दिन ही सरकार को लगा कि कहीं ये जेल में ही मर न जाये। जल्द उच्च्च अधिकारियों ने एक गुप्त बैठक बुलाई, जिसमें मुझे इस इरादे से रिहा करने का निश्चय किया गया कि एक–आध महीने में ठीक होने पर मुझे पुनः गिरफ्तार कर लिया जायेगा।[1]

"इसी अवसर पर सुभाष चन्द्र बोस ने अपने देश की जनता के नाम एक अपील जारी की थी। वह अपील थी– "कोई भी वलिदान निरर्थक नही जाता, कष्ट हो सकता है। प्रत्येक युग या जलवायु के लिए एक ही सनातन नियम है शहीद का खून ही आजादी का बीज है।[2]

---

1. नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय, पृष्ठ 226–27

2. नागपाल ओम : "राष्ट्रीय आन्दोलन" कमल प्रकाशन इन्दौर, पृष्ठ 370

"सुभाष चन्द्र बोस ने इसी समय भारतीय जनता को यह सन्देश दिया था कि "इस नाशवान जगत में प्रत्येक चीज नष्ट हो जाती हैं। प्रत्येक वस्तु नष्ट हो जायेगी परन्तु विचार और आदर्श नष्ट नहीं होंगे। एक व्यक्ति एक विचार के लिए ही मर सकता है, परन्तु वह विचार उसकी मृत्यु के अनन्तर सैकड़ों जीवन्त रूपों में अवतरित होता है। विकास का रथ इसी प्रकार चलता रहता है। एक पीढ़ी से उत्पन्न विचार आगामी पीढ़ी को प्राप्त होते रहते हैं। कष्ट सहन एवं बलिदान के संकट से गुजरे बिना कोई भी विचार इस संसार में पूरा नही हुआ।"[1]

"सुभाष ने कहा था– "अपने देशवासियों से मैं कहता हूँ मत भूलो कि गुलाम रहने से बड़ा कोई अभिशाप नही हैं, मत भूलो की अन्याय और उत्पीड़न से समझौता करना सबसे बड़ा पाप हैं। इस सनातन नियम को याद रखो कि अन्याय के विरुद्ध लड़ना सबसे बड़ा गुण है फिर चाहे इसके लिए जो भी मूल्य चुकाना पड़े।[2]

"इस अनशन के कारण सुभाष काफी दुर्बल हो गये थे। अतः दिसम्बर 1940 में सरकार ने उन्हें अस्वस्थता के कारण जेल से रिहा कर दिया।[3]

सुभाष चन्द्र बोस ने जेल में कई प्रकार की यातनायें और दुख

---

1. अग्रवाल गिरिराज शरण : पूर्वोद्धित
2. वही
3. नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय, पृ0 227

सहे। लेकिन बोस का लक्ष्य दृढ़, परिपक्व एवं उत्कृष्ट था। वह अपने जीवन में कभी निराश व हतोत्साहित नहीं हुये। वह वास्तव में एक कर्मठ एवं शक्तिशाली स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंनें जीवन में कभी हार नहीं मानी तथा जीवन को त्यागमयी एवं आदर्शमयी प्रतिमानों पर केन्द्रित किया।

सुभाष चन्द्र बोस को सरकार ने जेल से तो रिहा कर दिया, परन्तु वह उन्हें इतना खतरनाक समझती थी कि उनकी गतिविधियों पर कड़ी नजर रखना उसे बहुत आवश्यक लगा। अतः इस तरह का प्रबन्ध किया गया कि वे अपने घर के अन्दर ही नजरबन्द कर दिये गये। नजरबन्द रखना एक प्रकार का सामाजिक, नैतिक एवं मानसिक शोषण है। नजरबन्द से जीवन का विकास अवरुद्ध हो जाता है। जीवन एक स्थान पर सिमट कर रह जाता है जिससे जीवन में नीरसता एवं कटुता पैदा हो जाती है।

"रिहा होने के बाद सुभाष चन्द्र बोस लगभग 40 दिन तक अपने कमरे में ही बन्द रहे। वे एक मिनट को भी बाहर नही निकले। इस अवधि मे वे युद्ध की सारी स्थिति का जायजा लेते रहे और इस निर्णय पर पहुंचे कि भारत के स्वतन्त्रता सेनानियों का, विदेशों में क्या हो रहा है? उनका कहना था कि इस बात की उन्हें पूरी–पूरी जानकारी होनी चाहिए और ब्रिटेन के खिलाफ युद्ध में हिस्सा लेकर ब्रिटेन को तोड़ने में अपना योगदान करना चाहिए।[1]

---

1. नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय, पृ0 226–27

पलायन के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है कि "काफी सोच विचार करने के बाद मेरे सामने बस यही एक रास्ता था कि मैं खुद विदेश जाऊँ। जनवरी 1941 के अन्त में एक दिन काफी सोच विचार करने के बाद मैं अपने घर से निकल पड़ा। यद्यपि गुप्तचर पुलिस सदैव मेरे पीछे रहती थी, लेकिन मैं किसी प्रकार साहसिक सफर के बाद भारत की सीमा पार करने में सफल हो गया।[1]

सुभाष चन्द्र बोस ने 16 जनवरी 1941 को रात में लगभग सवा एक बजे घर छोड़ा और वहां से रेलगाड़ी पकड़कर पेशावर गये।[2]

"सुभाष चन्द्र बोस जमसद होकर तथा डेडी का तला को बगल में छोड़ते हुये गढ़ी पहुंचे, उन्होंने गढ़ी में रात बिताई। उन्होंने भारतीय सीमा को पैदल पार किया था। शाम तक वे भारत की सीमा पार करके आजाद पठानों के छोटे से गाँव में पहुंच गये थे। वहाँ एक प्रसिद्ध जगह है, जिसे अड्डा शरीफ कहते है। वहाँ के पीर बाबा ने उनके लिए पूरा प्रबन्ध कर रखा था। रात पीर बाबा की मस्जिद में ही व्यतीत की। पैदल ही रात को 7 बजे वे लालपुरी पहुंचे। लालपुरी एक छोटा सा गाँव है जहाँ काबुल नदी बहती है। रात्रि विश्राम उन्होंने यहीं किया। वहाँ पर वे एक खान के मेहमान थे। उन्होंने एक परिचय पत्र दिया था। जिसमें लिखा था कि

---

1. वही।

2. सुभाष चन्द्र बोस ने वस्तुत : 16 जनवरी को ही घर छोड़ दिया था, परन्तु घर बालों ने इस बात को दुपाकर राज को 26 जनवरी को प्रकट किया।

जिआऊद्दीन और रहमत खाँ भारत के एक स्वतन्त्र कबीले में रहने वाले है और मैं इन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। ये सखी साहब की जियारत करने जा रहे हैं। अतः सड़क पर चैकिंग से बचने के लिए सुभाष ने काबुल नदी मंशक द्वारा तैरकर पार की थी और एक ट्रक के ऊपर पेटियों पर बैठकर जलालाबाद पहुँचे। जलालाबाद में तांगे से चलकर अड्डा शरीफ पहँचे थे। वहां हाजी मुहम्मद आमीन, जो भगतराम के क्रान्तिकारी साथी के रूप में जेल मे रह चुका था, अतः उसने भगतराम और सुभाष को काबुल तक पहुंचने में मदद की।[1]

श्री सुभाष चन्द्र बोस भारत से पेशावर के रास्ते अफगानिस्तान पहुंचे थे। और अपने एक साथी भगतराम के साथ काबुल की एक सराय में ठहर गये थे। ये दोनों भी पठानी वेश–भूषा में थे। श्री बोस गूंगे और वहरे होने का अभिनय कर रहे थे और उनका नाम जियाउद्दीन बताया गया था। श्री भगतराम ने अपना नाम रहमत खां घोषित कर रखा था। काबुल की वह सराय, जिसमें वे ठहरे थे, काफी गन्दी थी तथा उसमें ऊँट तथा गधे वाले व्यापारी ठहरा करते थे। रात भर उन लोगों ने खुले ट्रक में यात्रा की थी, इसलिए यह गन्दी सराय भी उन्हें भली लगी। यहां भी उनके पीछे पुलिस पड़ गयी थी। पुलिस वालों से भगतराम ने यह कह रखा था कि मैं रहमत खाँ हूँ और यह मेरा गूंगा– बहरा भाई हैं। हम

---

1. अग्रवाल गिरिराज शरण : पूर्वाद्धत, पृ0 99

लोग सखी साहब की जियारत के लिए जा रहे हैं परन्तु सखी साहब के मार्ग में वर्फ गिर जाने से हमें इस सराय में ठहरना पड़ा है पुलिस वाला उनसे रूपये ऐंठना चाहता था और सुभाषचन्द्र बोस की घड़ी भी, जो भगत ने पहन रखी थी, उसने ऐंठ ली।[1]

"सुभाष चन्द्र बोस ने इस सराय को छोड़ दिया। इसी बीच भगतराम ने उत्तम चन्द्र मेहरोत्रा के साथ दुकान खोल ली थी। जिन्होंनें शेष दिनों काबुल में सुभाष चन्द्र को शरण दी थी। उत्तम चन्द्र भी भगतराम के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन में पेशावर जेल में रहे थे।

"काबुल में सुभाष चन्द्र बोस के लिए भगतराम ने सोवियत राजदूत से मिलने का प्रयास किया। इसमें सबसे बड़ी समस्या यह थी कि उस समय काबुल में हर दूतावास के सामने अफगान पहरा रहता था और किसी भी संदिग्ध और अपरिचित व्यक्ति को नही जाने दिया जाता था। भगतराम को न तो फारसी आती थी न रूसी। सोवियत रूस के राजदूत से मिलने के लिए एक दिन भगतराम और सुभाष चन्द्र बोस अफगान वेश में दूतावास के बाहर बैठ गये। जब रूस के राजदूत की कार बाहर निकली तो रहमत खाँ ने कार को रोककर टूटी–फूटी फारसी में सोवियत राजदूत से निवेदन किया, कि उनके साथ सुभाष चन्द्र बोस हैं और उन्हें सोवियत संघ पहुँचाने का प्रबन्ध किया जाये। इसमें सोवियत राजदूत ने यह शंका प्रकट की कि

---

1. त्रिपाठी, बचनेश : सुभाष बोस काबुल से वर्लिन कैसे पहुंचे? (लेख) धर्मयुग (गणतन्त्र विशेषंक), 1983 (नेताजी के सहयोगी भगतराम से वार्ता कथा)।

इस बात का प्रमाण क्या है कि जो व्यक्ति अपने को सुभाष बता रहा है, वह सुभाष ही है रहमत खाँ बने भगतराम भाषा की कठिनाई के कारण अपनी बात ठीक ढंग से नहीं बता सके।[1]

इसके बाद भगतराम ऊर्फ रहमत खां ने इटली के दूतावास से सम्पर्क स्थापित किया। इटली के राजदूत सुभाष चन्द्र बोस को बर्लिन भेजने के लिए सहमत हो गये और उन्होंने इस सम्बन्ध में सुविधाओं का प्रबन्ध करने का आश्वासन दिया। इटली के दूतावास के सम्पर्क का माध्यम एक हरथा मरा नामक व्यक्ति बना था। इटली के राजदूत के पत्र उसकी पत्नी ने स्वयं पढ़े। इटली के राजदूत के पत्र उसकी पत्नी स्वयं उत्तम चन्द्र मेहरोत्रा की दुकान पर दे जाती थी। इटली के राजदूत ने इस सम्बन्ध में रूस से भी सहयोग लेने का प्रयास किया परन्तु सोवियत राजदूत ने इस सम्बन्ध में कोई उत्साह नही दिखाया। अन्त में यह निर्णय किया गया कि सुभाष चन्द्र बोस का पासपोर्ट इटली के आइलैण्डो मजोड़ा के नाम से तैयार होगा। सुभाष चन्द्र बोस को काबुल से निकालकर सुरक्षित बर्लिन पहुँचाने का दायित्व इटली के सहायक राजदूत करोसनी साहब को सौपा गया।[2]

"सुभाष चन्द्र बोस ने 18 मार्च 1941 को कार द्वारा एक इटालियन तथा दो जर्मन सहायको के साथ प्रस्थान किया। रूस की सीमा

---

1. पूर्वोक्त।

2. पूर्वोक्त।

की ओर यात्रा प्रारम्भ की। दो जर्मन सहायकों में एक डा0 वैलेट थे उनका सामान एक दूसरी कार से भेजा गया। 18 मार्च को ही सुभाष रूसी सीमा के एक गाँव में पहुँच गये, जहाँ उन्होंने रात बिताई। 20 मार्च को रेल द्वारा उन्होंने मास्को के लिए प्रस्थान किया।[1]

"मास्को पहुंचने के लिए उन्हे बुखारा और समरकन्द होकर जाना पड़ा। मास्को से श्री बोस ने 28 मार्च 1941 को वायुयान द्वारा वर्लिन के लिए प्रस्थान किया। सोवियत रूस की सरकार ने सुभाषचन्द्र बोस के वर्लिन जाने में रुकावट नही डाली।[2]

3 अप्रैल 1941 को सुभाष चन्द्र बोस वर्लिन पहुँच गये। सुभाष चन्द्र की इस यात्रा को अत्यन्त गोपनीय रखा गया था। इसकी सूचना केवल जर्मन वैदेशिक विभाग को दी गयी तथा उसने सुभाष चन्द्र बोस के स्वागत तथा उनको ठहराने का पूरा बन्दोवस्त कर रखा था। इस कार्यभार को सम्भालने की जिम्मेदारी जर्मन वैदेशिक विभाग में भारतीय मामलो के अध्यक्ष वानट्राट को दी गयी थी। उन्होंने सुभाष के इस पलायन में पूरी– पूरी मदद की। वर्लिन में बोस का निवास सौफिन्स ट्रैसी क्षेत्र था । यहाँ पहिले अमेंरिकी फौजी सहायक निवास करता था।[3]

---

1. सरल, श्रीकृष्ण, नेताजी सुभाष जर्मनी में।
2. वही
3. पूर्वोक्ति, पृष्ठ 20

''जर्मन विदेश विभाग में विशेष रूप से सुभाष चन्द्र बोस को सहयोग देने के लिये एक शाखा भारतीय मामलों में विशेषज्ञों की स्थापित की गयी। इसका नाम ''स्पेशल इण्डिया डिवीजन'' रखा गया था। इस शाखा के भारतीय सचिव थे श्री विलहैम कैपलर, जो जर्मनी के विदेशमंत्री से सम्बद्ध थे। स्पेशल इण्डिया डिवीजन के सर्वोच्च अधिकारी थे श्री आदम बान ट्राट और उनके सहायक थे श्री अलेक्जेण्डर वर्क। अन्य अधिकारियों में प्रमुख थे श्री एच0 जी. लीजालेड, ट्रम्प, प्रोफेसर अल्संपार्फ। आसमझ फर्टबैगलर ,कु0 डाक्टर क्रेशमर (जो बाद में श्रीमती मुखर्जी बनी) बान लेविस्को तथा पानजित जैविजा,

इस शाखा के सभी पदाधिकारियों में मतैक्य था। ये लोग सुभाष चन्द्र बोस के व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित थे।[1]

सुभाष चन्द्र बोस के लिए जर्मनी नया नहीं था। इससे पूर्व भी 1935 में वे जर्मनी में रह चुके थे। इस काल में श्री बोस एक साधारण व्यक्ति की हैसियत से जर्मनी मे रह रहे थे। उन्होंने उस समय 1935 में कई स्थानों पर भारत की आजादी के विषय पर भाषण भी दिये थे और जर्मनी जनमत को भारत के पक्ष में तैयार किया था । यदि उस समय बोस सरकारी मेहमान की हैसियत से जर्मनी में रहे होते तो उन्हे केवल वे ही स्थान दिखाये जाते जो दिखाना आवश्यक होते। तब वे जर्मनी के

---

1. विधालकर सत्यमेदव श्री रामसिंह रावल, मारवाडी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 18

बारे में सही जानकारी प्राप्त नही कर पाते। इसके विपरीत एक साधारण नागरिक की हैसियत से सुभाष ने उन लोगों के बीच घुल मिलकर उनका सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन काफी निकट से देखा था। साथ ही साथ राजनीतिक गतिविधियों का भी अध्ययन किया था। सुभाष चन्द्र ने उसी समय जर्मनी की राष्ट्रीय योजनाओं को देखा था। उन्होंने यह देखा कि जर्मनी किस प्रकार राष्ट्रीय योजनाओं द्वारा अपने यहां औद्योगिक विकास के साथ–साथ कृषि के त्वरित विकास की ओर ध्यान दे रहा है।

"सुभाष चन्द्र बोस ने देखा कि हिटलर ने जर्मनी में युवक युवतियों के लिए अनिवार्य सैन्य सेवा का प्रावधान कर रखा था। 1939 में जब सुभाष चन्द्र बोस भारत में कांग्रेस अध्यक्ष चुने गये तो इसी कारण उन्होंने कांग्रेस में सैन्य विभाग का संगठन किया। 1935 में ही सुभाष चन्द्र बोस ने यह देख लिया था कि जर्मनी में यहूदियों और समाजवादियों का किस प्रकार दमन किया जाता है। इस प्रकार जर्मनी में आने के पूर्व ही सुभाष जर्मनी के बारे में बहुत कुछ जानते थे।[1]

"इस बार सुभाष चन्द्र बोस जर्मन सरकार के राजकीय मेहमान थे। इसमें उनका उद्देश्य अपने देश की आजादी में जर्मन सहायता लेना था। जर्मन सरकार की ओर से हिटलर के दाऐं हाथ रिवेन टोष ने उनका स्वागत किया था। सुभाष चन्द्र बोस ने जर्मन सरकार के समक्ष यह महत्वपूर्ण

---

1. सुभाष चन्द्र बोस न अपने इस जर्मन प्रयास का थोड़ा वर्णन इंडियन स्ट्रगल के द्वितीय खण्ड में किया है इसके लिए देखिये नेताजी सम्पूर्ण वाड्.मय खण्ड–2, पृष्ठ 212

प्रस्ताव रखा था कि :-

1- उन्हें वर्लिन रेडियो से ब्रिटिश विरोधी प्रचार करने की अनुमति दी जाये।

2- जर्मनी मे भारतीय युद्धबन्दियों को चुनकर उन्हें आजाद हिन्द फौज बनाने की अनुमति दी जाये।

3- धुरी राष्ट्र जर्मनी, इटली, जापान द्वारा भारतीय स्वाधीनता घोषणा के प्रथम दो प्रस्ताव तो तुरन्त मान लिए गये, परन्तु तीसरे के लिए अभी उपयुक्त अवसर नही बताया गया।[1]

सुभाष चन्द्र बोस की जर्मन यात्रा का उद्देश्य वैदेशिक सहायता से भारत की आजादी हेतुं मदद प्राप्त करना था। उनकी पहली पसन्द रूस थी; परन्तु रूस से निराश होकर उन्होंने जर्मनी को चुना था।[2]

सुभाष चन्द्र बोस की ओर इटली के मुसोलिनी ने भी सहयोग का हाथ बढ़ाया और भारत की आजादी के लिए इटली को अपना कार्य क्षेत्र बनाने का आव्हान किया था। सुभाष चन्द्र बोस तथा मुसोलिनी की भेंट एक बार पहिले भी हो चुकी थी और मुसोलिनी श्री बोस से काफी प्रभावित थे, परन्तु सुभाष चन्द्र बोस ने देखा कि तत्कालीन इटली की परिस्थितियाँ उनके इतने पक्ष में नहीं थी जिससे कि उन्हें वहाँ अपना कार्य क्षेत्र बनाने में आर्थिक कठिनाई होती। वे इस तथ्य से परिचित थे कि इटली शक्ति

---

1. अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम में कमिलन, पृ0 736

2. सरल श्री कृष्ण : पूर्वोक्ति, पृ0 31

की दृष्टि से उतना मजबूत नही है क्योंकि तत्कालीन रोम अन्तर्राष्ट्रीय जासूसी का अड्डा बना हुआा था। अतः रोम में गोपनीय कार्य करने की सुविधा प्राप्त नहीं थी।

"यद्यपि सुभाष चन्द्र बोस हिटलर के प्रशंसक नहीं थे। पत्र व्यवहार द्वारा इसकी आजमाइश भी हो चुकी थी और उन्होंने हिटलर को झुकने पर विवश कर दिया था, अतः उन्हे जर्मनी ही अधिक उपयुक्त लगा।[1]

प्रारम्भ में जर्मनी में सुभाष चन्द्र बोस आरलैण्डो मजोडा के नकली नाम से रह रहे थे। यह बात जर्मनी के भी गिने चुने लोगों को ही पता थी कि वे सुभाष चन्द्र बोस हैं। प्रारम्भ मे उन्हें वर्लिन के एक प्रसिद्ध होटल एक्सलेण्ड में ठहराया गया था। उनके आराम के लिए नौकर–चाकरों इत्यादि की हर प्रकार की सुविधा जर्मन सरकार ने जुटा रखी थी। उन पर कोई प्रतिबन्ध नही था, वे कहीं भी घूम फिर सकते थे, परन्तु उनका मुख्य लक्ष्य पूरा नही हो रहा था, उसमें अनावश्यक विलम्ब हो रहा था इसके लिए उन्होंने जर्मन अधिकारियों को लताड़ा भी था।[2] "जर्मनी में सुभाष चन्द्र बोस को अपनी योजनाओं एवं उद्देश्य को पूरा करने में काफी समय लग गया। श्री बोस 3 अप्रैल 1941 को वर्लिन पहुँचे थे। उनकी योजना

---

1. पूर्वोक्ति।

2. एकबार तो चिढ़कर उन्होंने एक जर्मन अधिकारी से यहां तक कह दिया, "अपने देश की भलाई के खातिर में" अपनी गर्दन फंसाकर यहां आ पहुंचा हूँ। यदि यहां मेरे उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हुयी तो अपने देश की भलाई के लिए मैं अपनी गर्दन दुबार फंसाकर जर्मन जासूसी की आंखों में धूल झोक कर वापिस भारत लौट सकता "श्री कृष्ण सरल पूर्वोक्ति, पृष्ठ 33

का प्रथम चरण ''आजाद हिन्द संघ'' (फ्री इण्डिया सेक्टर) की स्थापना 2 नवम्बर 1941 को हो सकी। इस विलम्ब के कई कारण थे, उनमे एक यह भी था कि हिटलर की भारत के साथ बहुत अधिक सहानुभूति नही थी। उसे भारत और भारत में सुभाषचन्द्र बोस की स्थिति और लोकप्रियता के बारे में पता लगाने में भी समय लगा। तभी उसने सुभाष चन्द्र बोस की मदद करना स्वीकार किया।[1]

अपने इस जर्मन प्रवास में सुभाष चन्द्र बोस की भेंट अन्य देशों के कुछ प्रमुख राजनीतिज्ञों से भी हुयी, जो जर्मनी में शरण लिए हुये थे। उनकी समस्यायें भी लगभग वैसी ही थीं। इन राजनीतिज्ञों में ईराक के क्रांतिकारी नेता रसीद अली गिलानी भी थे।[2]

इसमें एक अन्य फलिस्तीनी नेता मुफतीए आजम भी थे।[3]

---

1. पूर्वोक्ति।

2. श्री रसीद अली गिलानी ने सन् 1940 में ईराक में क्रांति करके एक नई सरकार की स्थापना की थी। वह नई सरकार ब्रिटिश विरोधी थी इसलिए इस सरकार को अंग्रेजों का सामना करना पड़ा। अंत में गिलानी में भागकर जर्मनी में शरण ली थी। वहीं उन्होंने एक स्वतंत्र ईराक सरकार की स्थापना की थी।

3. मुफतीय आजम एक फिलिस्तीनी क्रांतिकारी थे। ये पूरे मध्य एशिया में अरबक्रांति का संचालन कर रहे थे। ये फिलिस्तीन में अंग्रेजों द्वारा यहूदियों को सताये जाने के कट्टर विरोधी थे। अंग्रेजों की इस नीति के विरोध में इन्होंने सशस्त्र विद्रोह खड़ा किया। इस विद्रोह के असफल हो जाने के कारण इन्हें फिलिस्तीन छोड़ना पड़ा था। श्री आजम बोस के बहुत बड़े प्रशंसक थे– वीरेन्द्र शर्मा आधुनिक भारतीय राजनीतिज्ञ विचार रस्तोगी पब्लिक मेरठ 1941, पृष्ठ 504

इस जर्मन प्रवास में जर्मनी के नेता तानाशाह हिटलर से सुभाष चन्द्र बोस की कईबार मुलाकात हुयी। भेंट के पूर्व हिटलर ने कई गोपनीय विधियों द्वारा बोस के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर ली थी। हिटलर को जब यह विश्वास हो गया कि सुभाष चन्द्र कट्टर राष्ट्र भक्त और चरित्रवान व्यक्ति हैं तभी उन्होंने उनसे भेंट कर सहयोग देने का उपक्रम किया। हिटलर और सुभाष की भेंट ऐतिहासिक भेंट थी। यह विश्व के दो महान नेताओं की भेंट थी।

सुभाष बाबू 28 मार्च 1941 को बिना किसी रुकावट के सकुशल बर्लिन पहुंच गये, वहाँ उन्होंनें हिटलर से भेंट की। हिटलर ने इनको भरपूर सम्मान दिया और विशाल समारोह में उनका भव्य स्वागत किया। उसने समारोह में अपने देशवासियों को सम्बोधित करते हुये कहा– "मैं तो केवल आठ करोड़ लोगों का नेता हूँ लेकिन इनके सिर पर चालीस करोड़ जनता का भार है।" इन शब्दों के साथ–साथ हिटलर ने उन्हें "डिप्टी फ्यूहरर ऑफ इण्डिया" की पदवी से सम्मानित किया। यहां वे जनरल गोपरिंग और जनरल रोमेल से भी मिले। उसने कहा कि मैं श्री बोस का स्वागत करता हूँ और श्रीमान के बर्लिन में सुरक्षित पहुँचने पर बधाई देता हूँ।

"श्री बोस ने इस स्वागत के प्रति आभार व्यक्त किया और अपनी योजनाओं से हिटलर को अवगत कराया। आपने हिटलर के समक्ष यह स्पष्ट कर दिया कि जर्मनी में भारतीय संगठन सर्वथा स्वतन्त्र होगा और उसमें जर्मन हस्तक्षेप के लिए कोई स्थान नहीं होगा । आपने यह भी प्रस्तावित

किया कि यूरोप में रहने बाले प्रवासी भारतीय जो इस संगठन में सम्मिलित होना चाहे उनके मार्ग में व्यवधान पैदा न किया जाये। एक अन्य बहुत बड़ी शर्त सुभाष ने हिटलर के समक्ष रखी कि जो भारतीय साम्यवादी दृष्टिकोण रखने के कारण बन्दी हैं, उन्हें मुक्त कर दिया जाये और उन्हें भारतीय संगठन में शमिल होने की अनुमति दी जाये । सर हिटलर ने इन सभी शर्तो को स्वीकार कर लिया और उनकी योजनाओं को पूरा सहयोग देने का बचन दिया।

अब श्री सुभाष चन्द्र बोस को जर्मनी की सभी लिखा पढ़ी में फ्राईज इण्डीशे फूहरर अर्थात "आजाद हिन्द का नेता" कहा जाने लगा तभी से "नेताजी उनका नाम पड़ा। जर्मनी में नेताजी की भेंट जर्मन नेताओ से भी हुयी थी। इनमें जर्मन प्रोपोगन्डा मिनिस्टर डा. जोसेट गोचबल्स, हवाई सेनापति मार्शल हरमन गोय रिंग और गुप्तचर विभाग के मुख्य हाईनरिख हिमलर भी हुयी थे।

बोस ने रोम और पेरिस में भी इण्डिया सेक्टर स्वतन्त्र भारत केन्द्र की स्थापना की थी।

2. <u>आजाद हिन्द सरकार का संगठन :-</u>

जापान में रह रहे रास विहारी बोस ने जापान के सहयोग से एक आजाद हिन्द फौज संगठित की थी तथा भारत की आजादी की योजना को मूर्तरूप देने के लिए ***"इण्डियन इन्डिपेन्डेंस लीग"*** की स्थापना की

थी, परन्तु मोहनसिंह के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज के समक्ष विभिन्न कठिनाइयाँ आ रही थीं तथा मोहन सिंह के विद्रोह के बाद इण्डिपेन्डेन्स लीग कठिनाइयों में टूटता जा रहा था इन सब कठिनाइयों को दूर करने के लिए इण्डिपेन्डेन्स लीग' की कमेटियों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन अप्रैल 1943 में बुलाया गया। इस सम्मेलन के बावजूद रास विहारी बोस की हालत न सुधर सकी। आखिर में सुभाष को उन्होंने ***आजाद हिन्द फौज*** के संगठन और संचालन का भार सौंपने का निर्णय लिया। सुभाष चन्द्र बोस को जर्मनी से जापान आकर और वहां से दक्षिणी पूर्व एशिया आकर आजाद हिन्द फौज और इण्डियन इण्डिपेन्डेस लीग का काम सौंपने का निश्चय किया गया और उन्हें इस आशय का निमन्त्रण भेजा गया।

"सुभाष चन्द्र बोस ने कांक का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उन्होंने फेन्क वर्ग में भारतीय सेना के संस्थापक आविद हुसैन के साथ 8 फरवरी 1943 को एक जर्मन यू वोट मे की लनहर से अपनी गुप्त यात्रा प्रारम्भ की। पूर्व व्यवस्था के अनुसार उन्हें मेडागास्कर के 400 मील दक्षिण पश्चिम स्थित एक नियत स्थान पर उन्हें जर्मन यू. वोट से निकाल कर जापानी पनडुब्बी में चढ़ाया गया। यह पनडुब्बी उन्हें सुमात्रा ले गयी जहां एक जापानी सैनिक अफसर ने उनका स्वागत किया। 13 जून 1943 को वे टोकियो पहुँचे।[1]

---

1. अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 739

''टोकियो में जापान के प्रधानमंत्री तोजो ने सुभाष चन्द्र बोस का जोरदार स्वागत किया। उनके कार्यों और कार्यक्रम के बारे में विस्तृत वार्ता करने के बाद तोजो ने जापानी संसद (डाईट) में निम्नलिखित घोषणा की– ''जापान ने दृढ़ता के साथ फैसला किया है कि वह भारत से अंग्रेजों को, जो भारतीय जनता के दुश्मन हैं, निकाल बाहर करने और उनके प्रभाव को खत्म करने के लिए सब तरह की मदद देगा तथा वास्तविक अर्थ में पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने में समर्थ बनायेगा।''

''सिंगापुर के पतन के एक दिन बाद 16 फरवरी 1942 को प्रधानमंत्री श्री तोजो ने भारत के विषय में जापान की नीति इन शब्दों में व्यक्त की थी – ''यह भारत के लिए जिसका इतिहास तथा सांस्कृतिक परम्परा हजारों वर्ष पुरानी है, ब्रिटेन के पंजे से अपने को छोड़ने और वृहत्तर पूर्वी ऐशिया सहसमृद्ध क्षेत्र में (greaters south east asian comporlity spleen....) हिस्सा लेने का सुनहरा मौका है। जापान को आशा है कि भारत अपनी उचित स्थिति फिर से प्राप्त कर लेगा, वह अपने लोगों के लाभ के लिए अपने साधनों का उपयोग करेगा और जापान, भारतवासियों के देशभक्ति प्रेरित प्रयत्नों में सहायता देने में कोई संकोच नही करेगा। यदि भारत अपने इतिहास और परम्परा को भूलकर आंखें खोलकर खड़ा नहीं हुआ और अंग्रेजों के वहकावे में आ गया तो मुझे भय है कि भारतीय जनता के पुनर्जागरण का अवसर हमेशा के लिए नष्ट हो जायेगा।[1]

---

1. महाजन, विद्याधरः भारत का वैज्ञानिक इतिहास और राष्ट्रीय आन्दोलन दिल्ली 1969, पृष्ठ 302–303

''सुभाष चन्द्र बोस ने टोकियो रेडियो से बोलते हुये ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष के दृढ़ निश्चय के साथ पूर्व सरहद से आक्रमण की घोषणा की।[1]

''सिंगापुर में ही सुभाष चन्द्र बोस ने स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार बनाने और '*'आजाद हिन्द फौज*' को लेकर हिन्दुस्तान जाने की घोषणा की।

आजाद हिन्द फौज की पुनः निर्माण की घोषणा की गयी। सुभाष ने उसका निरीक्षण किया और नारा बुलन्द किया.... दिल्ली चलो....... तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा।[2]

दक्षिण पूर्वी एशिया का व्यापक दौरा करने के बाद सिंगापुर की सार्वजनिक सभा में नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने 21 अक्टूबर 1943 को स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार की स्थापना की घोषण की थी यह आजाद हिन्दुस्तान के लिए अस्थायी सरकार थी। इसकी घोषणा एक दक्षिणी पूर्वी एशिया के प्रवासी भारतीयों के सम्मेलन में सिंगापुर के कैप हाल में की गयी थी।[3]

''इस घोषणा में कहा गया था– अस्थायी सरकार का काम होगा संघर्ष प्रारम्भ करना और चलाना, जो भारत की भूमि से अंग्रेजों और उसके

---

1. अयोध्या सिंह : पूर्वोक्त, पृष्ठ 739
2. वही, पृष्ठ 740
3. सरदार रामसिंह रावल : टोकियो से इम्फाल, मारवाडी प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 31

मित्रों को निकाल बाहर करे। उसके बाद अस्थायी सरकार का काम होगा भारतीय जनता की इच्छा के अनुसार और उसकी विश्वासपात्र अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करना, अंग्रेजों और उनके मित्रों को उखाड़ फेंकने के बाद जब तक आजाद हिन्द स्थाई सरकार न बनेगी तब तक अस्थायी सरकार भारतीय जनता की ट्रस्टी के रूप में देश का प्रशासन चलायेगी।

"इस सरकार ने शपथ ली थी कि ईश्वर के नाम पर .... हम भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपने झण्डे के नीचे होने वाले और आक्रमण करने के लिए भारतीय जनता का आव्हान करते रहेंगे। हम अंग्रेजों और भारत स्थित उनके सब सहयोगियों के विरुद्ध आखिरी जंग शुरू करने के लिए उसका आव्हान करते हैं, हम उसका स्वागत करते हैं। इस संघर्ष की शक्ति, धैर्य तथा आखिरी जीत में पूरे विश्वास के साथ तब तक चलने के लिए जब तक दुश्मन को हिन्दुस्तान की जमीन से निकाल नहीं दिया जाता और भारतीय जनता एक बार फिर ***"आजाद हिन्द"*** नही बन जाती।"[1]

"इस अवसर पर नेताजी तथा अन्य देशभक्तों ने सरकार के प्रति निष्ठा की शपथ ली। अध्यक्ष के नाते नेताजी ने सर्वप्रथम शपथ ली। ईश्वर के नाम पर में यह पवित्र शपथ लेता हूँ कि भारत को मुक्त कराने के लिए मैं अपनी अन्तिम साँस तक स्वाधीनता के इस पवित्र युद्ध को जारी रखूँगा।

---

1. वही, पृष्ठ 32

मैं सदैव भारत का सेवक रहूँगा और भारत का हित मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य रहेगा, स्वतन्त्रता मिल जाने के उपरान्त भी कभी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए मेरी जरूरत होगी भी तो भी मैं अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक माँ के चरणों पर चढ़ा दूँगा।[1]

आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार का संगठन इस प्रकार किया गया : श्री सुभाष चन्द्र बोस को अध्यक्ष प्रधानमंत्री युद्धमंत्री, परराष्ट्रमंत्री और आजाद हिन्द फौज के प्रधान सेनापति डाक्टर (कुमारी) लक्ष्मी स्वामीनाथन महिला विभाग की प्रधान। श्री एस0 ए0 अय्यर प्रकाशन तथा प्रचार विभाग। लेफ्टीनेंट कर्नल एस. सी. चटर्जी – अर्थ विभाग।

आजाद हिन्द सरकार में फौज के प्रतिनिधि के रूप में निम्नलिखित सदस्य थे। लेफ्टिनेन्ट कर्नल अजीवन अहमद ले. कर्नल एन. एस. भगत कर्नल जे. के भौसले ले. कर्नल ईशान कादिर और ले. कर्नल शाह नवाज।

"श्री आनन्द मोहन सहाय, श्री रास विहारी बसु –प्रधान परामर्शदाता। सर्वश्री करीमगनी, दीनानाथ दास, डी. एम. खां., सरदार इशर सिंह – परामर्शदाता। श्री ए.एन. सरकार कानूनी परामर्शदाता।[2]

"आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार की स्थापना के इस समारोह

---

1. हिन्दुस्तान (साप्ताहिक), लेख पराड़कर संग्रहालय, वाराणसी।

2. वही ।

में सात हजार भारतीय उपस्थित थे। प्रारम्भ में आजाद हिन्द सरकार तथा फौज का प्रधान कार्यालय सिंगापुर में था, किन्तु बाद में दोनो कार्यालय वर्मा की राजधानी रंगून में आ गये। इस सरकार को जर्मनी, जापान, इटली, वर्मा मलाया, फिलीपीन्स, इण्डोनेशिया, हिन्द, चीन, मंचूरिया , क्रोशिया आदि की सरकारों ने राजनैतिक मान्यता प्रदान की थी। बाद में परस्पर राजदूतों की भी नियुक्ति एवं आदान प्रदान प्रारम्भ हुआ।

"इस अवसर पर आजाद हिन्द अस्थायी सरकार का जो घोषणा पत्र प्रस्तुत किया गया उनका ऐतिहासिक महत्व है। इसमें कहा गया है– प्लासी में सन् 1757 की हार के बाद सौ साल तक हिन्दुस्तानी अपनी आजादी के लिए बराबर लड़ते रहे। इस युग का इतिहास स्वतन्त्रता की खूनी लड़ाई का इतिहास है। सिराजुद्दौला, टीपू सुल्तान हैदर अली अवध की वेगम, शक्ति सिंह, झांसी की रानी, तात्या टोपे और नानासाहब का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। दुर्भाग्य वश हमारे पूर्वज यह नहीं समझते थे कि विजय के लिए एकता पहली शर्त है। इसलिए सन् 1857 में उनकी हार हो गयी। उसके बाद कायर अंग्रेजों ने भारतीयों से हथियार छीन लिये। कुछ दिनों तक भारतीय शान्त रहे, किन्तु सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना से एक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ।

"सन् 1920 में जब हम निराश हो रहे थे तब गांधी जी ने असहयोग और सत्याग्रह का अस्त्र हमें दिया। अतः राजनैतिक चेतना के साथ साथ हमारे अन्दर राजनीतिक युद्ध की चेतना जागी। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के

अन्तिम युग के समय हमने यह भी दिखा दिया कि प्रबन्ध में हम अंग्रेजों से अधिक कुशल हैं। इस द्वितीय महायुद्ध में हमें आजादी की अन्तिम लड़ाई छेड़ने का अवसर मिला है। हमें भूखे मार कर हमें बर्बाद कर ब्रिटिश सरकार ने हमारी सारी श्रृद्धा छीन ली है। उस पाशविक शासन के अन्तिम अवशेषों को नष्ट भ्रष्ट करने के लिए एक भयानक क्रान्ति की ज्वाला की आवश्यकता है। आजाद हिन्द फौज उस ज्वाला को सुलगाने के लिए जाग पड़ी है।

"इस स्वतन्त्रता के प्रातः काल में हमारा पहला कर्तव्य है कि एक आजाद हिन्द सरकार की स्थापना कर उसके संरक्षण में हम आजादी की लड़ाई शुरू कर दें। यह आजाद हिन्द सरकार प्रत्येक भारतीय के प्रति वफादार होगी। अतः प्रत्येक भारतीय को इसके प्रति वफादार होना चाहिए। भगवान के नाम पर आजादी के लिए मर जाने वाली पिछली पीढ़ियों के नाम पर हम अपील करते हैं कि तिरंगे झण्डे के नीचे इकट्ठे होकर हम अपनी लड़ाई छेड़ दें और तब तक लड़ें, जब तक कि दुश्मन देश से बाहर न निकल जाये और हमें स्वतन्त्रता प्राप्त न हो जायें।[1]

"आजाद हिन्द सरकार का यह घोषणा पत्र कितना प्रेरणात्मक तथा स्फूर्तिदायक रहा, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। इसने दक्षिणी पूर्वी एशिया में रहने वाले भारतीयों पर जादू सा काम किया। फलस्वरूप पचास हजार भारतीयों ने दूसरे दिन सार्वजनिक प्रदर्शन कर आजाद हिन्द सरकार

---

1. अग्रवाल गिरिराज शरण : पूर्वोद्धत, पृष्ठ 107

में अपनी निष्ठा व्यक्त की। सरकार के संचालन के लिए प्रवासी भारतीयों ने उदारतापूर्वक मुक्त हस्त से धन दिया, जिससे ***आजाद हिन्द बैंक*** की स्थापना हुयी। इसका मूलधन साढ़े आठ करोड़ रुपये था। नेताजी सुभाष के व्यक्तित्व और उनकी वाणीं मे ऐसा जादू था कि उनकी अपील पर धन की वर्षा होने लगी थी। सरकार की ओर से ''जय हिन्द'' और आजाद हिन्द दो समाचार पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। नई सरकार को जापान ने बंगाल की खाड़ी में स्थित अन्डमान तथा निकोबार द्वीप हस्तान्तरित कर दिये। आजाद हिन्द सरकार ने इनका नामकरण ***शहीदद्वीप तथा स्वराज्य द्वीप रखा।***

आजाद हिन्द सरकार की स्थापना के तीन दिन बाद 24 अक्टूबर 1943 को अमेरिका तथा इग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की गयी । अंग्रेजों के विरुद्ध भारत पर आक्रमण की तैयारी बड़े वेग से उत्साह पूर्वक होने लगी। इस निमित्त आजाद हिन्द फौज का संगठन कार्य बड़ी ही कुशलता तथा दूरदर्शिता से किया गया।[1]

''6 नवम्बर 1943 को तोजो ने वृहत्तर पूर्व एशिया सम्मेलन (टोकियो) में घोषणा की कि जापान के अंडमान और निकोबार टापुओं को आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार के हाथों सौंप दिया जायेगा। 31 दिसम्बर 1943 को सुभाष अंडमान पहुंचे और टापुओं का प्रशासन आजाद

---

1. रावत सरदार सिंह : टोकियो से इम्फाल, पृष्ठ 47

हिन्द की अस्थायी सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। अण्डमान और निकोबार का नाम बदल कर क्रमशः शहीद और स्वराज्य द्वीप रख दिया गया।[1]

3. आजाद हिन्द सरकार के कार्य

"21 अक्टूबर की जनसभा में सुभाष ने अस्थायी सरकार की स्थापना की घोषणा की । आजाद हिन्द की इस अस्थायी सरकार के कार्यो के बारे में इस घोषणा में कहा गया था।

"अस्थायी सरकार का काम होगा वह संघर्ष आरम्भ करना और चलाना जो भारत की भूमि से अंग्रेजों और उनके दोस्तों को निकाल बाहर करे। उसके बाद अस्थायी सरकार का काम होगा, भारतीय जनता की इच्छा के अनुसार और उसकी विश्वासपात्र आजाद हिन्द की अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करना। अंग्रेजों और उनके मित्रों को उखाड़ फेंकने के बाद जब तक आजाद हिन्द की स्थायी राष्ट्रीय सरकार न बनेगी तब तक अस्थायी सरकार भारतीय जनता के ट्रस्टी के रूप में देश का प्रशासन चलायेगी।

"ईश्वर के नाम पर हम भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपने झण्डे के इर्द गिर्द इकट्‌ठा होने और आक्रमण करने के लिए भारतीय जनता का आव्हान करते हैं। हम अंग्रेजों और भारत स्थित उनके सब मित्रों के खिलाफ

---

1. वही।

आखिरी जंग शुरू करने के लिए आव्हान करते हैं। हम उसका आव्हान करते हैं इस संघर्ष को शक्ति, धीरज तथा आखिरी जीत मे पूरे विश्वास के साथ साथ चलाने के लिए जब तक दुश्मन को हिन्दुस्तान की जमीन से निकाल नही दिया जाता और भारतीय जनता एक बार फिर आजाद कौम नहीं बन जाती।[1]

"सन् 1857 में बंगाल में अंग्रेजों से प्रथम बार हारने के बाद भारत के लोगों ने अनेक वर्षों तक कठिन और भीषण लड़ाईयाँ लड़ीं। उस समय के इतिहास में अद्वितीय वीरता और आत्म बलिदान के उदाहरण भरे पड़े हैं। इतिहास के इन पृष्ठों में बंगाल के सिराजुद्दौला और मोहन लाल, दक्षिण भारत के हैदर अली, टीपू सुल्तान, कुलूथाम्पी, महाराष्ट्र के अप्पा साहब भौंसले और पेशवा वाजीराव, अवध की वेगम, पंजाब के सरदार श्याम सिंह अटारीवाल और अन्त में रानी लक्ष्मीवाई और तात्याटोपे, बिहार के महाराज कुंवर सिह और नाना साहब पेशवा के नाम स्वर्णक्षरों में लिखे गये। दुर्भाग्य से हमारे पूर्वजों ने यह अनुभव नही किया कि अंग्रेज भारत के लिए खतरनाक है, इसलिए उन्होंने संयुक्त मोर्चा बनाकर उनका सामना नहीं किया। अन्त में जब भारतीयों ने वास्तविक स्थिति को पहचानना चाहा, तो उन्होंने संगठित होकर कार्यवाही की और सन् 1857 में बहादुर शाह के झण्डे के नीचे उन्होंने स्वतन्त्र मनुष्यों के रूप में अन्तिम लड़ाई लड़ी।

---

1. नेताजी रिसर्च व्यूरो, बेलेटिन, 1 जुलाई 1961 के अंक एस0ए0 नायर का दि इण्डियन इन्डियेन्डन्स मूवमेंट इन ईस्ट एशिया शीर्षक लेख, पृष्ठ 7 रमेश चन्द्र मजूमदार पूर्वोद्धत, पृष्ठ 712–13।

"भारत में अंग्रेजी राज्य ने भारतीयों को अपनी मक्कारी और लूटपाट से निराश करके भुखमरी और मृत्यु की स्थिति में पहुँचा दिया। इससे अंग्रेजी राज्य के प्रति भारतीयों की सद्भावना जाती रही और उसकी स्थिति डावांडोल हो गयी। अब इस दुखदायी शासन की जंजीरो को तोड़ने के लिए केवल एक चिंगारी की आवश्यकता है और इस चिंगारी को प्रज्वलित करना ही भारत की स्वतन्त्रता सेना का कार्य है।[1]

"अब क्योंकि स्वतन्त्रता का प्रभाव समीप है इसलिए भारतवासियों का कर्तव्य है कि वे अपनी स्थायी सरकार के घ्वज के नीचे अन्तिम संघर्ष छेड़ दें क्योंकि भारत के सभी नेता जेलों में हैं और इस देश के भीतर लोग बिल्कुल निशस्त्र हैं इसलिए अब पूर्वी एशिया के भारतीय स्वतन्त्रता संघ का यह कर्तव्य है कि स्थायी आजाद हिन्द सरकार बना लें।[2]

"अस्थायी सरकार यह मांग करती है कि सभी भारतीय उसके प्रति निष्ठावान रहें और उसका साथ दें। वह नागरिकों को यह विश्वास दिलाती है कि सबको धार्मिक स्वतन्त्रता और समान अधिकार प्राप्त होंगे।

"हम ईश्वर के नाम पर उन मृत वीरों के नाम पर जिन्होंने भारत के लिए वीरता और वलिदान की परम्परा छोड़ी है समस्त नागरिकों का आव्हान करते हैं कि वे सभी हमारे झण्डे के नीचे एकत्र हों और भारत

---

1. अयोध्या सिंह : भारत में मुक्ति संग्राम, पृष्ठ 757

2. वही

की स्वाधीनता के लिए लड़ें। हम उनका आव्हान करते हैं कि वे अंग्रेजों और उनके भारतीय मित्रों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दें। वे धैर्य और वीरता के साथ उस समय तक संघर्ष को चलायें, जब तक भारत के लोग फिर से एक स्वतन्त्र राष्ट्र न बना लें।[1]

''इस घोषणा पत्र ने आजाद हिन्द सरकार की विचार धारा का स्पष्ट चित्र अंकित कर दिया।

''उन पर ऐतिहासिक अवसर की पवित्रता का महान प्रभाव पड़ा था। सुभाष बाबू ने प्रयत्नपूर्वक नीची और कभी ऊँची, परन्तु शक्तिशाली आवाज मे कहा – ''ईश्वर को साक्षी करके यह पुनीत शपथ लेता हूँ कि मैं सुभाष चन्द बोस, भारत और अपने 38 करोड़ देशवासियों को स्वतन्त्र कराने के लिए, स्वतन्त्रता के इस पुनीत युद्ध को अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक जारी रखूँगा।''

''इतना कहकर सुभाष रुक गये। ऐसा ज्ञात हो रहा था मानो वह रो पड़ेंगे, उपस्थित जन समुदाय में प्रत्येक व्यक्ति अपने मन में इन्हीं शब्दों को दुहरा रहा था। सभा में प्रत्येक जगह शांति छाई हुई थी। उपस्थित जन समुदाय की आंखों मे आँसू उमड़ पड़े फिर भी सभी अपने भावावेश को सम्हाले रहे।

तभी सुभाषचन्द्र बोस ने गम्भीर स्वर मे कहा ...... ''मैं सदैव भारत का

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ 737

सेवक बना रहूँगा और अपने 38 करोड़ देशवासियों के हित की रक्षा करूंगा। यह मेरा सबसे बड़ा कर्तव्य होगा।

स्वाधीनता के बाद भी उसकी रक्षा के लिए मैं रक्त की अन्तिम बूंद तक अर्पित करने के लिए तत्पर रहूँगा।

"तत्पश्चात् अस्थायी सरकार के प्रत्येक सदस्य ने व्यक्तिगत शपथ ली। 28 अक्टूबर 1943 को नेताजी ने सभी देशों के पत्रकारों के सम्मेलन में भाषण दिया–

"आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार को बनाने के साथ मेरे राजनीतिक जीवन का दूसरा स्वप्न पूरा हो गया। पहला स्वप्न था क्रान्तिकारी सेना का निर्माण। एक स्वप्न और पूरा करना है, युद्ध और स्वाधीनता प्राप्ति।"

"संसार जानता है कि राष्ट्रवादी भारत बहुत लम्बे समय से ब्रिटेन से लड़ाई लड़ रहा है। जब भारत की अस्थायी सरकार की स्थापना हो चुकी है, तो वह समय अब दूर नहीं जब ब्रिटेन और अमेरिका के समक्ष इसको अपना दृष्टिकोण प्रकट करना आवश्यक है।

"हमारी युद्ध की घोषणा केवल प्रचार नहीं है हम सिद्ध कर देंगे कि हम जो कहते हैं, वह पूरा कर सकते हैं। मैं तब तक कोई निश्चय नहीं करता जब तक कि मुझे उसको व्यवहार में लाने का पूर्ण विश्वास नहीं हो जाता।"

"8 नबम्बर 1943 को जापानी सरकार ने अण्डमान निकोबार द्वीपो को आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार को सौंप दिया" सुभाष चन्द्र बोस

ने इस समय वक्तव्य प्रसारित किया।[1]

जिसमें कहा गया .... अण्डमान की स्वतन्त्रता का सांकेतिक महत्व है क्योंकि अण्डमान को अंग्रेजों ने सदैव से राजनैतिक कैदियों के लिए जेल के रूप में प्रयोग किया है। ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध वातावरण तैयार करने वाले कितने ही क्रान्तिकारियों ने यहां प्राण खोये हैं और कितनों को ही इस द्वीप में बन्द किया गया है यह अण्डमान भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई में सबसे पहले स्वाधीन हुआ है जहाँ अनेक देशभक्तों ने महान यातनायें सही हैं। धीरे–धीरे भारतीय सीमायें स्वतन्त्र हो जायेंगी किन्तु यह वह स्थान है, जिसका सबसे अधिक महत्व है। मैं शहीदों की स्मृति में अण्डमान का नाम शहीद और निकोबार का नाम स्वराज्य रखता हूँ।[2]

''सिंगापुर में म्युनिसिपल भवन के सामने हिन्दुस्तानी नागरिकों और सैनिकों का एक विराट समारोह हुआ। मंत्रियो की कौंसिंल ने अपनी बैठक मे यह प्रस्ताव पास कर दिया कि अस्थायी आजाद हिन्द सरकार, ब्रिटेन और संयुक्त राज्य के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा करती है। ''इस चिर प्रतीक्षित घोषणा के समय आकाश नारो से फटने लगा। 15 मिनिट तक 50000

---

1. पूर्वोक्त अग्रवाल गिरिराज शरण, पृष्ठ 137

2. पूर्वोक्त ।

व्यक्तियों का समुदाय अस्त–व्यस्त रहा। अनेक ने जोश में आकर सभा मंच तक पहुंचने का प्रयत्न किया।

''बहुत अधिक प्रयत्न के बाद लोगों को शान्त किया गया। तभी नेताजी ने कहा– सभी व्यक्ति अपने अपने स्थान पर खड़े रहें और अपने हाथ उठाकर प्रस्ताव की स्वीकृति प्रदान करें।

''चारों ओर हाथ ही हाथ दिखाई देने लगे। शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा रहा हो , जिसका हाथ न दिखाई दिया हो। शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा रहा हो, जिसका हाथ ऊपर न उठा हो।

''सैनिकों ने अपनी राइफलें उठाईं और उन्हें कन्धे पर रखा। अपनी राइफलें उठाकर सैनिकों ने प्रस्ताव की स्वीकृति प्रदान कर दी।

''रानी झाँसी रेजीमेण्ट की महिलायें तो उत्साह से मूर्छित हो गयीं। कितनी ही महिलायें अचेतावस्था में भी मुट्ठी बांधे नारे लगा रही थीं, दिल्ली चलो, दिल्ली चलो।[1]

आजाद हिन्द सरकार ने हमेशा अन्याय और निरंकुश शासन के खिलाफ आवाज उठायी। आजाद हिंद सरकार ने भारत की आजादी की पैरवी की तथा ब्रिटिश सरकार को भारत से निष्कासित करने का प्रयास किया। रानी झाँसी रेजीमेण्ट का त्याग एवं बलिदान उल्लेखनीय रहा है जिसने उपनिवेशवाद के खिलाफ आवाज उठायी थी। रानी झाँसी रेजीमेंट को गतिशील

---

1. सरदार रामसिंह रावत : टोकियो से इम्फाल, पृष्ठ 47

शोधार्थिनी रंजीता सेंगर कैप्टन डॉ० लक्ष्मी सहगल के साथ

कैप्टन डॉ॰ लक्ष्मी सहगल नेताजी सुभाष चंद्र बोस से अत्यधिक प्रभावित थी।

बनाने के लिये कैप्टन लक्ष्मी सहगल का अतुलनीय योगदान रहा है। रानी झाँसी रेजीमेंट वास्तव में सुभाष चन्द्र बोस के लिये एक आदर्श का स्रोत रही। कैप्टन लक्ष्मी सहगल रेजीमेंट की प्रतिमूर्ति थीं। जिनका कर्तव्य एक उच्च कोटि का एवं उच्च आकांक्षाओं वाला था। उनमें वीरत्व एवं शौर्यत्व की भावना थी। कैप्टन लक्ष्मी सहगल भारतीय नारियों के लिये एक उन्नायक के साथ-साथ आदर्श गतिमानों की शिला के रूप में हमेशा चिरंजीवी रहेंगी। कैप्टन लक्ष्मी सहगल आज भी समाज के लिये प्रेरणादायक स्रोत है।

4. वामपंथियों का समाज पर प्रभाव

"1937-39 के बीच कांग्रेस की जो शक्ति बढ़ी थी, उसका बहुत कुछ श्रेय वामपंथियों को था। वामपंथी राष्ट्रवाद , कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट पार्टी के अन्दर काम करते थे और उनके काम श्रम जीवियों को कांग्रेस की तरफ आकर्षित करते थे। इस काल में कांग्रेस सचमुच राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे का रूप धारण कर रही थी। कितनीं ही कमेटियों में वामपंथियों का बहुमत था। उदाहरण के लिए केरल की प्रदेश कांग्रेस कमेटी में कम्युस्टिों और वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्टों का संयुक्त प्रदेश की कांग्रेस कमेटी में वामपंथी कांग्रेसी और उसके समर्थक बहुमत में नहीं थे। बंगाल प्रदेश कांग्रेस कमेटी मे भी वामपंथी राष्ट्रवादी, कम्युनिस्टों और सोशलिस्ट लगभग आधे-आधे

थें। अन्य आंचलिक और प्रदेश कमेटियों में भी वामपंथियों की सम्मिलित शक्ति काफी तेजी से बढ़ी थी।[1]

काँग्रेस के लखनऊ और फैजपुर के अधिवेशनों में अध्यक्ष पद पर जवाहर लाल नेहरू का और उसके बाद हरिपुरा और त्रिपुरी में सुभाष चन्द्र बोस का चुना जाना कांग्रेस के अन्दर वामपंथियों के बढ़ते प्रभाव का प्रमाण था। कांग्रेस सभी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का संयुक्त संगठन बना रही थी। वह धीरे-धीरे संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे का रूप ले रही थी, किन्तु कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेता यह पसन्द नहीं करते थे। वे कांग्रेस को साम्राज्यवादी शासकों और उसके आधार स्तम्भ सामंत सरदारों के विरुद्ध भारतीय जनता का क्रान्तिकारी अस्त्र नही बनने देना चाहते थे। वे इसे मात्र साम्राज्यवादियों पर दबाब डालने और उनके साथ समझौता करने का अस्त्र बनाए रखना चाहते थे। अतः उन्होंने गाँधी जी के अस्त्र का इस्तेमाल कर कांग्रेस को संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे का रूप लेने से रोका। उन्होंने मजदूर संगठनों, किसानों बगैरा के संगठनों को मजबूत बनाने की जगह उन्हें कमजोर बनाने का रास्ता अपनाया।[2]

इस कशमकश में सुभाष चन्द्रबोस की सहानुभूति कम्युनिस्टों में होते हुये भी वामपंथ की ओर थी। वे गाँधी जी के समझौतावादी रूप के समर्थक

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ 661
2. वही।

नही थें अपनी पुस्तक "इण्डियन स्ट्रगल" में सुभाष ने यह स्वीकार किया है कि कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से कांग्रेस पार्टी के रुख को ब्रिटिश सरकार के साथ समझौते के विरुद्ध खड़ा करने का भरसक प्रयत्न किया गया, जिसके कारण गाँधीवादी समर्थकों से नाराजगी पैदा हो गयी क्योंकि वे लोग ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता करने का इरादा कर रहे थे।[1]

"बाद में सुभाष चन्द्र बोस ने 1938 में औधोगिकरण और राष्ट्रीय विकास के लिए एक व्यापक दलील तैयार की थी। यह दलील भी गाँधीवादियों को पसन्द नही थी गाँधीवादी राष्ट्रीय स्पर्धा के विरोधी थे। उपरोक्त मतभेदों की पृष्ठभमि में सुभाष चन्द्र बोस को कांग्रेस से त्यागपत्र देना पड़ा।

---

1. बोस सुभाष चन्द्र : इण्डियन स्ट्रगल उद्धृत नेताजी सम्पूर्ण वाड़्.मय, पृष्ठ 218

अध्याय - षष्ठ

आजाद हिन्द सेना और सुभाषचन्द्र बोस

(अ) आजाद हिन्द सेना की स्थापना तथा उसके अनुयायियों का योगदान।

(ब) सुभाष के नेतृत्व में सेना का संगठन और कार्य।

(स) सफलतायें– विफलतायें।

Neta Ji with Azad Hind Foj

Netaji in Germany

आजाद हिन्द सेना और सुभाष चन्द्र बोस

1. आजाद हिन्द सेना की स्थापना तथा उसके अनुयायियों का योगदान

आजाद हिन्द फौज और सरकार कोई नई बात नही थी। सुभाष के पूर्व ही उसकी व्यापक पृष्ठभूमि मौजूद थी सामान्य धारणा यह है कि आजाद हिन्द फौज और आजाद हिन्द सरकार की स्थापना सबसे पहिले सुभाष चन्द्र बोस ने की थी। आजाद हिन्द फौज एक बहुत से प्रतिनिधियों का संघ था जो राजनीति को अपने जीवन का आदर्श मानते थे। वे अपने जीवन को अपमानित व लज्जित नहीं देखना चाहते थे। आजाद हिन्द फौज का अपमान एक राष्ट्र का अपमान था। परन्तु वस्तु स्थिति इससे भिन्न थी। इससे पूर्व भी दो बार इस दिशा में प्रयास किये जा चुके थे।

जापान में आजाद हिन्द फौज की मुख्य भूमिका रास विहारी बोस ने निभायी थी। रास विहारी बोस एक महान व्यक्तित्व के व्यक्ति थे, जो भारत के क्रांतिकारी नेताओं के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। वे एक अच्छे संगठन कर्ता थे। भारतीय राजनीति में वे लाला हरदयाल के समकालीन थे। प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व उन्होंने पंजाब के मास्टर अमीनचन्द्र और हनुमन्त सहाय के साथ मिलकर ***लिवर्टी*** नामक पर्चा निकाला। 1911 में दिल्ली में वायसराय लार्ड हार्डिंग पर जो बम फेंका गया, उसकी योजना

रास विहारी बोस ने ही बनाई थी। उनके मन में क्रान्ति का एक बहुत बड़ा स्वप्न था। इस स्वप्न को पूरा करने के लिए हथियारों की आवश्यकता थी। इन हथियारों को प्राप्त करने के लिए रास विहारी बोस विदेश चले गये थे और विदेश में व जापान में जाकर बस गये और वहीं रह कर भारत की आजादी के लिए प्रयत्नशील हुये। उन्होंने जापान में ही 'न्यू एशिया' नामक एक पत्र का प्रकाशन किया। वे हर साल टोकियो में जलियाँवाला दिवस मनाया करते थे।[1]

"1939 में जब दूसरा विश्व युद्ध हुआ तब रास विहारी बोस इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अब उनके काम करने का अवसर आ गया है उन्होंने जापान में स्थित भारतीयों को लेकर आजाद हिन्द फौज की स्थापना की। उन्होंने 28 मार्च 1942 को टोकियो में सभी भारतीय नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन मे हीं भारतीय स्वतन्त्रता लीग की स्थापना की गयी। इसी सम्मेलन मे ***आजाद हिन्द फौज*** (सेना) की स्थापना की घोषणा भी की गयी थी। इसके बाद जापान की फौजों को दक्षिणी–पूर्वी एशिया में जहाँ जहाँ विजय प्राप्त होती गयी, वहाँ वहाँ ***आजाद हिन्द फौज*** की स्थापना होती गयी।[2]

---

1. नागपाल ओ.पी. : पूर्वोद्धत, पृ0 387
2. वही

द्वितीय विश्व युद्ध में दक्षिणी पूर्वी एशिया में ब्रिटिश सेना में मोहन सिंह एक महत्वपूर्ण सैनिक अधिकारी थे। वे कैप्टन थे। जब जापानी सेना ने एक दिन अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया, तो कैप्टन मोहन सिंह मलाया के जंगल में तीन दिन तक भूखे रहे। भूख और प्यास से बचने के लिए उन्होंने अपने साथी अकरम के साथ जापानी सेना के समक्ष आत्मसमर्पण का निश्चय किया था। 15 दिसम्बर 1942 को उन्होंने तिरंगा झण्डा लहराया। एक कार देखी जिसमें एक सिक्ख सज्जन रानी प्रीतम सिंह ***आजाद हिन्द फौज*** के निर्माण के लिए भारतीयों को बटोरते फिर रहे थे। इसके पीछे ही जापानी मेजर फूजीवारा भी आये हुये थे। ये कैप्टन मोहन सिंह, कैप्टन मोहम्मद अकरम को अपने साथ ले गये। मेजर पूजीवारा ने मोहन सिंह के सामने भारत और एशिया के सम्बन्ध में जापान सरकार की नीति और रास विहारी बोस की ***आजाद हिन्द फौज*** बनाने का प्रस्ताव रखा। इसे मोहन सिंह ने स्वीकार नही किया। मोहन सिंह ने अपने साथियों के साथ परामर्श करके ही इस प्रस्ताव पर अपनी सहमति प्रकट की।[1]

"इस प्रस्ताव के बाद कैप्टन मोहन सिंह और 54 साथियों ने यह प्रतिज्ञा की कि वे भारत की आजादी के लिए मर मिटेंगे। इस प्रकार मलाया के जिन्ना नामक स्थान पर ***आजाद हिन्द फौज*** (दक्षिणी–पूर्वी एशिया में) के

---

1. सरल श्री कृष्ण : क्रान्ति कथाएं भाग – 10 पृ0 832–33

निर्माण की नींव पड़ी।[1]

"कैप्टन मोहन सिंह को आजाद हिन्द फौज का कमाण्डर इन चीफ नियुक्त किया गया इसके बाद वे इसके विस्तार के लिए प्रयत्नशील हो गयें।[2]

कैप्टन मोहन सिह का त्याग आजाद हिन्द फौज के लिए अद्वितीय और विलक्षण था। उन्होंने अपना जीवन ***आजाद हिन्द फौज*** की सेवा के लिए समर्पित कर दिया।

भारत की आजादी के लिए विचार–विमर्श करने के उद्देश्य से थाईलैण्ड की राजधानी बैंकाक में 15 जून 1942 को एक सम्मेलन आयोजित किया गया। जिसमें दक्षिण पूर्वी एशिया के निवासी भारतीयों ने प्रतिनिधि के रूप में हिस्सा लिया। बैंकाक सम्मेलन में कैप्टन मोहन सिह को पदोन्नत कर जनरल बनाया गया था। यह उनके जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि रही। इस सम्मेलन में वर्लिन से नेताजी का सन्देश भी पहुँचा जो पढ़कर सम्मेलन में आयें विभिन्न भारतीय प्रतिनिधियों को सुनाया गया जिससे उनमें देश के प्रति वफादारी और सेवा के बीज पनपे।

बैंकाक सम्मेलन तक ***आजाद हिन्द फौज*** में लगभग 25 हजार,

---

1. 15 फरवरी 1942 सिंगापुर के पतन पर भारतीय सैनिक युद्ध बन्दी बनाये गये थे, जिनके संख्या 40000 थी। फूजीवारा ने उन्हें कप्तान मोहन सिंह सुपुर्द किया। इन युद्ध बन्दियों में से भारतीय सैनिकों को भी लेकर मोहन सिंह ने आजाद फौज खड़ी की थी। अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, पृ0 737

2. सरल श्री कृष्ण : पूर्वोद्धत, पृ0 833

भारतीय सैनिक भर्ती हो चुके थे इन्हीं सैनिकों के प्रतिनिधि बैंकाक सम्मेलन में शामिल हुये थे। अगस्त 1942 तक ***आजाद हिन्द फौज*** में सैनिकों की संख्या 4000 से ज्यादा हो गई थी।[1]

''दक्षिण – पूर्वी एशिया के अनेक कर्मठ नौजवान भारत की आजादी के लिए इस फौज में भर्ती हुये थे उन नौजवानों में देश को आजाद कराने की ललक थी। स्वभावतः उन सबको प्रशिक्षित किया गया जिनके लिए सैनिक शिविर खोले गये।

''बैंकांक सम्मेलन में ***आजाद हिन्द फौज*** को स्थायी एवं नियमित बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये गये–

''भारतीय सैनिकों और पूर्वी एशिया के भारतीय नागरिकों को लेकर राष्ट्रीय सेना बनाई जाये। कप्तान मोहन सिह इस फौज के प्रधान सेनापति होंगे। इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग जरूरी धन, जन और सामान का इन्तजाम करेगी। वह आजाद हिन्द फौज के लिए जरूरी हथियार और सामान, जलपान और विमान देने का अनुरोध जापान सरकार से करेगी। ***आजाद हिन्द फौज*** के सारे अफसर भारतीय होंगे और वह सिर्फ भारत की मुक्ति के लिए लड़ेगी।[1]

''कप्तान मोहन सिंह ने भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए काफी

---

1. अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम, पृ0 738
2. अयोध्या सिंह, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 737–738

प्रयास किया उन्होंने स्वाधीनता के लिए कई प्रकार के संघर्ष भी किये जो आन्दोलन के लिए बड़े उपयोगी रहे। वे वास्तव में प्रेरणा के स्रोत थे तथा ***आजाद हिन्द फौज*** के मुख्य कार्यकर्ता एवं वक्ता थे।

"स्वाधीनता युद्ध को चलाने के लिए और स्वाधीनता आन्दोलन के सम्बन्ध में सभी जानकारी प्राप्त करने के लिए एक संग्राम परिषद बनाई गयी।[1]

"बैकांक सम्मेलन ***आजाद हिन्द फौज*** और स्वाधीनता आन्दोलन के लिए बड़ा उपयोगी था क्योंकि इस सम्मेलन से कई भारतीय आकर के जुड़े जिससे उनमें देश को आजाद कराने के लिए उनकी मानसिकता एवं नैतिकता पर प्रभाव पड़ा। ***आजाद हिन्द फौज*** और संग्राम परिषद से विभिन्न प्रकार की राजनीतिक चेतनाओं का आविष्कार हुआ जो राष्ट्रहित के लिए बड़े उपयोगी थे।

"आजाद हिन्द फौज को प्रारम्भ से ही अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। भारतीय अफसरों में जो दक्षिण पूर्वी एशिया में समर्पण कर चुके थे, और जिन्हें ***आजाद हिन्द*** में जाना था उनकी नीतियों को अपनाना पसन्द नही करते थे, विचारों और भावनाओं में भिन्नतायें थीं। उनमें से कई ***आजाद हिन्द फौज*** को छोड़कर वापिस अंग्रेजों के साथ जा मिले। दूसरी कठिनाई यह भी थी कि जापान सरकार की नीतियाँ अस्पष्ट एवं अपूर्ण थीं। ***आजाद हिन्द सरकार*** ने अपनी नीतियों को स्पष्ट नहीं किया। उसके

---

1. चटर्जी, ए.जी. इण्डियन स्ट्रगल फार फ्रीडम, कलकत्ता 1948, पृष्ठ 707

इस व्यवहार से वेचैन होकर मोहन सिंह ने जापान सरकार से मांग की थी। 23 दिसम्बर 1942 तक उन्हें ये बात स्पष्ट की जाये अन्यथा ***आजाद हिन्द फौज*** स्वतन्त्र रूप से कार्य करेगी किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहेगी।

"संग्राम परिषद के अध्यक्ष रास विहारी बोस को यह पसन्द नहीं आया। उनके हुक्म से मोहन सिंह गिरफ्तार कर लिये गये। संग्राम परिषद के दो सदस्यों ने त्याग पत्र दे दिया वाकी रह गये स्वयं ही ये रास विहारी बोस और अन्य सदस्य थे।"[1]

"प्रवासी भारतीय नौजवानों की तरफ से भी कुछ कठिनाईयां पैदा हुईं जो स्वतन्त्रता की लड़ाई में हिस्सा लेने के लिए शामिल हुये उनमें देश प्रेम की भावना थी। जो भर्ती होना चाहते थे। उन्हें फौज के लिए नाकाविल करार कर वापिस कर दिया जाता था जो भर्ती कर लिए गये थे उनके प्रशिक्षण के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। इससे अंसतुष्ट होकर इन नौजवानों ने यूथ ली बनाई और आन्दोलन को सक्रिय किया।"[2]

"कप्तान मोहन सिंह यह समझ गये कि जापान सरकार ***आजाद हिन्द फौज*** को अपना पुछल्ला बनाये रखना चाहती है। वे इसे वरदास्त करने के लिए तैयार नहीं थे। वे यह भी ताड़ गये थे कि उनके पत्र के उत्तर में उन्हें गिरफ्तार किया जा सकता है। अतः उन्होंने एक मुहरबन्द

---

1. चटर्जी ए.सी. पूर्वोद्धत, पृष्ठ 46
2. अयोध्या सिंह : पूर्वोद्धत, पृष्ठ 738

पत्र भारतीय अफसरों के नाम रख दिया था कि अगर उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाये तो ***आजाद हिन्द फौज*** भंग कर दी जाये और सारे काम खत्म कर दिये जायें। उनकी गिरफ्तारी के बाद यही हुआ। ***आजाद हिन्द फौज*** भंग कर दी गयी।

"इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए ***इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग*** का दूसरा सम्मेलन अप्रैल 1943 में बुलाया गया। इस सम्मेलन के बावजूद रास विहारी बोस हालत न सुधार सके। आखिर में उन्होने जर्मनी से सुभाष चन्द्र बोस को आमंत्रित किया और उनके हाथ में ***इण्डियन इण्डिपेन्डेनस लीग*** तथा ***आजाद हिन्द फौज*** की बागडोर सौंप कर चैन की सांस ली।

कप्तान मोहन सिंह ने बैंकाक कान्फ्रेन्स की योजना के बारे में बातचीत करने के लिए माउण्ट प्लेसेन्ट के अपने बंगले पर ऊँचे अफसरों की बैठक बुलाई। उसने बताया कि कान्फ्रेन्स जून में होगी और युद्धबन्दियों की ओर से उसमें 90 नुमाइन्दे जा सकेंगे। वे बैंकाक में पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों के कुल जितने नुमाइन्दे इकट्ठे होने वाले थे। हमको दी हुई 90 की यह तादाद उसकी एक–तिहाई थी। कप्तान मोहन सिंह का इरादा 90 प्रतिनिधियों के स्थान पर 30 प्रतिनिधि ले जाने का था। बाकी 60 के वोट के लिये प्रॉक्सी ले ली जायेगी। सभी अफसर उनसे सहमत थे।

बैंकाक के लिये प्रतिनिधि जून के शुरू में रवाना हो गये, क्योंकि कान्फ्रेन्स 15 जून,1942 से शुरू होने वाली थी। हिन्दुस्तानी फौज के 30

नुमाइन्दे 60 प्रॉक्सी वोट के साथ उसमें शामिल हुये। इसके अलावा पूर्वी एशिया के नुमाइन्दे भी वहाँ आ गये थे जिनमें मलाया के मिस्टर राघवन मैनन और गोहों भी थे। श्री रासबिहारी बोस सभापति चुने गये।

बैंकाक सम्मेलन में पहले दिन जो सदस्य थे वो इस प्रकार थे–थाइलैंड के विदेश मंत्री, थाइलैंड में इटली के राजदूत, थाइलैंड में जर्मन राजदूत और थाईलैंड में जापानी राजदूत। इन्होंनं अपनी अपनी सरकारों की तरफ से बधाई के सन्देश पढ़े। सत्रह प्रस्ताव पास हुये जिनका मुख्य आशय निम्न प्रकार है–

1. पूर्वी एशिया में हिन्दुस्तान की आजादी की हलचल चलाने के लिये एक ''कौन्सिल ऑफ एक्शन'' चुनी गई, जिसके मेम्बर थे श्री रासबिहारी बोस, सरदार कप्तान सिंह, श्री एन. राघवन, श्री के.पी. मेनन और लैफ्टिनेंट कर्नल जी. क्यू. जिलानी।
2. सारे पूर्वी एशिया में आजाद हिन्द संघ की शाखायें पूर्ण रूप से बनाने का फैसला किया गया।
3. शाखाओं के इन्तजाम में जापानियों का किसी तरह का हाथ न होगा और वे बैंकाक में कायम किये गये '***आजाद हिन्द संघ*** के सभापति के आदेशानुसार ही कार्य करेगी।
4. हिन्दुस्तान एक ओर अखण्ड होगा। किसी भी हालत में टुकड़ों में न बाँटा जायेगा।
5. सिर्फ इण्डियन नेशनल कांग्रेस हिन्दुस्तान की कौमी नुमाइन्दा जमात है।

6. आजादी हिन्दुस्तानियों का पैदायशी हक है और पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों का पक्का इरादा है कि वे इस मकसद को हासिल करने के लिये लड़ेंगे।

7. जापानी साम्राज्य की सरकार से इस मकसद को हासिल करने के लिये लड़ेंगे।

8. जापानी साम्राज्य की सरकार की मदद से इस मकसद को हासिल करने के लिये पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों को हथियार और दूसरे जरूरी सामान से मदद करने का भार अपने ऊपर लिया है।

9. जापानी साम्राज्य की सरकार पूर्वी एशिया के रहने वाले हिन्दुस्तानियों को आजाद मुल्क का नागरिक मानेगी और दूसरे दोस्त मुल्कों की सरकार से भी दरखास्त करेगी कि वे भी अपने–अपने यहाँ के हिन्दुस्तानियों को आजाद मुल्क के नागरिक मानें।

10. पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों की जायदाद दुश्मनों की जायदाद नहीं मानी जायेगी। जो हिन्दुस्तानी पूर्वी एशिया को छोड़कर चले गये हैं। उनकी जायदाद ***आजाद हिन्द संघ*** की कौन्सिल ऑफ एक्शन को सौं दी जायेगी। यह जायदाद ट्रस्ट के तौर पर संघ के पास रखी रहेगी।

11. हिन्दुस्तान के आजाद होने के बाद हिन्दुस्तान की नई सरकार के साथ जापान की सरकार बाकायदा सुलह करेगी। पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों की यह कान्फ्रेन्स हिन्दुस्तान के लोगों की ओर से जापान के साथ कोई वायदा या समझौता नहीं करती है।

12. पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानी जापान की सरकार से सामान वगैरह की शक्ल में जो कुछ मदद लेंगे। वह उधार समझी जायेगी और आजाद हिन्दुस्तान उसे वापिस अदा करेगा।

13. हिन्दुस्तानी युद्धबन्दियों और सिविलयानों में से वालन्टियरों की एक फौज खड़ी की जायेगी और वह हिन्दुस्तान की कौमी फौज ***आजाद हिन्द फौज*** कहलायेगी।

14. कप्तान मोहन सिंह इस नई खड़ी की गई ***आजाद हिन्द फौज*** के जनरल अफसर कमाण्डिंग होंगे।

15. जापान की सरकार से प्रार्थना की गई कि वह जर्मनी की सरकार को नेताजी को पूर्वी एशिया भेजने का इन्तजाम करने के लिये कहें जिससे कि वे पूर्वी एशिया की हिन्दुस्तान की आजादी की तहरीक का संचालन अपने हाथों में ले सकेंगे।

16. ***आजाद हिन्द फौज*** को सब धुरी राष्ट्र आजाद और साथी फौज मानेंगे।

17. जापानी सरकार इन सब निश्चयों को मंजूर करेंगी।

इन प्रस्तावों के पास होने के बाद बैंकाक कान्फ्रेंस सम्पन्न हुई। नेताजी ने भारतीय जनता के नाम अपना सन्देश प्रसारित किया। देशवासियों के नाम जो सन्देश दिया गया था उसके प्रमुख अंश इस प्रकार थे।

"अंग्रेज लोगों के इतने प्रचार के बावजूद सोचने समझने वाले हर हिन्दुस्तानी के लिये यह बात बिल्कुल साफ है कि इस दुनिया में हिन्दुस्तान का सिर्फ एक ही दुश्मन है और वह है ब्रिटिश साम्राज्यवाद, जो सौ बरस

से ज्यादा से हिन्दुस्तान का शोषण करने और खून चूंसने में लगा हुआ है। मैं धुरी मुल्कों की तरफ से सफाई पेश नहीं कर रहा हूँ। यह मेरा काम नहीं है। मेरा सम्बन्ध सिर्फ हिन्दुस्तान के साथ है। जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद पछाड़ दिया जायेगा, हिन्दुस्तान को आजादी मिल जायेगी। यदि इसके विपरीत कहीं–कहीं ब्रिटिश साम्राज्यवाद किसी तरह इस लड़ाई में जीत गया, तो हिन्दुस्तान की गुलामी की जंजीर हमेशा के लिये मजबूत हो जायेगी। इसलिये हिन्दुस्तान के सामने आजादी और गुलामी में से एक चीज के चुन लेने का सवाल है। उसको चुनाव कर ही लेना चाहिये।

अंग्रेजों के वेतनभोगी प्रचारक मुझे दुश्मन का एजेण्ट कहते हैं। जब मैं अपने देशवासियों से बोलता हूँ तो मुझे अपनी सच्चाई साबित करने के लिये किसी के बकालतनामे की जरूरत नहीं है। मैं जिन्दगी भर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से बिना समझौता किये जूझता रहा हूँ और मेरे मुल्क वाले की नजर में यही मेरी सच्चाई का सबसे बड़ा सबूत है। मैने अपनी सारी जिन्दगी देश की खिदमत में लगाई है और मैं मरते दम तक देश सेवा ही करता रहूँगा। मैं दुनिया के किसी भी हिस्से में रहूँ मैं सिर्फ हिन्दुस्तान के प्रति वफादार रहा हूँ। यदि लड़ाई के अलग–अलग मैदानों पर गौर करें, तो आप इसी नतीजे पर पहुँचेंगे जिस पर मैं पहुंचा हूँ (दुनिया में कोई भी ताकत ब्रिटिश साम्राज्य को अब विखरने के हाथ से निकल चुकी है)। माण्डले अंग्रेजों के हाथ से निकल चुका है और मित्र फौजें बर्मा की सर जमीन से करीब–करीब खदेड़ी जा चुकी है।

देशवासियो! जबकि ब्रिटिश साम्राज्य खत्म हो रहा है, जब हिन्दुस्तान की आजादी का दिन नजदीक आ रहा है। तब मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान की आजादी की आखिरी लड़ाई शुरू हुई है। कमर कस लीजिये, हिन्दुस्तान की मुक्ति की घड़ी नजदीक ही है।

जापान में ***आजाद हिन्द फौज*** और जापानियों में मतभेद गहरे हो रहे थे और जापानी जहान को वापस भेजने में उनमें भारी रोष फैल गया था। जापानियों ने 8 दिसम्बर,1942 को कर्नल गिल को गिरफ्तार कर लिया। उनकी गिरफ्तारी के बाद कौन्सिल ऑफ एक्शन के दस मेम्बरों ने इस्तीफे दे दिये। लेकिन कौन्सिल ऑफ ऐक्शन के सभापति श्री रासबिहारी बोस का यह मानना था कि हिन्दुस्तानी आजादी की लड़ाई के रास्ते की सब दिक्कतें और रुकावटें जापानी सरकार के साथ बातचीत करके दूर की जा सकती है। उन्होंने मोहन सिंह और कौन्सिल ऑफ एक्शन के दूसरे मैम्बरों को समझाने की कोशिश की लेकिन श्री बोस की किसी ने एक न सुनी और हालात दिन पर दिन बिगड़ते गये। अन्त में जब जनरल मोहन सिंह कुछ सुनने व मानने को तैयार न हुये तो रास बिहारी बोस ने जापानियों को हुक्म लिखकर दे दिया कि जनरल मोहन सिंह को गिरफ्तार कर लिया जाये। मोहन सिंह को अपनी गिरफ्तारी का पहले से ही अन्दाज था। उन्होंने अफसरों को हिदायत दे दी थी कि मेरे गिरफ्तार होते ही ***आजाद हिन्द फौज*** को तोड़ दिया जाये। उनकी गिरफ्तारी का हाल मालूम होते ही उन हिदायतों पर अमल किया गया। सब हथियार इकट्ठे करके

रख दिये गये। पार्टी के और पदों के सब बिल्ले जला दिये गये और सब फौजी ट्रेनिंग सेन्टर बन्द कर दिए गये।

श्री रास बिहारी बोस को कप्तान मोहन सिंह के इस कदम से भारी रोष था। उन्होंने कहा था कि मोहन सिंह को ***आजाद हिन्द फौज*** के जनरल के पद से इस्तीफा देने का तो पूरा अधिकार था, लेकिन फौज को तोड़ने का कोई अधिकार न था, क्योंकि वह उनकी चीज न थी। वह हिन्दुस्तान की फौज थी न कि मोहन सिहं की। रास बिहारी बोस ने यह भी बाकायदा ऐलान कर दिया कि मैने मोहन सिंह की गिरफ्तारी का हुक्म दिया है और उनको ***आजाद हिन्द फौज*** का प्रधान सेनापति मुकर्रर करते वक्त मैंने उनको जनरल का जो पद दिया था, वह अब वापिस लिया जाता है।

आजाद हिन्द फौज का रासबिहारी ने पुनर्गठन शुरू कर दिया। हर किसी ने यह महसूस किया कि पहली ***आजाद हिन्द फौज*** की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि उसे सिर्फ एक आदमी चलाता था। इसलिये दूसरी बार ***आजाद हिन्द फौज*** के लिये फौजी दफ्तर की एक डाइरेक्टरेट खोलने का फैसला किया गया, जो कि ***आजाद हिन्द फौज*** के सब कामों की देखभाल करे। फौजी दफ्तर का डाइरेक्टर एक फौजी अफसर था जो कि ***आजाद हिन्द संघ*** के नीचे था। इसके अलावा एक फौजी कमाण्डर के नीचे एक फौज का हैडक्र्वाटर खोलने का फैसला किया गया। कर्नल जे0के0 भौंसले को फौजी दफ्तर का डाइरेक्टर और कर्नल एम.जेड. कियानी को सेना का कमाण्डर मुकर्रर किया।

जो फौज में रहना नहीं चाहते थे, उन सबको युद्ध कैदी की हैसियत में रहने का मौका दिया गया। करीब 3000 आफीसर और सिपाही फिर युद्ध कैदी बन गये। दुबारा संगठित ***आजाद हिन्द फौज*** में यह कमी युद्ध कैदियों और सिलिलियनों में से नये आदमी भर्ती करके पूरी की गई। नये आदमी बड़ी संख्या में आने लगे। जापानियों ने भी दुबारा संगठित ***आजाद हिन्द फौज*** को बाकायदा इत्तदारी सेना मान लिया, जिसका दर्जा और हैसियत जापानी सेना के बराबर ही थी। उन्होंने बैंकाक कान्फ्रेन्स के निश्चयों को स्वीकार करने का भी वादा किया।

आजाद हिन्द संघ का दुबारा संगठन करने और उसके अध्यक्ष के लिये एक सलाहकार कौन्सिल कायम रखने के लिये पूर्वी एशिया के हिन्दुस्तानियों के नुमाइन्दों की एक बैठक बुलाई गई। इस बैठक में यह ऐलान किया गया कि पूर्वी एशिया आने पर नेताजी सुभाष चन्द्र बोस संघ के अध्यक्ष होंगे।

आजाद हिन्द संघ और ***आजाद हिन्द फौज*** के दुबारा संगठन के बाद भी जापानी लोग उनके काम में दखलन्दाजी करते रहे। सिर्फ फर्क इतना था कि अब वे पहले की तरह खुल्लम खुल्ला नहीं करते थे। उन्होंने अपने ढंग बदल दिये। हालात अब भी ठीक नहीं थे। श्री रासबिहारी ने कमियों को दूर करने की भरसक कोशिश की लेकिन अब तो समझ गये थे कि नेता जी के यहाँ आने का वक्त आ गया है। नेताजी ने जापान में आकर ***आजाद हिन्द फौज*** की बागडोर फिर से ले ली।

2. सुभाष के नेतृत्व में सेना का संगठन और कार्य

सर्वप्रथम आजाद हिन्द सरकार की स्थापना प्रथम विश्व युद्ध के बाद अफगानिस्तान में हुयी थी। इसके मुख्य संस्थापक राजा महेंन्द्र प्रताप थे।[1]

इसमें मुस्लिम क्रान्तिकारियों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया था। राजा महेन्द्र प्रताप ने इसके लिए जर्मनी के सम्राट केसर से भेंट की थी। उन्होंने ही महेन्द्र प्रताप को अफगानिस्तान के अमीर हबीबुल्ला के पास आर्थिक सहायता देकर भेजा था। भारत से आजाद कृपलानी के भाई शेख अर्वुरहीम ने भारत से मौलाना उवेदुल्ला सिन्धी को अपनी पत्नी और बेटों के सारे जेबर बेंच कर भेजा था।

''उपरोक्त मिले जुले प्रयत्नों का परिणाम स्वरूप अस्थायी आजाद हिन्द सरकार बनी। इसके अध्यक्ष राजा महेन्द्रप्रताप प्रधानमंत्री मौलाना बरकतुल्ला तथा गृहमंत्री मौलाना उवेदुल्ला सिन्धवी बनाए गये। कुछ भारतीय विद्यार्थी भी लाहौर से काबुल पहुँचे थे। उन्हें भी आजाद हिन्द सरकार में कुछ पद दिये गये। इन्हीं छात्रों में एक श्री नफजल हुसैन थें। उन्हें जो अफगान सेना के कमाण्डर इन चीफ प्राइवेट सेक्रेटरी बने। उन्होंने जनरल नादिर खां की सहानुभूति भारत के लिए अर्जित की थी। उपरोक्त सरकार

---

1. राजा महेन्द्र प्रताप के क्रान्तिकारी योगदान के लिए देखिये, महेन्द्र प्रतापः लाइफ स्टोरी ऑफ फिफ्टी इयर्स, दिल्ली 1947, पृष्ठ 59

की ओर से भारत की आजादी में सहयोग प्रदान करने के लिए एक शिष्ट मण्डल रूस भी ले गये। जार की सहानुभूति ब्रिटेन के साथ थी। अतः इस शिष्ट मण्डल को गिरफ्तार कर लिया गया। बड़ी मुश्किल से तासकन्द के गवर्नर ने इसके बीच में पड़कर मुक्त कराया। इसी सरकार की ओर से एक शिष्ट मण्डल तुर्की और जापान भेजा गया था।

"उपरोक्त अस्थायी ***आजाद हिन्द सरकार*** ने अफगानिस्तान में एक ***आजाद हिन्द फौज*** भी खड़ी की थी। इसका उद्‌देश्य अंग्रेजी साम्राज्य पर आक्रमण करके भारत को आजाद कराना था। इस सेना में कुछ प्रवासी भारतीय थे, कुछ अफगानी सैनिक थे। सरहदी कबीलों के लोग भी इस सेना में सम्मिलित थे। इसके सैनिको की संख्या लगभग 6 हजार थी। इसको जर्मन सेना ने भी कुछ सहयोग दिया था। इसने कई छुट–पुट हमले भी किये परन्तु अफगानिस्तान के अमीर हबीबुल्ला की दगावाजी के कारण इसे कोई उल्लेखनीय सफलता नही मिल सकी। प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी व तुर्की की हार के बाद इस सरकार और सेना का भी पतन हो गया।[1]

दूसरी आजाद हिन्द की स्थापना इटली में ***आजाद हिन्द लश्कर*** के नाम से की गयी थी। इसके संस्थापक सरदार भगत सिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह थे। उन्होंने अपने जीवन का एक बहुत बड़ा भाग एक निर्वासित भारतीय के रूप में बिताया था।[2]

---

1. मजूमदार, रमेश चन्द्र : पूर्वोक्ति, पृष्ठ संख्या 405–407
2. सरल श्रीकृष्ण : पूर्वोद्धत, पृष्ठ संख्या 72

"1935 में सरदार अजीत सिंह इटली पहुँचे। इटली में सरदार अजीत सिंह का अच्छा स्वागत हुआ। इटली सरकार के सहयोग से वहां सरदार अजीत सिंह ने ***आजाद हिन्द रेडियो*** की स्थापना की थी, इससे भारतीय कार्यक्रम प्रसारित किया जाता था। नावा लाभसिंह भी सरदार अजीत सिंह के सहयोगी थे।[1]

"सरदार अजीत सिंह और उनके साथियों ने उन सैनिकों से जिन्होंने इटली और जर्मनी की सेनाओं के समक्ष आत्मसमर्पण किया था, आजाद हिन्द लश्कर की स्थापना की। इसके संस्थापकों में इकवाल शौदाई भी थे।[2]

आजाद हिन्द संघ सुभाष चन्द्र बोस के लिये एक प्रेरणामयी स्रोत एवं संघ था जिसने बोस के राजनैतिक जीवन पर बहुत से प्रभाव डाले। जिससे उनके जीवन के क्रियाकलाप बदले और भारत को आजाद कराने के लिये उन्होंने अपने जीवन को लगा दिया। ***आजाद हिन्द संघ*** सुभाष के जीवन की प्रथम कड़ी थी जो सुभाष को ऊँचाईयों पर ले जा सकी।

बाद में यह फौज कम हो गयी, क्योंकि इटली इस फौज का प्रयोग उत्तरी अफ्रीका में करना चाहती थी। बाद में इसमें से बहुत से सैनिक सुभाष चन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज में भर्ती हो गये। आजाद हिन्द संघ की स्थापना के बाद एक बार समस्त बातें तय हो जाने के

---

1. पूर्वोक्ति, पृष्ठ संख्या 72–73
2. वही, पृष्ठ 70

बाद आजाद हिन्द संघ को जर्मन सरकार की ओर से कभी आर्थिक वाधा उत्पन्न नहीं हुयी। यद्यपि जर्मन सरकार की ओर से कोई हिसाब–किताब नही रखा जाता था, परन्तु सुभाष चन्द्र बोस बड़ी मितव्ययिता से व्यय करते थे और पाई–पाई का हिसाब रखते थे। ***आजाद हिन्द संघ*** के कार्यकर्ताओं को वे सुविधायें प्राप्त थी, जो किसी देश के दूतावासों को प्राप्त होती हैं।

आजाद हिन्द संघ के कार्यकर्ताओं का चयन सुभाष चन्द्र बोस ने बड़ी बुद्धिमत्ता से उन सब भारतीयों में से किया था जो उन दिनों जर्मनी या पूर्वी यरोप में रहकर विद्यालय या अन्य कोई व्यवसाय कर रहे थें। इस कार्य के लिए सुभाष चन्द्र बोस ने अन्य देशों का दौरा भी किया। वे रोम, पेरिस तथा प्रयाग गये। फ्रान्स से वे एन0 सी0 नम्बियार को लाये थे, जो 18 वर्ष से फ्रान्स में पत्रकारिता कर रहे थे।[1]

वे बड़े महत्वपूर्ण कार्यकर्ता एवं संगठन सिद्ध हुये। नाम्बियार के सहायक श्री गणफुले थे । उन्होंने भी सुभाष को अपनी सेवायें समर्पित की थी । जर्मनी में सुभाष अदम्य एवं विश्वसनीय थे (श्री जी. के मुकर्जी और एम0 आर. व्यास)।

"आजाद हिन्द संघ की शाखाएं यूरोप के अन्य भागों में भी खोली गयीं। आजाद हिन्द संघ का विधिवत उद्घाटन 2 नवम्बर 1941 को हुआ।

---

1. जब सुभाषचन्द्र बोस जर्मनी से जापान होते हुए दक्षिण पूर्वी एशिया में आजाद हिन्द सरकार और सेना का काम देखने चले गये तो उनके स्थान पर यूरोप के आजाद हिन्द संघ का कार्य संचालन नाम्बियार ने ही किया था।

इसी दिन एक बैठक में कार्य विभाजन तथा कार्य प्रणाली सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णय किये गये।

"आजाद हिन्द संघ के सभी पदाधिकारियों को श्री सुभाष चन्द्र बोस के प्रति स्वामीभक्ति, विश्वसनीयता, एकता, गोपनीयता तथा वलिदान की शपथ दिलाई गयी।[1]

जर्मनी में सुभाष चन्द्र बोस का अपना हर क्षण अपने उद्देश्य की पूर्ति (भारतीय आजादी) के लिए समर्पित था। वे जर्मन फौज और नागरिक अधिकारियों के साथ लगातार बात करते रहते थे।

"अक्टूबर 1941 में सुभाष चन्द्र बोस ने प्रवासी भारतीयों का एक सम्मेलन बुलाया था, जिसमें बर्लिन तथा जर्मनी में रहने बाले भारतीयों के साथ साथ यूरोप के अन्य देशों में रहने वाले भारतीयों को भी बुलाया गया था। यह सम्मेलन अनौपचारिक था और इसमें लोगों को केवल चाय पर बुलाया गया था, मेजबान थे ओरलेण्डो मेजोटो। जब लोग निमन्त्रित स्थान पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि उनका मेजवान और कोई नही सुभाष चन्द्र बोस हैं।[2]

चाय के साथ–साथ चलने वाली वार्ता में सुभाष चन्द्र बोस ने लोगों को भारत की आजादी का उद्देश्य बताया। सभी ने उन्हें तन, मन एवं

---

1. सरल श्री कृष्ण : पूर्वोद्धत, पृष्ठ 43–44
2. वही।

धन से सहायता का वचन दिया। इस आश्वासन के बाद सुभाष चन्द्र बोस ने जर्मनी में आजाद हिन्द संघ का कार्यालय खोला। इसे जर्मन भाषा में "सेन्ट्रल फ्राइज इन इण्डीज" कहते है।

"इस संघ की शाखा ***"आजाद हिन्द रेडियो"*** के रूप में प्रचारित थी, दूसरी शाखा "आजाद हिन्द फौज" के रूप में प्रस्तावित थी। जर्मन वैदेशिक विभाग के अधिकारी भी श्री बोस की इस सुनिश्चित योजना को प्राप्त कर आश्चर्य चकित रह गये। हर हिटलर की योजना की स्वीकृति के पश्चात इसे मूर्त रूप देने का प्रयास प्रारम्भ हो गया। इनकी स्थापना अक्टूबर 1941 में ही हो गयी थी। वर्लिन के टींगार्टन क्षेत्र में एक भव्य और विशाल भवन में इसकी स्थापना की गयी थी। इसका स्तर एक अर्द्ध दूतावास का स्तर था। उसे वे सभी सुविधायें प्रदान की गयीं जो एक पूर्ण दूतावास को प्रदान की गयी थीं। यह संघ जर्मन सरकार द्वारा खोला गया था। इसका व्यय भार भी जर्मन सरकार उठाती थी परन्तु इसके लिए यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया था कि इसका व्यय राष्ट्रीय ऋण चुका दिया जायेगा। यह ऋण सुभाष चन्द्र बोस की व्यक्तिगत साख पर दिया गया था, उसकी अदायगी के लिए किसी व्यक्ति पर या भारत पर कोई बन्धन नही था।[1]

"शपथ समारोह के बाद अपने संक्षिप्त भाषण में सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था।" हम सबका उद्‌देश्य एक ही है और वह है, अपने देश की

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ सं0 41

आजादी................ निष्काम भाव से हम सबको सर्वस्व न्योछावर करके देश की आजादी के लिए प्रयत्न करना चाहिए। देश की आजादी ही हम सबका पुरस्कार होगा। यदि हमें अपने प्रयत्न में सफलता न मिली तो भी हमें यह तो सन्तोष होगा ही कि हमने अपने देश की सेवा तो की। इस नये संकल्प और कर्तव्य के साथ उत्तरदायित्व का ज्ञान कराते हुये श्री बोस ने कहा कि हम सबको मिलकर परस्पर सहयोग की भावना से इस प्रकार कार्य करना है कि दूतावास के कार्यकर्ताओं से हमारा मूल्यांकन किसी प्रकार कम न हो।[1]

आजाद हिन्द संघ की प्रथम बैठक में निम्नलिखित निर्णय लिये गये–

1– आजाद हिन्द संघ के युद्ध घोष और अभिनन्दन का शब्द होगा जय हिन्द।

2– आजाद हिन्द संघ के संस्थापक श्री सुभाष बोस के लिए नेताजी शब्द का प्रयोग किया जायेगा।

3– आजाद हिन्द संघ और इसकी इसकी सभी शाखाओं का राष्ट्रीय गीत जनगण मन होगा।

4-- आजाद हिन्द संघ की राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी होगी।

उपरोक्त प्रस्ताव राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थे।[2]

आजाद हिन्द संघ ने एक योजना समिति का भी गठन किया

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ सं0 42

2. विद्यालंकार, सत्यदेव एवं मालवीयः यूरोप में आजाद हिन्द, मारवाडी पब्लिकेशन्स दिल्ली, पृष्ठ सं0 57

था। यह संघ राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए योजनाऐं तैयार करता था। यह योजना समिति भारत के भावी प्रशासन के लिए रूपरेखा भी तैयार करने जा रही थी।[1]

जर्मन में स्थापित आजाद हिन्द संघ ने अपने कर्मचारियों में प्रशासकीय एवं कूटनीतिक क्षमताओं के विकास के लिए एक प्रशिक्षण संस्थान भी स्थापित किया था। इस संस्थान में विभिन्न विभागों में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण दिया जाता था। उन्हें अपने कार्य और कौशल के प्रशिक्षण के साथ साथ दूसरे देशों के लोगों के साथ मिलने जुलने तथा उनसे काम निकालने के तरीकों का भी प्रशिक्षण दिया जाता था।[2]

इन प्रशिक्षित व्यक्तियों को अपने देश के सम्मान का सदैव ध्यान रहता था और दूसरे देशों में उन्हें बहुत सम्मान प्राप्त होता था। उनके रहन सहन, बोलने और व्यवहार करने के ढंग का दूसरे देशों के लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ता था और वे आश्चर्य प्रकट करते थे कि इतने अच्छे भारतीयों के विषय में अंग्रेज लोग कितना घृणित प्रचार करते हैं। यह सब नेताजी की सूझ बूझ का परिणाम था । उन्होंने भारत के गौरव को विदेशों में बढ़ाने और भारत की छवि सुधारने के लिए विशेष प्रयत्न किये।[3]

---

1. वही, पृष्ठ संख्या 58
2. पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 59
3. सरल श्री कृष्ण : नेताजी सुभाष जर्मनी में पूर्वोद्धत, पृष्ठ संख्या 48

नेताजी को भारत छोड़े हुये बहुत लम्बा समय हो चुका था। अभी तक भारत को उनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं था। बस उनके बारे में विभिन्न किवदन्तियां प्रचलित थीं। एक बार तो ब्रिटिश सरकार ने हवाई दुर्घटना में उनकी मृत्यु की खबर प्रसारित कर दी थी । यह सब व्यवस्थित नही होगा और उन्होंने आजाद हिन्द सरकार की स्थापना कर दी थी।[1]

''प्रचार–प्रसार लड़ाई का एक बहुत बड़ा साधन है। इस साधन को अपनाने के लिए आजाद हिन्द रेडियो की आवश्यकता थी। प्रचार–प्रसार के मामले में इग्लैण्ड बहुत आगे था। उसने दुनिया को बता रखा था कि भारतीयों को ब्रिटिश शासन के विरूद्ध कोई शिकायत नहीं है और वे अपनी समृद्धि के लिए ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही रहना चाहते हैं। नेताजी अंग्रेजों के इस घृणित प्रचार का खण्डन करना चाहते थे। वे अंग्रेजों की पोल खोलना चाहते थे, इसके लिए रेडियो ही सबसे बड़ा साधन हो सकता था। जर्मनी में रहकर इस प्रकार का अवसर उन्हें मिला था, जिसे वह खोना नहीं चाहते थे।

''आजाद हिन्द रेडियो की आवश्यकता भारत में अंग्रेजो के विरूद्ध जनमत तैयार करने के लिए भी थी। उन्हें भय था कि भारतीय लोग अंग्रेजों की चिकनी चुपड़ी बातों में आकर उनके प्रस्ताव न मान लें। नेताजी चाहते थे कि इस समय जब अंग्रेज विश्वयुद्ध में फंसे हैं, यदि भारत के लोग

---

1. वही, पृष्ठ संख्या 62

उनके विरूद्ध उठ खड़े हो जायें तो भारत से अंग्रेजों का बोरिया–विस्तर उठने में देर नहीं लगेगी।

"इन सभी कारणों से सुभाष चन्द्र बोस को आजाद हिन्द रेडियो की आवश्यकता महसूस हुयी।[1]

आजाद हिन्द रेडियो की आवश्यकता अनुभव किये जाने के बाद उसकी स्थापना और प्रसारण सेवा की तैयारियां शुरू कर दी गयीं। तैयारियों के लिए दो बातें अत्यन्त आवश्यक थीं–

1– आकाशवाणी केन्द्र की स्थापना।

2– आकाशवाणी कार्यकर्ता।

आकाशवाणी केन्द्र के लिए किसी जर्मन आकाशवाणी केन्द्र का उपयोग न करके एक नये स्वतन्त्र केन्द्र की स्थापना की गयी थी। प्रसारण के लिए आवश्यक यन्त्र और उपकरण जर्मन सरकार ने जुटाये थे और उनकी देखरेख अवश्य जर्मन टेक्नीशियन करते थे।[2]

"इस आकाशवाणी केन्द्र के लिए कार्यकर्ताओं की समस्यायें अत्यन्त जटिल थीं। इसके लिए भारतीय भाषाओं के प्रसारण के लिए भारतीय तथा हिन्दी साहित्य के जानकार व्यक्तियों की आवश्यकता थी। इनका जर्मनी में अभाव था, फिर भी नेताजी ने इस समस्या का हल निकाल ही लिया था

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 59

2. पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 51

उन्होंने इस कार्य के लिए कुछ भारतीय विधार्थियों को आमंत्रित किया था। इन सभी ने देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर नेताजी को अपनी सेवायें समर्पित की थीं। इस आजाद हिन्द रेडियों के लिये कुछ जर्मन महिलाओं की सेवायें प्राप्त की गयी थीं।[1]

"***आजाद हिन्द रेडियो*** के कई विभाग थे। इनमें मुख्य थे संवाद लेखन। इसका मुख्य काम प्रसारित होने वाले संवादों का सम्पादन और लेखन था। प्रारम्भ में नेताजी स्वयं संवादलेखन कार्य करते थे।

"आजाद हिन्द रेडियो का दूसरा मुख्य विभाग था वार्ता लेखन। इसमें उपयोगी सामाजिक वार्तायें भी प्रसारित की जाती थीं। वार्ता लेखन का कार्य भी प्रारम्भ में नेता जी स्वयं करते थे।

"आजाद हिन्द रेडियो की एक अन्य प्रमुख सेवा थी श्रवण सेवा। इसके लिए संसार की प्रमुख भाषाओं के जानने वाले व्यक्ति नियुक्त थे। जो विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रों से उन भाषाओं में प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को देखकर उनका संक्षिप्त सार अंग्रेजी या भारतीय भाषाओं में तैयार करते थे। यह काम इस दृष्टि से किया जाता था कि यदि आवश्यक हो तो उनका खण्डन मण्डन करके जनता को सही स्थिति से अवगत कराया जा सके।[2]

आजाद हिन्द रेडियो प्रसारण का कार्य बैण्ड पर किया जाता था।

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 52
2. पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 53

प्रारम्भिक दिनों में रेडियो प्रसारण का काम केवल 45 मिनिट का था। इस काम में एक वार्ता और कुछ सन्देश मात्र प्रसारित किये जाते थे। प्रसारण का समय प्रातः और सायं काल था। धीरे–धीरे इसका समय बढ़ता गया और 230 मिनिट हो गया था।[1]

आजाद हिन्द रेडियो का पहला रेडियो प्रसारण नवम्बर 1941 में हुआ। एक दिन सुबह ही सुबह जब भारत में रेडियो खोला गया तो रेडियो पर सुभाष चन्द्र बोस बोल रहे थे। उन्होंने सबसे पहले अपने देश की जनता को यह शुभसमाचार दिया कि आज सबकी शुभकामनाओं के फलस्वरूप वे जीवित हैं और सकुशल हैं तथा देश को आजाद कराने की योजनाओं में लगे हुये हैं। देश की जनता को अब तक सुभाष के बारे में कोई खबर नहीं थी। सुभाष का भी अपने देश की जनता से यह पहला संवाद था। इतने समय बाद जब सुभाष रेडियो पर अपने देश की जनता को सम्बोधित कर रहे थे, तो उनकी आंखों में आंसू आ गये थे तथा गला भर आया था।[2]

आजाद हिन्द रेडियों से यह प्रसारण नौ भाषाओं में होता था। ये भाषायें थीं– (1) अंग्रेजी, (2) हिन्दी (3) फारसी (4) पारसी (5) तमिल (6) तेलगू (7) गुजराती (8) मराठी (9) बंगला

---

1. वही, पृष्ठ संख्या 56
2. वही पृष्ठ संख्या 54

"आगे चलकर आजाद हिन्द रेडियो की दो शाखाएं और खोली गयीं यह थीं आजाद कांग्रेस रेडियो एवं आजाद मुस्लिम रेडियो।[1]

"आजाद कांग्रेस रेडियो की स्थापना 1942 में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य भारत छोड़ो आन्दोलन के सही तथ्यों से भारतीय जनता को अवगत कराया था। ***आजाद मुस्लिम रेडियो*** का उद्देश्य साम्प्रदायिक एकता के लिए प्रयास करना था। भारत की आजादी के लिए मुस्लिम जगत की सद्भावनायें भी प्राप्त करना था। जो लोग आजाद हिन्द रेडियो में काम करते थे, उनमें प्रमुख थे सर्वश्री प्रमोद सेन, बीन् वनर्जी , सुरेश लाल मुल्तान, मुशोद मामा, विहान जौहरी , प्रोफेसर भट्ट , एस. आर. व्यास नायडू शर्मा मजूमदार तथा डा. मुखर्जी।[2]

"प्रसारण स्थल गोपनीय रखा जाता था। एक बार स्वीडन गुप्तचर सेवा ने इसका पता लगा लिया तो तुरन्त इसका स्थान बदल दिया गया था।[3]

आजाद हिन्द रेडियो का जर्मनी से प्रसारण

25.03.1942

भारतीय जनता को विश्वास हो गया था कि वाद विवाद या तर्क, प्रचार और सत्याग्रह से स्वतंत्रता प्राप्त करने की आशा अब नहीं रही वरन् उसके लिये अधिक कारगर और शक्तिशाली तरीकों को अपनाना पड़ेगा।

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 55–56
2. वही।
3. वही, पृष्ठ संख्या 56–57

23.04.1942

एक भारतीय के रूप में सदैव हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लड़ता रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि सभी भारतीयों को, चाहे वे कहीं भी हों, भारत की मुक्ति के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहिये। प्रत्येक भारतीय को साहस के साथ लड़ना चाहिये। भारत के प्रत्येक पुत्र को इस दृढ़ विश्वास के साथ लड़ना चाहिये कि हमारे पूर्वजों की धरती की मुक्ति का दिन अब निकट है।

बर्लिन से प्रसारण

13.03.1942

प्रत्येक भारतीय राजनीतिज्ञ जानता है, भारत में अंग्रेजों का लक्ष्य "फूट डालों, राज्य करो" की नीति है। जब तक उनके दूषित पाँव भारत की मिट्टी पर रहेंगे, वे कभी भी अपनी दूषित नीतियों का परित्याग नहीं करेंगे।

अंग्रेज भारतीयों में फूट डालने का प्रयत्न करते रहे हैं। इस उद्देश्य में वह कुछ सीमा तक सफल भी हुये हैं। विभिन्न वर्गों में फूट का तर्क देकर उन्होंने भारत को स्वराज्य देने से सदैव इन्कार किया है। अंग्रेजों के षडयन्त्र का कोई अन्त नहीं।

टोकियो से प्रसारण

23.06.1943

ब्रिटिश सरकार झुकेगी नहीं, चाहे समाप्त हो जाये। इसलिये किसी

भारतीय को स्वप्न में भी यह सोचने की आवश्यकता नहीं कि ब्रिटेन एक न एक दिन भारत की स्वतंत्रता को मान्यता देगा।

सभी क्षेत्रों में ***आजाद हिन्द रेडियो*** के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी। अफगानिस्तान स्थित जर्मन दूतावास ने सूचित किया कि आजाद हिन्द रेडियो से प्रसारित समाचारों को अफगानिस्तान में बड़े चाव से सुना जाता है और उसके प्रसारण का बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ रहा है।

''इसी प्रकार के सन्देश भारत में भी प्राप्त हुये। भारत में तो ***आजाद हिन्द रेडियो*** ने जादू का काम किया था। यद्यपि भारत में आजाद हिन्द रेडियो के कार्यक्रम सुनने पर पाबन्दी लगी हुयी थी, परन्तु फिर भी लोग छिपकर इसके कार्यक्रम सुनते थे और प्रेरणा ग्रहण करते थे।[1]

''जिन दिनों नेता जी जर्मनी में थे, तभी जर्मनी और इटली में आजाद हिन्द फौज का निर्माण हो चुका था। नेताजी जानते थे कि असली कुर्बानियाँ तो सैनिक वर्ग ही करता है अतः उसका मनोबल बनाये रखना सबसे अधिक आवश्यक था। वे ऐसा कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे जब आजाद हिन्द फौज के साथियों से उन्हें कुछ कहने को मिलता। 2 जून,1942 को यूरोप स्थित आजाद हिन्द फौज के साथियों को सम्बोधित करते हुये उन्होंने ***आजाद हिन्द रेडियो*** से कहा ....

''साथियों! ***आजाद हिन्द फौज*** का निर्माता होने का सौभाग्य आप

---

1. नागपाल ओम : पूर्वोक्त आजादी राष्ट्रीय आन्दोलन, पृष्ठ संख्या 371

लोगों को प्राप्त है। स्वाधीन भारत के इतिहास में आप लोगों के नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखे जायेंगे। देश की आजादी की पवित्र लड़ाई में जो भी सैनिक शहीद होगा स्वतन्त्र भारत में उसका स्मारक बनाया जायेगा। आने वाली पीढ़ियां इन स्मारकों पर फूल बरसायेंगी। हम लोग बहुत सौभाग्यशाली हैं कि मातृभूमि की सेवा करने का हमको और आपको अवसर मिला ।[1]

"कुछ लोग यह समझते थे कि नेता जी दूसरे देशों से आजादी की भीख मांगने गयें। इस भ्रम का निवारण करते हुये नेताजी ने सैनिकों से कहा था:, "याद रखो तुम्हें आजादी की कीमत चुकानी है। आजादी कभी भीख में नही मिलती उसे शक्ति के माध्यम से प्राप्त किया जाता हैं। आजादी की कीमत खून है। हम किसी विदेशी शक्ति से आजादी की भीख नहीं मांगेगे। हम मूल्य चुकाकर ही आजादी प्राप्त करेंगे।"[2]

"भारत में इन दिनों भारत छोड़ो आन्दोलन चल रहा था। सभी बड़े–बड़े भारतीय नेताओं को जेलों में बन्द कर दिया गया था नेताजी भी भारत में नही थे। यह होते हुये भी भारतीय जनता को यह नहीं लग रहा था कि वह भारत में उनके बीच नहीं हैं। आए दिन नेताजी का स्वर **आजाद हिन्द रेडियो** से सुनाई देता था। वे जर्मनी से ही भारत छोड़ो आन्दोलन का संचालन कर रहे थे। उन दिनों उन्होंने आजाद हिन्द रेडियो से ही जनता को निम्नलिखित कार्यक्रम दिया था।

---

1. बोस सुभाषचन्द्र : ब्राडकास्ट टू दि इण्डियन नेशनल आर्मी इन यूरोप, जून 1942 पब्लिस्ट इन सिलेक्ट स्पीवेज ऑफ सुभाष चन्द्र बोस पब्लिकेशन डिवीजन, पृष्ठ संख्या 139

2. वही।

मैं सामान्य जनता से यह आग्रह करूंगा कि वे निम्नलिखित गतिविधियों का संचालन करें–

1– अंग्रेजी वस्तुओं का वहिष्कार करें। साथ ही अंग्रेजी वस्तु भण्डार तथा शासकीय भण्डारों में आग लगा दें।

2– भारत में बसे हुये सभी अंग्रेजों तथा अंग्रेज भक्तों का वहिष्कार करें।

3– आम सभाएं आयोजित करें तथा विरोध प्रदर्शन करें। शासकीय प्रतिबन्धों की उपेक्षा का विरोध करें।

4– गोपनीय विज्ञप्तियाँ प्रकाशित करें तथा गोपनीय आकाशवाणी केन्द्र स्थापित करें।

5– अंग्रेज अधिकारियों के घरों पर धरना देकर उन्हें भारत छोड़ने के लिए विवश करें।

6– शासन को व्यय करने के लिए शासकीय कार्यालयों, सचिवालयों तथा न्यायालयों आदि पर अधिकार करने के लिए चल समारोहों का आयोजन करें।

7– जो जनता का शोषण करे, उन सभी अधिकारियों व कर्मचारियों को सजा दें।

8– जिन क्षेत्रों मे पुलिस या फौज द्वारा आक्रमण की सम्भावना हो उन क्षेत्रों में रक्षा गृहों का निर्माण करें।

9– युद्ध में सहायता देने के लिए स्थापित किये गये शासकीय कार्यालयों व कारखानों में आग लगा दें।

10– विभिन्न स्थानों पर डाकघर, टेलीफोन व्यवस्था को भंग कर दें।

11– युद्ध साम्रगी व सैनिकों को ले जाने वाली रेलगाड़ियों, बसों तथा ट्रकों में अवरोध उत्पन्न कर दें।

12– एकान्त में स्थित पुलिस, रेलवे स्टेशनों तथा जेलों को नष्ट कर दें।[1]

स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि ***आजाद हिन्द फौज*** को एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है, जो मजबूती के साथ उसका संचालन कर सके। सैनिक और सैनिक अधिकारी जिसके इशारों पर अपना जीवन बलिदान करने के लिए तत्पर हो।

''सभी को विश्वास था कि भारत माता के एक मात्र सपूत सुभाष चन्द्र बोस ही इस महान कार्य के लिए अति उत्तम व्यक्ति हैं अतः सुभाष चन्द्र बोस को यूरोप से एशिया लाया गया उनकी यात्रा अत्यन्त जोखिम भरी थी। इस सम्बन्ध में उन्हें चेतावनी दी गयी थी, परन्तु नेताजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था – ''वह मेरी आवश्यकता है। रास्ते में खतरे होते हुये भी मैं यह काम अवश्य करूँगा । अगर रास्ते में मेरी मृत्यु भी हो जाये, तो भी मुझको इस बात का सन्तोष होगा कि भारत माता का यह सपूत स्वतन्त्रता के लिए लड़ते लड़ते मरा है।[2]

''टोकियो में सुभाष बाबू का शानदार स्वागत हुआ। जनरल तोजो स्वयं उनके स्वागत के लिए उपस्थित थे। पूर्वी एशिया के भिन्न भिन्न स्थानों

---

1. पूर्वोक्त सुभाष चन्द्र बोसः ब्राडकास्ट फ्रॉम आजाद हिन्द रेडियो, जर्मनी, अगस्त 31, 1942 पृष्ठ संख्या 146

2. अग्रवाल गिरिराज शरण : पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 112–113

से कुछ लोग उनका स्वागत करने के लिए आये थे। वास्तव में सुभाष का उसी प्रकार का स्वागत किया गया था, जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती देने वाले एक महान क्रान्तिकारी का होना चाहिए था।

''टोकियो पहुँचने पर सुभाष चन्द्र बोस ने वक्तव्य में कहा थाः गत महायुद्ध में अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने हमारे नेताओं को चकमा दे दिया। इसलिए हमने निश्चय कर लिया कि भविष्य में हम उन पर कतई विश्वास नहीं करेंगे।

''वर्षों के संघर्ष के पश्चात स्वतन्त्रता का प्रभाव हो रहा है ऐसा अवसर आगामी 100 वर्षों तक हाथ नहीं आयेगा । इसलिए वर्तमान स्थिति से हमने पूरा लाभ उठाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है।

''भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का परिणाम हुआ है। नैतिक पतन संस्कृति का विनाश, आर्थिक बर्वादी और राजनीतिक परतन्त्रता। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने रक्त से अपनी स्वतन्त्रता का ऋण चुकायें।

''इस प्रकार अपने वलिदानों से प्राप्त अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा हम अपनी शक्ति से कर सकेंगे। जिस दुश्मन ने अपनी तलवार खींची है, उसके साथ हमें तलवार से ही लड़ना पड़ेगा। कठोर अग्नि परीक्षा के पश्चात् ही हम स्वतन्त्रता के अधिकारी बन पायेंगे।[1]

''22 जून 1943 को नेताजी ने प्रथम बार टोकियो रेडियो से

---

1. ब्राडकास्ट फ्रॉम टोकियो, 22 जून, 1943 पुट इन सिलेक्टेड स्पीचेज ऑफ सुभाष चन्द्र पूर्वोद्धत।

अपना भाषण प्रसारित किया। आजाद हिन्द के सभी कैम्पों में इसके सुने जाने का प्रबन्ध किया गया था। इस अवसर पर नेताजी ने कहा था :

"ब्रिटिश शासकों की यह घारणा रही है कि भले ही कोई मरे या जिये और कितने ही साम्राज्य बनें या विगड़ें, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद सदैव अडिग रहे परन्तु इसमें भी एक रहस्य है और वह यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य भारत की सहायता से ही दृढ़ हुआ है प्रत्येक अंग्रेज जानता है कि उसको भारत से असीम लाभ है। उनका साम्राज्य वास्तव में भारत पर ही आधारित है। इसलिए उसे बचाने के लिए वे प्राणपण से लड़ेंगे । अतः अंग्रेजों को चाहे कुछ भी न मिले, लेकिन वे अन्त तक अपने इस साम्राज्य को बचाने के लिए भारत को अपने चंगुल में बनाये रखना चाहेंगे।

3. सफलतायें – विफलतायें

सुभाष चन्द्र बोस यह भली भांति जानते थे कि जर्मनी में वे भारतीयों की एक बहुत बड़ी सेना खड़ी नहीं कर सकेंगे। क्योंकि वहाँ भारतीय युद्धबन्दियों की संख्या अधिक नहीं थी। वे यह भी जानते थे कि केवल 5–6 हजार व्यक्तियों की सेना खड़ी कर लेने से भारत की सीमाओं से इतनी दूर रहकर वे अंग्रेजों का कुछ अधिक बिगाड़ नहीं सकेंगे। इसके बावजूद उन्होंने यूरोप में एक छोटी सी आजाद हिन्द फौज खड़ी की थी। इसका कारण यह था कि नेता जी एक व्यवहारिक बुद्धि के तर्कशील व्यक्ति

थे। वे समूह मनोविज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे। विश्व इतिहास का उन्होंने गहन अध्ययन किया था। वे यह जानते थे कि कभी –कभी छोटी सी घटना भी इतिहास की धारा को बदल देती है। फौज में सैनिकों की संख्या से अधिक मनोबल का महत्व होता था।

1 सितम्बर 1942 को ***''आजाद हिन्द फौज'*** का विधिवत जन्म हुआ लेकिन इस दिशा में बहुत धीमी गति से काम आगे बढ़ा था। इसके कई कारण थे–

(अ) आजाद फौज के गठन का बहुत से सैनिक अधिकारियों ने विरोध किया।

(ब) परिषद के सदस्यों में मतभेद थे।

(स) मोहन सिंह ने जापानी अधिकारियों से 23 दिसम्बर 1942 तक उपयुक्त नीति की घोषणा करने की माँग की थी। (रासबिहारी बोस ने जिस आधारशिला को रखा था उसी पर सुभाष चन्द्र बोस एक भवन का निर्माण कर सके)।

"नेता जी की योजना थी कि जर्मनी में भारतीयों की एक छोटी सी सेना खड़ी करने का लाभ यह होगा कि उन युद्ध बन्दियों की निराशा दूर होगी ही, साथ ही साथ उन्हें अपने देश की आजादी के लिए लड़ाई लड़ने का गौरव प्राप्त होगा। धीरे–धीरे अन्य गुट के लोग भी आजाद हिन्द फौज में भर्ती होने के लिए तैयार हो जायेगे।[1]

---

1. अयोध्या सिंह : भारत का मुक्ति संग्राम मकमिलन, दिल्ली पृष्ठ संख्या 736

नेताजी यह भी जानते थे कि इस प्रकार की फौज खड़ी करने से उन सैनिकों पर भी प्रभाव पड़ेगा जो ब्रिटेन की ओर से उत्तरी अफ्रीका और मिस्र में जर्मनी के खिलाफ लड़ रहे थे। नेताजी जानते थे जन मोर्चे पर रही भारतीय सेनाओं को ज्ञात होगा कि सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में भारत को स्वतंत्र कराने के लिए फौज गठित की जा रही है तो भारतीय सेनायें अंग्रेजो के लिए न लड़कर उनके विरूद्ध लड़ने के लिए लालायित हो उठेंगी। हुआ भी यही जब उत्तरी अफ्रीका में लड़ रही भारतीय फौजों को आजाद हिन्द सेना को ज्ञात हुआ तो उन्होंने देश की आजादी के लिए लड़ना ज्यादा अच्छा समझा। उन्होंने इसके बाद मन से लड़ाई नही लड़ी जानबूझकर बन्दी बनकर जर्मनी पहुंचकर ***आजाद हिन्द फौज*** में भर्ती हो गये।

इस छोटी सी, परन्तु दृढ़ भावना युक्त फौज को सुभाष चन्द्र बोस भारत की उत्तरी या पूर्वी सीमाओं पर उतार देना चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि हमारी फौजों को भारतीय सीमा में पंहुच जाने पर भारत में अनुकूल वातावरण बन जायेगा और भारतीय फौजें अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह कर देंगी। ऐसी स्थिति में भारतीय जनता का सहयोग और सेनाओं के विद्रोह और विदेशी सेनाओं के सहयोग से छोटी सी ***"आजाद हिन्द फौज"*** भी बहुत कुछ कर दिखायेगी।

"अपनी इस योजना को मूर्त रूप देने के लिए नेताजी ने जर्मनी में आजाद हिन्द फौज खड़ी की।[1]

---

1. वही, पृष्ठ संख्या 736–737

उन दिनों भारतीय युद्धबन्दी कई शिविरों में फैले हुये थे। वे इटली, फ्रांस व जर्मनी के शिविरों में थे। इनकी सबसे अधिक संख्या लीबिया मे थी। सुभाष चन्द्र बोस ने पहले 15 विश्वस्त सहयोगी चुने। सबसे पहले उन्हें ही *''आजाद हिन्द फौज'* में भरती किया गया। ये गुटबन्दियों में से नहीं, विद्यार्थियों में से चुने गये थे। इन्हें फ्रेंन्कन वर्ग के प्रशिक्षण शिविर में गहन प्रशिक्षण दिया गया। यहां उन्हें जर्मन प्रशासकों ने कठोर सैन्य प्रशिक्षण दिया। ये पन्द्रह युवक अन्य वर्ग के बन्दी शिविर में आकर अन्य युद्ध वन्दियों को भी युद्धबन्दियों से मिलकर आजाद हिन्द सेना में भरती होने के लिए प्रेरित करते थे।

''आजाद हिन्द फौज के प्रारम्भिक प्रशिक्षणार्थी जब युद्धबन्दी शिविरों में जाते थे तो वे युद्धबन्दी उनके लिए सिर दर्द बन जाते थे, क्योंकि ब्रिटिश सेना में तो उन्हें थोड़ा सा प्रशिक्षण देकर भर्ती कर लिया जाता था और गोली का निशाना बनने के लिए युद्ध मैदान मे भेज दिया जाता था। यदि उन्हें आजाद हिन्द फौज में भर्ती कर लिया जाता तो वहाँ के पुराने रंगरूटों के लिए समस्या बन सकते थे। वे जंगली जैसा व्यवहार करते थे। ***आजाद हिन्द फौज*** में उन्हें पूर्ण रूप से प्रशिक्षित कर कठोर अनुशासन की शिक्षा दी गयी थी।[1]

सभी युद्ध बन्दी जर्मनी पहुंच चुके थे, तो नेता जी के दर्शन

---

1. सरल श्रीकृष्ण : नेताजी सुभाष जर्मनी में, पृष्ठ संख्या 89

करने की उनकी सहज इच्छा हुयी। उनकी इच्छा की पूर्ति की गयी। प्रशिक्षण शिविर में युद्धबन्दियों के साथ नेता जी की भेंट सभी से करवायी गयी। एक समारोह आयोजित हुआ, इस सभा में गम्भीर और संयत स्वर में नेताजी ने अपना उद्‌बोधन प्रारम्भ किया। उन्होनें बताया कितनी कठिनाई के बीच ***"आजाद हिन्द फौज"*** की स्थापना की गयी है। उन्होंने देश की आजादी की जरूरत बताते हुये उसके प्रतिजन को फर्ज का ज्ञान कराया। नेताजी जी ने अपने भाषण में किसी भी क्षण आजाद हिन्द फौज में भर्ती होने का आग्रह नहीं किया। वे चाहते थे कि वे स्वप्रेरित होकर आजाद हिन्द फौज में भरती हों। उस समय ***आजाद हिन्द फौज*** में भर्ती होने में समस्यायें अधिक थीं, प्रचार भी इसके विरूद्ध था, आकर्षण कम था, परन्तु इस आकर्षण के न होते हुए भी नेता जी की प्रेरणा से हजारों लोग आजाद फौज में भरती हुये।[1]

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 70

अध्याय - सप्तम्

(अ) मूल्यांकन।

(ब) संदर्भ ग्रन्थ सूची

पत्र एवं पत्रिकायें।

(स) परिशिष्ट।

मूल्यांकन

सुभाष चन्द्र बोस भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में उच्च श्रेणी के नेताओं के रूप में हैं। उन्होंने राजनीति गाँधीजी के समकालीन बंगाल के नेता चितरंजन दास के सानिध्य में सीखी थी। उनमें देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुयी थी। सुभाषचन्द्र बोस एक राजनैतिक चिंतक एवं विचारक थे। उन्होंने चितरंजनदास के नेतृत्व में अपने जीवन की शुरूआत की। सुभाष चन्द्र बोस का जीवन एक उन्नायक के रूप में था। वे जीवन में कभी हताश व निराश नहीं हुये थे। उनकी सोच में गम्भीरता, त्याग एवं सच्चाई थी। सुभाषचन्द्र बोस ने हमेशा बहुत सी चुनौतियों का सामना किया। वे दूरदर्शी होने के साथ-साथ एक अद्‌भुत संगठन और नेतृत्व उच्च कोटि की क्षमता वाले राजनेता थे।

सुभाषचन्द्र बोस इतने लोकप्रिय थे कि गाँधीजी की इच्छा के विरुद्ध वे दो बार कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुये। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस को अद्‌भुत एवं प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान किया। उनके काल में योजना समिति नियुक्त की गई थी। उनके मन और मस्तिष्क में स्वतंत्र भारत की एक सुविकसित एवं सुनिश्चित तस्वीर थी। वे किसी भी कीमत पर भारत को स्वतंत्र देखना चाहते थे। उन्होंने देश को स्वतंत्र कराने के लिये न केवल देश का मोह छोड़ा अपितु एक दिन इस राष्ट्र व मातृभूमि का भी मोह छोड़ कर देश से पलायन कर गये। सुभाषचन्द्र

बोस के विचारों में दृढ़ता एवं प्रगतिशीलता थी। वे तानाशाही के खिलाफ थे।

कांग्रेस की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में गाँधीजी से उनके मतभेद एवं भिन्नतायें थीं। इन मतभेदों को दूर करने और गाँधीवादियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिये उन्होंने भरसक प्रयास किया परन्तु गाँधीजी के अड़ियल रवैये के कारण यह सम्भव नहीं हो सका तो उन्होंने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया और एक नयी पार्टी फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना की। आरम्भ में फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस के प्रगतिशील मंत्र के रूप में की थी। परन्तु धीरे–धीरे उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस उनके फारवर्ड ब्लॉक की नीतियाँ कार्यक्रमों से सहमत नहीं हैं तथा दोनों के रास्ते अलग–अलग हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ होने पर सुभाषचन्द्र बोस का मत था कि इस समय एक ऐसा अवसर आया है जबकि कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार का जमकर विरोध आलोचना व असहयोग करना चाहिये। उन्हें एक ऐसा आन्दोलन शुरू कर देना चाहिये जिससे ब्रिटिश सरकार परेशान होकर भारत को मुक्त कर दे। काफी बिलम्ब से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू किया।

नेताजी अपने नये रास्ते बना चुके थे। सुभाषचन्द्र बोस ने आन्दोलन के समय अपने जीवन को निर्णायक और गरम लोहे की तरह तप्त किया क्योंकि उनके अनुसार वह समय भारतीय राजनीति के लिये

निर्णायक और गरम लोहे वाला समय था। उस समय यदि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर करारा प्रहार किया जाता तो ब्रिटिश साम्राज्य का जनाजा भारत से उठ सकता था। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर उन्होंने जेल में अनशन आरम्भ कर दिया था। उन्होंने सरकारी अफसरों से स्पष्ट कर दिया था कि मुझे छोड़ दो अन्यथा मैं जीवित रहने का विरोध करूँगा। वे अनशन के कारण काफी कमजोर हो गये थे। उनकी दुर्बलता को देखकर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें जेल से छोड़कर घर में नजरबन्द कर दिया। सुभाष चन्द्र बोस के मन में कुछ और ही था।

ब्रिटिश अधिकारियों के साथ उन्होंने जीवन में कई संघर्ष और साहसपूर्ण जोखिम भरी यात्रायें भी की थीं। जर्मनी में उन्होंने हिटलर से मुलाकात की तथा यूरोप में युद्धबन्दियों में से सैनिक भर्ती कर एक ***आजाद हिन्द फौज*** बनायी। सुभाषचन्द्र बोस द्वारा आजाद हिन्द रेडियो से प्रसारित वक्तव्य अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली थे। जर्मन सरकार ने उन्हें एक हवाई जहाज भी प्रदान किया था। जिससे वे युद्ध के मोर्चे पर भी बिना किसी बाधा के आ जा सकते थे। वह कई बार इटली गये, वहाँ मुसोलिनी और उनके दामाद कयोनी से भेंट की। रास बिहारी बोस ने कैप्टन मोहन सिंह के सहयोग से ***आजाद हिन्द फौज*** का गठन किया था। ***आजाद हिन्द संघ*** ठीक से काम नहीं कर रहा था। उसका नेतृत्व सम्भालने के लिये रास बिहारी बोस ने जर्मनी से सुभाषचन्द्र बोस को आमंत्रित किया। उस दिन 1943 को जापान ने सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द सरकार को

अंडमान निकोवार द्वीप प्रदान किये थे। जिनका नाम स्वराज तथा शहीर द्वीप रखा गया तथा इस पर तिरंगा फहराया गया। जनवरी 1944 में ***आजाद हिन्द फौज*** का कार्यालय तथा मुख्यालय वर्मा में आ गया। 18 मार्च 1944 को इस फौज ने भारत की पवित्र धरती पर अपनी मातृभूमि की सेवा करने के लिये अपना कदम रखा।

आजाद हिन्द फौज ने इस युद्ध में वीरता के अपूर्व कीर्तिमान स्थापित किये। उसने कई महत्वपूर्ण मोर्चों पर यह सिद्ध कर दिया कि देशभक्ति और देश की आजादी की महान प्रेरणा से लड़ने वाली सेना किराये की सेना से लाख दर्जा बेहतर होती है। यद्यपि ब्रिटिश सेना के पास उत्कृष्ट कोटि के हथियार और सैनिक सामग्री थी। सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज के मन में आजादी की वो लगन और दिल्ली चलो, **तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा**। जैसे तेजस्वी देश भक्तिपूर्ण अपीलों से जो अद्‌भुत प्रेरणा दी थी। उसके कारण युद्ध के मैदान में विभिन्न मोर्चों पर भारतीयों ने ब्रिटिश सेना के दाँत खट्टे कर दिये थे। 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध का पांसा पलट चुका था। युद्ध में जापान की हार जापान द्वारा ***आजाद हिन्द फौज*** को हथियारों की मदद बंद करने से ***आजाद हिन्द फौज*** का संघर्ष भी तेज न हो सका। ***आजाद हिन्द फौज*** को रंगून से बैंकाक स्थानान्तरित कर दिया गया तथा 6 अगस्त 1945 को अमरीका ने हिरोशिमा नगर पर एटमबम डाला (लिटिल ब्याय) जिसका नाम लिटिल ब्याय रखा तथा 9 अगस्त को जापान का नागासाकी नगर एटमबम (Fat boy) का शिकार

हुआ जिसके कारण ये दोनों नगर बर्बाद हो गये तथा वहाँ के लोगों का जनजीवन अस्त–व्यस्त हो गया और समस्त पूर्वी एशिया के कई देश भयभीत हो गये। जापान के आत्मसमर्पण के बाद सुभाषचन्द्र बोस के सामने भी आत्मसमर्पण के अतिरिक्त कोई और चारा न था।

सुभाषचन्द्र बोस इसी सम्बन्ध में जापानी नेताओं से बातचीत करने के लिये एक हवाई जहाज से रवाना हुये थे कि इस जहाज के दुर्घटनाग्रस्त होने की कहानी कही जाती है। जिसमें सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु हो जाना बताया जाता है किन्तु आज तक कोई भी सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु पर विश्वास नहीं करता है। कोई कर भी कैसे सकता है? वे भारत की जनता के हृदय सम्राट थे। उनका जीवन एक जासूसी उपन्यास की तरह है। जिस तरह एक उपन्यास का पाठक उसकी मृत्यु नहीं यह कल्पना करता है कि उसका नायक मरा नहीं वह कभी भी फिर जी उठेगा उसी प्रकार भारत में लोग सोचते हैं कि इतनी जीवन्त आत्मा मर नहीं सकती। उनका व्यक्तित्व अजर व अमर है। उनके बारे में कई किवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

सुभाषचन्द्र बोस (1897-1949) एक महान राजनैतिक थे। गम्भीर तथा उन्नायक देशभक्त और भारत में ब्रिटिश सेना के प्रति उनका तीक्ष्ण शत्रुता का व्यवहार था। वह सक्रिय राजनीतिक थे। उनमें आत्मत्याग और आत्मविश्वास था। उन्होंने राजनैतिक कार्य को अपने जीवन का कर्म क्षेत्र बनाया और उसी भावना से संलग्न हो गये। उनमें कष्ट सहन करने की अपरिमित क्षमता थी। उन्हें ग्यारह बार कारागार में डाला गया परन्तु भारतीय

स्वतंत्रता के आदर्श में उनकी गम्भीर निष्ठा थी। उन्हें समझौतावादी विचारधारा पसन्द न थी। बोस एक योद्धा थे और उनका स्थान विश्व के महान देशभक्तों में गिना जाता है। बोस पर, भारतवर्ष के महान चिंतक तथा योगी विवेकानन्द अरविन्द घोष, स्वामी रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी रामतीर्थ के साहित्य आध्यात्म एवं दर्शन का विशेष प्रभाव पड़ा। उनके जीवन में विभिन्न प्रकार की सामाजिक एवं राजनीतिक क्षमता को विकसित करने में गाँधीवादी विचारधारा का भी प्रभाव पड़ा। जिससे उनके विचार और राजनैतिक कार्यकलापों में गतिशीलता आयी। इसके साथ–साथ वे एक कर्मयोगी भी बने, उन्होंने फासिस्ट शक्तियों से भी हाथ मिलाना बुरा नहीं समझा। **"तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।"** नेता जी का यह नारा था भारत छोड़ने के लिये अंग्रेजों को मानसिक रूप से महात्मा गांधी ने तैयार अवश्य किया लेकिन उन्हें देश से बाहर निकालने की सुभाष की योजना ने अंग्रेजों को विवश कर दिया तथा भारत आजाद हो गया।

सुभाष चन्द्र बोस का जीवनकाल विभिन्न प्रकार की कार्यशैली एवं मतभेदों से भरा हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में कभी हार स्वीकार नहीं की। सुभाष चन्द्र बोस वास्तव में एक धनी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने अपने जीवन में राष्ट्र के सामने बहुत सी चुनौतियों को रखा जो समाज व राष्ट्र के लिये एक आदर्श थे। बोस वास्तव में भारतीय राजनीति के उन्नायक एवं जनक माने जाते हैं। सुभाष चन्द्र बोस ने भारत के सम्मान एवं गौरव के लिये विभिन्न प्रकार की कार्यशैलियों का निर्माण किया जो

मानवीय विकास एवं प्रतिमानों के रक्षा कवच और संरक्षक के रूप में रहे। सुभाष चन्द्र बोस की नीतियां और पराकाष्ठा एक आदर्श थे।

सुभाष चन्द्र बोस ने हमेशा भारतीय सैनिकों व राजनीतिज्ञों को संगठित किया और उनको गत्यात्मक एवं गतिशील बनाने की प्रेरणा दी। बोस वास्तव में स्वतंत्रता के लिये रात दिन संघर्ष करते रहे जिससे मानवीय और राष्ट्रीय गरिमा की रक्षा हो सके।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान देश की पराधीनता और स्वाधीनता के सम्बन्ध में सुभाष चन्द्र बोस का दृष्टिकोण सकारात्मक और पारदर्शी था। वह हमेशा ओजस्विता और तेजस्विता के विचारों पर केन्द्रीभूत रहते थे। वास्तव में बोस की कार्यशैली अनुकरणीय और प्रशंसनीय रही है जिन्हें मनुष्य अपने जीवन में उतारकर एकाग्रता को प्राप्त कर सकता है।

सुभाष चन्द्र बोस सारे राष्ट्र के लिये एक कसौटी थे। उन्होंने अपने जीवन में पराजय कभी नहीं मानी। उनके विचारों में दृढ़ता तथा मजबूती थी। जो उनके व्यक्तित्व का प्रमुख गुण था। "पराजय नहीं मानना एक मानवीय सकारात्मक दृष्टिकोण की पहचान है।"

सुभाषचन्द्र बोस की कार्यशैली नेहरू एवं गाँधी से अलग थी। उनकी शैली में एकाग्रता और उच्च्य पराकाष्ठा थी। जीवन में वह कर्म को प्रोत्साहन का रास्ता मानते थे जिससे वे राष्ट्र एवं समाज को नई दिशा दे सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्राथमिक स्रोत

1. *नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–1*, सम्पादक शरदचन्द्र बोस, प्रकाशित भारत शासन प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।

2. *नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–2*, सम्पादक शरदचन्द्र बोस, प्रकाशित भारत शासन प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1983

3. *सिलेक्टिड स्पीनेज ऑफ सुभाषचन्द्र* बोस विद ए वायोग्राफीकल इन्ट्रोडक्शन, बाय, एस.ए. अय्यर, पब्लिस्ड बाय पब्लिकेशन डिवीजन मिनिस्ट्री ऑफ इन्फोरमेशन एण्ड बॉडकास्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, न्यू देहली, स्विाईस्ड प्रिंट 1974

4. राष्ट्रीय संग्रहालय में सुभाषचन्द्र बोस और आजाद हिन्द फौज पर उपलब्ध सामग्री।

5. *बोस एस.सी. इन इण्डियन पिलग्रिम (आत्मकथा) 1897*, 1920 कलकत्ता स्पिक एण्ड कम्पनी 1948

6. *बोस सुभाषचन्द्र बोस, दि इंडियन स्ट्रगल* (1920–34) कलकत्ता, थोकर स्पिल एण्ड कम्पनी।

7. *बोस सुभाषचन्द्र* (1924–1942) कलकत्ता चटर्जी कम्पनी, 1952

8. बोस, सुभाषचन्द्र, तरुण के स्वप्न।

गौण स्रोत

1. *सुन्दरलाल* – भारत में अंग्रेजी राज्य, प्रकाशन वि० सूचना एवं प्रकाशन मंत्रालय, भारत सरकार।
2. यतीन्द्रनाथ नारी – क्रांति रथी, नेताजी विचार प्रकाशन, हासूद खंडवा मन्त्र० ।
3. *जवाहरलाल नेहरू–* विश्व इतिहास की झलक खण्ड 3, समता साहित्य नई दिल्ली।
4. *सुभाष कश्यप* – भारत का संवैधानिक एवं स्वाधीनता संघर्ष, रिसर्च देहली 1983।
5. *बी.एन. सिंह* – तोड मार्क्स इन इण्डियन कम्यूनिकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट
6. *विद्याधट महाजन–* भारत का संवैधानिक इतिहास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन एस० चाँद एण्ड कम्पनी 1976।
7. *गिरिराज शरण अग्रवाल–* क्रांतिवीर सुभाषचन्द्र बोस डायमंड नई दिल्ली।
8. *ओ०पी० नागपाल–* भारत का राष्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास कमल प्रकाशन इटौंद
9. *शंकर युद्धानन्द जी सुभाषचन्द्र बोस,* हिंद पाकेट न्यू दिल्ली।
10. *अयोध्या सिंह* – भारत का मुक्ति संग्राम मैकमिलन, बम्बई 1977
11. *अब्दुल कलाम आजाद* – इण्डिया विन्स फ्रीडम।
12. रजनी वामदत्त, इण्डिया टुडे।

13. ए.सी. चटर्जी, इण्डियन स्ट्रगल फार फ्रीडम, कलकत्ता, 1948

1. 80th Birthday Anniversary of Biplav Maharayall Ras Bihari Bose.

2. Krishna Chandra Das. Biplav Mahanayall Rasbihari Bose Anniversary Number.

3. J.L. Nehru: A Bunch of old letters, Asia Pub. Trudt, Bombay.

4. P.N. Chopta. Whose who Indian Martyrs, Ministry of Education, New Delhi.

5. S. Gulab Singh. Under shadow of Gallo win, Roop Chand

6. Nami Chandra Bose: Indian National Movement, firm M.Lukhopadhyay, Calcutta.

7. Tilak Raj Sareen. Indian Revolutionary movement abroad sterling pvt. New Delhi

(List of the Netaji, Research Budu publication Calcutta)

1. S.C. Bose: An Indian Pilgrim

2. S.C. Bose: Cross Road

3. S.C. Bose Correspondance

4. Sharad Chandra Bose: I warned my country men.

5. S.K. Majumdar: Evaluation of Netaji

6. Subhash Chandra Bose: Fundamental Questuire of Indian Revolution.

7. Alexander wirth: Netaji in Germany

8. S.A. Ayer: The Indian independance movement in East Asia.

9. M.R. Vyas: The Azad hind movement East Asia.

10. H.V. Kamath: Netaji 1937-40 Prehide to Prehide to final struggle.

11. Col. Laxmi Shehgal: The role of women in Azad Hind movement.

12. G.K. Mukherjee: Netaji the great resistant leader.

13. Col. P.K. Sahgal: The Indian National Army.

14. Bulletins of Netaji Research Bureau.

15. Netaji Exhivition Andaman Sovenier.

16. Abid Hussain Safarani: The man from Imphal.

17. John Athiely: The struggle in East Asia.

Other publishers

18. S.C. Bose; Bycott goods Hrikesh Chatterji, Calcutta

19. S.C. Bose through Congress Eyes, Kitvistha Allahabad

20. S.C. Bose Mission of life, thackes spink comp, Bombay

21. S.A. Ayer on to him A winters, Thackes Spink Com-Bombay

22. Ed. J.S. Bright: Important Speeches and writings of Subhash Chandra Bose, The Elma Co, Calcutta.

23. N.G. Ganpuley: Netaji in Germany, Bhatia Vidhay Bhawan Bombay.

24. Maj-Genshaneaway Khan: I.N.D. and it Netaji- Rajkamal Delhi

25. Uttam Chandra Malhota: when Bose was Ziauddin, Rajkamal Delhi.

26. Arun Tertament of Subhash Chandra Bose, Rajkamal Delhi

27. Ed- Narayan Menon: Blod Bath, Indian Independance league Shrinagar.

28. Amar Larhi: said Subhash Bose, The Book house Calcutta.

29. Dilip Kumar Roy: Netaji the man Bhartiya Bhawan, Bombay

30. Kitti Kutti: Subhash Chandra Bose as I know him, K.L. Mukhopadhyay, Calcutta.

31. Sopan: Netaji Subhash Chandra Bose his life and work Sankar Mandir, Bhavnagar.

32. Drarlav Singh : The rebal president, Hero publication Lahore.

33. J.N. Ghosh: Netaji Subhash chandra Bose Orient Book Calcutta.

34. Hira lal Seth: Personally and political ideals of Subhash Chandra Bose, is he bacist Hero pub. Lahore..

35. Ed. Shri Ram sharma: Netaji his life and work Shiv Lal Agarwal, Agra.

36. Hemendra Nath Das Gupta: Subhash Chandra Bose Bharat Book Calcutta.

37. J.G. Ohsawa: Two Indian in Span Kurs publication Calcutta.

38. Huge to ye: Subhash Chandra Bose (The Spring Tiger) Saico pub. house Bombay.

39. Selected Speeches of Subhash Chandra Bose, pub. Div. Govt. of India.

40. Netaji Engami committee Report.

41. Suresh Chandra Bose Dissitant Report, Subran Prakashan, Calcutta.

42. Dilip Kumar Roy: The Subhash I know Nalanda Pub. Bombay.

43. Subhash Chandra Bose impressions in linife Hero pub. Lahore.

44. The Nation Netaji number (1990)

45. T. Hayashida: Netaji Subhash Chandra Bose, Allied Bombay.

46. S.A. Ayer: Story of I.N.A., National Book trust - India

47. K.K. Ghosh: Indian National Army, Meenakshi Prakashan, Meerut.

48. S.K. Bose and others: A Beacon across Asia, Orient Congm.

पत्र–पत्रिकायें

1. आजाद हिंद फौज स्मारिका, जबलपुर।

2. ज्ञानभारती।

3. सुभाष जयंती स्मारिका, 1981 इंदौर।

4. राष्ट्रहित देहली।

5. कादम्बनी (विशेष रूप से क्रांति विशेषांक) 1968, दिल्ली।

6. क्रांतियुग का शहीद युग कानपुर

7. मनोरमा क्रांति विशेषांक

8. माल्यजन लखनऊ

9. शहीदों को श्रद्धांजलि (शहीद अर्द्ध शताब्दी समारोह समिति दिल्ली)

10. प्रताप

11. संसद

12. विश्ववचन

13. हिन्दुस्तान (साप्ताहिक)

14. धर्मयुग

15. गंगा (मासिक)

16. वीर अर्जुन (दैनिक)

17. नवभारत

18. टाइम्स ऑफ इण्डिया

19. हिन्दुस्तान

20. स्वदेश

21. दैनिक भास्कर

22. नई दुनिया

23. नेताजी रिसर्च व्युरो कलकत्ता का बुलेटिन

24. अमर उजाला कानपुर संस्करण

25. स्वदेश (ग्वालियर संस्करण)

26. नई दुनिया (भोपाल संस्करण)

27. राजस्थान पत्रिका (जयपुर)

28. पंजाब केसरी (चंडीगढ़)

29. माया (मासिक पत्रिका)

30. इण्डिया टुडे मासिक पत्रिका

Appendix-I

Netaji's First Broadcast over the Azad Hind Radio

[The following is the text of Netaji Subhash Chandra Bose's first broadcast to the world over the Azad Hind Radio on February 19, 1949-Ed.]

This is Subhash Chandra Bose speaking to you over the Azad Hind Radio.

For about an year I have waited in silence and patience for the march of events and now that the hour has struck, I come forward to speak.

The fall of Singapore means the collapse of the British Empire, the end of the iniquitous regime which it has symbolised and the dawn of a new era in India history. The Indian people who have long suffered from the humiliation of a foreign yoke and have been ruined spiritually, culturally, politically and economically while under British domination must now offer their humble thanks to the Almighty for the auspicious event which bears for India the promise of life and freedom.

British Imperialism has in modern history been the most diabolical enemy of freedom and the most formidable obstacle to progress. Because of it, a very large section of mankind has been kept enslaved and

in India alone, about one fifth of the human race has been ruthlessly suppressed and persecuted. For other nations, British Imperialism may be the enemy of today, but for India, it is the eternal foe. Between these two there can be neither peace nor compromise. And the enemies of British Imperialism are the natural allies of India just as the allies of British Imperialism are today our natural enemies.

The outside world hears from time to time voices coming from India, claiming to speak either in the name of the Indian National Congress or of the Indian people. But these are voices coming through the channels of British propaganda and nobody should make the fatal mistake of regarding them as representative of Free India. As is natural in a land that has been under foreign comination, the British oppressors have indeavour to create divisions among the Indian people. As a consequence thereof, we find in India those who openly support British Imperialism. There are others who, whether intentionally or unintentionally, help the British cause while often camoufiaging their real motives by talking of cooperation with China, Russia and other Allies of England. There is, however, the vast majority of the Indian people who will have no compromise with British Imperialism but will fight on till full independence is achieved. Owing to war-time conditions prevailing in India, the voice of these freedom-loving

Indians cannot cross the frontiers of that country but we who have fought for more than two decades for our national emancipation, know exactly what the vast majority of our countrymen think and feel today.

Standing at one of the cross-roads of world history, I solemnly declare on behalf of all freedom-loving Indias in Indian and abroad that we shall continue to fight British Imperialism till India is once again the mistress of her own destiny. During this struggle and in the reconstruction that will follow, "We shall heartily cooperate with all those who will help us in overthrowing the common enemy. I am confident that in this sacred struggle, the vast majority of the Indian people will be with us. No manoeuvre, intrigue or conspiracy on the part of the agents of Anglo American Imperialism, however prominent they may be and to whichever nationality they may belong, can throw dust in the eyes of the Indian people or swerve them from the path of patriotic duty. The hour of India's salvation is at hand. India will now rise and break the chains of servitude that have bound her so long. Through India's liberation will Asia and the world move forward towards the larger goal of human emancipation.

Appendix - II

INA Proclamations on Entering India 1944

First Proclamation

I. The Indian National Army, under the leadership of the Provisional Government of Azad Hind, has now massed in force and advanced into a territory of Eastern Indian as the spearhead for the creation of a Free India.

The Indian National Army with the help and co-operation of the Imperial Nipponese Army, has purshed into Eastern India with the object of crushing the Anglo-American forces, the common enemy of East Asia, of making India really an India for Indians by liberating her from the shackles of the despotic rule under which she has been groaning for ages; of bringing complete freedom and peace and order to the three hundred and eighty millions of our brothers and sisters in India; and also of driving away the Anglo-American menace from the borders of our neighbours the Independent Burmese.

Brothers and Sisters in India!

Be engaged in your daily work without fear; gather whole heartedly under your Tricolour Flag of Independence hoisted by the Provisional Government of Azad Hind; brace yourselves up for wining

Complete Independence by retaking our Motherland from the hands of our enemies, the Anglo-Americans.

The East Indian Territory into which the Indian National Army has advanced with the powerful aid of the Imperial Nipponnese Army, as well as the people thereof, have now been liberated from the bondage of the Anglo-Americans. This territory has become the first free Indian territory on the Mainland of India under the Provisional Government and will serve as the base for liberating our Motherland. The Imperial Nipponese Army will not establish a military administration but will co-operate with and wholeheartedly help the Provisional Government of Azad Hind in maintaining perfect peace and order.

II. If any person fails to understand the intentions of the Provisional Government of Azad Hind and the Indian National Army, or of our Ally, the Nippon army, and dares to commit such acts as are itemised hereunder which would hamper the sacred task of emancipating India, he shall be executed or severely punished in accordance with the Criminal Law of the Provisional Government of Azad Hind and the Indian National Army or with the Martial Law of the Nippon army, the application of which has been agreed upon between the two allied Armies, namely, the Indian National Army and it Ally, the Imperial Nipponese Army.

Punishable Acts:

(1) Rebellious acts against the Provisional Government of Azad Hind or the Indian National Army, or our Ally, the Nipponese Army.

(2) Acts of spying.

(3) Acts of stealing and talking by force, damaging and destroying war materials which are in the possession of the Provisional Government or belong to our Ally, the Nippon Army.

(4) Acts of damaging or destroying of valuable material resources controlled or utilised by the Provisional Government of Azad Hind or by the Nippon Army under previous agreement with the Provisional Government.

(5) Acts of destroying various installations or equipments for traffic, communication, transportation, broadcasting etc. which are controlled or utilised by the Provisional Government of Azad Hind and the Indian National Army, or by the Nippon Army under previous agreement with the Provisional Government; or acts of interference with the employment and utilisation thereof.

(6) Violent acts against, intimidation of killing or wounding of, or doing other harmful acts to those who belong to the Provisional Government of Azad Hind and the Indian National Army or our Ally, the

Nippon Army.

(7) Acts of spreading enemy propaganda or wild and false rumours, and other acts of disturbing and misleading the minds of the inhabitants.

(8) Acts of disturbing the money circulation and economic organisation or of obstructing the production and free interchange of commodities.

(9) Any act other than those contained in the above items, that benefits the enemy or is harmful to peace and order and the well-being of the Provisional Government of Azad Hind and the Indian National Army or our Ally, the Nippon Army.

(10) Acts of attempting, instigating and abetting those acts contained in the above items.

The trial and punishment of such criminals will entirely be at the discretion of the Provisional Government of Azad Hind except when crimes committed are of such a nature as of necessity, owing to wartime emergency, must be dealt with by the Nippon Army as agreed upon between the two Allied Armies.

III. The Nippon Army will maintain strict discipline and protect, in the area into which they have advanced, the lives and properties of the

Indian masses who do not commit any hostile acts; and due respect will be paid to the religions, customs and manners of the Indian people.

It is guaranteed that any Nippon soldier who may violate these strict injunctions shall be severely punished in accordance with the Martial law of the Imperial Nipponese Army.

The Indian National Army will maintain strict discipline and protect, in the area into which it has advanced, the lives and properties of the Indian masses who do not commit any hostile act; and due respect will be paid to the religious, customs and manners of our countrymen.

It is guaranteed that any Indian soldier who may violate these strict injunctions shall be severely punished in accordance with the martial Law of the Indian National Army.

The above is solemnly proclaimed in the month of April in the year 1994 by the Supreme Commander of the Indian National Army.

Second Proclamation

4 April, 1944

Under the leadership of the Provisional Government of Azad Hind which was formed on 21 October, 1943, at Syonan (formerly Singapore) by the unanimous will of the three million Indians in East Asia, the Indian National Army has crossed the frontier and has penetrated deep into Indian territory.

The Provisional Government of Azad Hind, your own Government, has only one mission to fulfil. That mission is to expel the Anglo-American armies from the sacred soil of India by armed force and then to bring about the establishment of a permanent National Government of Azad Hind, in accordance with the will of the Indian people.

The Provisional Government of Azad Hind will continue the armed struggle until the Anglo-American forces are annihilated or expelled from India.

While prosecuting the armed struggle for the complete liberation of India, the Provisional Government of Free India will push on with the work of reconstruction of the liberated areas.

The Provisional Government of Azad Hind is the only lawful

Government of the Indian people. The Provisional Government calls upon the Indian people in the liberated areas to render all assistance and co-operation to the Indian National Army and to the civilian officials appointed by the Provisional Government.

The Provisional Government guarantees the safety of life and property of the Indian population in the liberated areas, but will inflict severe punishment on those who carry on any activities, overt or covert, which might be of help to our Anglo-American enemies or their Allies, or might disturb the work of reconstruction to be started by the Provisional Government.

The Provisional Government calls upon the Indian people to co-operate wholeheartedly with our Ally, the Nippon army, who are giving unstinted and unconditional assistance in defeating our enemies. In the last two years, the British have been strongly reinforcing themselves with troops from America, Australia, Chungking-China and East and West Africa. The Provisional Government has, therefore, felt compelled to avail itself or the generous offer of all-out aid made by Nippon, whose armed forces have secred unparalleled victories over the Anglo-Americans since the beginning of the war in East Asia. The Provisional Government of Azad Hind is supremely confident that the Indian National Army, with the aid of

the invincible forces of our Ally, the Nippon Army, with crush the Anglo-Americans and bring about the complete liberation of India.

The Provisional Government is fully convinced of Nippon's sincerity towards India. The Provisional Government is convinced that Nippon has no territorial, political, economic or military ambitions in India (The Provisional Government is convinced that Nippon is interested only in destroying the Anglo-American forces in India which are the enemies not only of India but of Asia as well. The destruction of Anglo-American Imperialism alone will terminate this war and bring peace to the world).

In accordance with its status as an independent Government the Provisional Government of Azad Hind is arranging to issue its own currency in Rupee-Notes of different denominations. But owing to the rapid development of the war situation, culminating in our quick advnace into India, it has not been possible to bring into India, in time, the currency of the Provisional Government. The circumstances have, therefore, rendered it necessary for the Provisional Government to borrow from the Nipponese Government the currency (viz. Military rupee notes) already in its possession and to use that currency as a temporary measure. As soon as the Provisional Government's own currency is available, the currency

borrowed from the Nipponese Government will be gradually withdrawn from circulation.

Brothers and Sisters ! Now that our enemies are being driven out of Indian soil, you are becoming once again what you were before-namely, free men and women. Rally round your own Government-the Provisional Government of Azad Hind-and thereby help in preserving and safeguarding your newly-won liberty.

4 April,1944

-Subhash Chandra Bose

Head of the State

Special Message to Indians in East Asia

15 August, 1945

Sisters and Brothers,

A glorious chapter in the history of Indian's struggle for Freedom has just come to a close and, in that chapter, the sons and daughters of India in East Asia will have an undying place.

You set a shining example of patriotism and self-sacrifice by pouring out men, money and materials into the struggle for India's Independence. I shall never forget the spontaneity and enthusiasm with which you responded to my call for 'Total mobilisation'. You sent an unending stream of your sons and daughters to the camps to be trained as soldiers of the Azad Hind Fouj and of the Rani of Jhansi Regiment. Money and materials you poured lavishly into the war chest of the Provisional Government of Azad Hind. In short, you did your duty as true sons and daughters of India. I regret more than you do, that your suffering and sacrifices have not borne immediate fruit. But they have not gone in vain, because they have ensuren the emancipation of our Mother-land and will serve as an undying inspiration to Indians all over the world. Posterity will bless your name, and will talk with pride about your offerings at the

altar of India's Freedom and about your positive achievement as well.

In this unprecedented crisis in our history, I have only one word to say. Do not be depressed at our temporary failure. Be of good cheer and keep up your spirits. Above all, never for a moment, falter in your faith in India's destiny. There is no power on earth that can keep India enslaved. India shall be free and before long.

Jai Hind.

- Subhash Chandra Bose